उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सामान्य निर्देशन कौशल (बीएपीवाई(N) -121

Basic Guidance Skills **(BAPY(N)- 121)**

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1.	**प्रस्तावना (Introduction)**	
इकाई-1	निर्देशन: अर्थ, अवधारणा एवं कार्यक्षेत्र (Guidance: Meaning, assumption & scopes)	1-14
इकाई-2	निर्देशन के प्रकार: व्यक्तिगत, सामूहिक एवं शैक्षणिक (Types of Guidance: Personal, Group & Educational)	15-30
इकाई-3	अच्छे परामर्शदाता की विशेषताए एवं निर्देशन में परामर्शदाता की भूमिका (Characteristics of a Good Counsellor and role of Counsellor in Guidance)	31-46
इकाई-4	निर्देशन में शिक्षकों की भूमिका (Role of Teachers in Guidance)	47--59
खण्ड 2.	**समाजीकरण एवं व्यक्तित्व का विकास (Socialization & Development of Personality)**	
इकाई-5	समाजीकरण का संप्रत्यय एवं प्रक्रिया (Concept & Process of Socialization)	60-73
इकाई-6	व्यक्तित्व का अर्थ एवं निर्धारक (Meaning and Determinants of Personality)	74-89
इकाई-7	व्यक्तिव का विकास (Development of Personality)	90-103
इकाई 8.	व्यक्तिव का मापन: वस्तुनिष्ट, आत्मनिष्ठ एवं प्रक्षेपी परीक्षण (Measurement of Personality: Objective, Subjective & projective tests)	104-122
खण्ड 3	**निर्देशन की प्रक्रिया एवं मापन (Process of Guidance & Measurement)**	
इकाई 9.	निर्देशन कार्यक्रम: संगठन एवं विकास (Guidance Programme: organization & Development)	123-139
इकाई-10	निर्देशन में आकड़ों का संकलन एवं महत्त्व (Data collection and its importance in Guidance)	140-154
इकाई 11	निर्देशन के उपकरण, निर्देशन की प्रविधियां: व्यैक्तिक एवं सामूहिक (Tools of Guidance & Techniques of Guidance: Individual and group)	155-176
खण्ड 4	**निर्देशन में मूल्यांकन एवं नैतिकता (Evaluation & Ethics in Guidance)**	
इकाई 12	निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluation of Guidance Programme)	177-190
इकाई 13	निर्देशन में नैतिकता (Ethics in Guidance)	191-201
इकाई 14	स्थानन एवं अनुवर्तन सेवाएं (Placement Service and follow up Service at different levels of Education)	202-212

इकाई 1 निर्देशन:- अर्थ, अवधारणा, एवं विषय क्षेत्र (Guidance: Meaning, assumption & scopes)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 निर्देशन का अर्थ
1.4 निर्देशन की परिभाषा
1.5 निर्देशन की अवधारणा
1.6 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याऐं
1.7 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
1.8 निर्देशन का विषय क्षेत्र
1.9 निर्देशन की उपयोगिता
1.10 सारांश
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर एक ऐसी क्षमता विद्यमान है जिससे वह दूसरों से परामर्श एवं निर्देशन ले सकता है और दूसरों को परामर्श एवं निर्देशन प्रदान कर सकता है। वह अपने सामान्य एवं संकट के क्षणों में एक-दूसरे की मदद करने के लिए अपेक्षित निर्देशन देता है जिससे उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनधारा निर्वाध रूप से चलती रहती है।

निर्देशन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि निर्देशन एक ऐसी क्रिया है जिसमे कुछ विशेष प्रकार के निर्देशन कर्मियो के माध्यम से व्यक्ति को उसकी समस्या तथा विकल्प बिन्दुओं से निपटने मे अपेक्षित राय एवं सहायता प्रदान की जाती है। निर्देशन एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपने आप को समझ पाने अपनी योग्यताओं तथा सीमाओं के अन्तर्निहित समार्थ्य को समझने एवं उसी स्तर के कार्य-कलापों को करने मे सक्षम बनाता है।

निर्देशन का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। शिक्षा, व्यक्तिगत समस्याएँ, व्यावसायिक, स्वास्थ्य, विकास की प्रक्रिया एवं चिकित्सा के ये विभिन्न क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में निर्देशन की विशेष आवश्यकता होती है।

निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में महत्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. निर्देशन का अर्थ जान सकेंगे।
2. निर्देशन को परिभाषित कर सकेंगे।
3. निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
4. भारत वर्ष में निर्देशन सेवाओं के क्षेत्र में समस्याऐं जान सकेंगे
5. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
6. हमारे जीवन में निर्देशन कार्य की क्या उपयोगिता जान सकेंगे

1.3 निर्देशन का अर्थ (Meaning of Guidance)

मानव इस संसार में ईश्वर की श्रेष्ठतम् कृति है क्योंकि उसके पास भाषा, बुद्धि, विवेक आदि अनेक गुण हैं। लेकिन वह अपना विकास केवल अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा ही नहीं कर सकता। इसके लिए उसे दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। जब मानव विकास पथ पर अग्रसर होने के लिए दूसरे के अनुभव, बुद्धि और विवेक का सहारा लेता है तो दूसरे व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार की गयी सहायता निर्देशन कहलाती है। निर्देशन अमूर्त संकल्पना है। निर्देशन वस्तुतः पथ प्रदर्शन है। जैसे कोई व्यक्ति चौराहे पर खड़ा है; वह चलना जानता है तथा यह भी जानता है कि इन चारों रास्तों में से कोई एक रास्ता उसके गन्तव्य तक जाता है। लेकिन; कौन सा, वह यह नहीं जानता; तब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे गन्तव्य का रास्ता बताना निर्देशन है। वस्तुत; निर्देशन प्रक्रिया में निर्देशक किसी व्यक्ति के अन्दर ज्ञान का विकास नहीं करता अपितु उस व्यक्ति के अन्दर पहले से उपस्थित ज्ञान को एक सही मार्गदर्शन देकर उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचाता है।

1.4 निर्देशन की परिभाषायें (Definitions of Guidance)

निर्देशन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे-

डेविड वी0 टिडमैन – "निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में न कि केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में सहायता देना है"

गुड के अनुसार - निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम निर्देशन की एक सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं।

"निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए दूसरे व्यक्ति को उस उन्नत पथ पर अग्रसर करता है जिसकी क्षमता उसमें पहले से ही विद्यमान है। किन्तु, वह स्वविवेक से अपनी क्षमता को सही दिशा देने में असमर्थ है"|

यह (निर्देशन) किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। मान लीजिए आप किसी अपरिचित नगर में अपने मित्र के घर जाने के लिए अनजान सड़क पर खड़े हैं। वहां से पूछते-पूछते आप अपेक्षित गली के अन्तिम चौराहे पर पहुंच जाते हैं और यहाँ पर आप अपने मित्र का घर नहीं ढूंढ पा रहे हैं, तभी सामने से आ रहे एक व्यक्ति से आप अपने मित्र राघवेन्द्र का नाम बताकर उसका आवास पूछते है और वह संकेत द्वारा आपको आपके मित्र राघवेन्द्र के आवास की वास्तविक स्थिति से अवगत कराता है। आप अपने गन्तव्य तक जिस सहयोग की प्रक्रिया से गुजरे वह प्रक्रिया निर्देशन है।

1.5 निर्देशन की अवधारणा (Assumption of Guidance)

संसार की श्रेष्ठतम् कृति मानव है। भाषा, बुद्धि और विवेक जैसे गुणों से सम्पन्न मानव जब विकास पथ पर आगे बढ़ता है तो उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है। निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्य पूर्ण बनाना है। यह किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। निर्देशन की इस प्रक्रिया को उपयोगी बनाये रखने के लिए हमने पिछले पृष्ठों में इसके सिद्धान्तों का अध्ययन किया है अब हम निर्देशन की अवधारणाओं के विषय में चर्चा करेंगे।

विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार निर्देशन की अवधारणायें निर्धारित की हैं यहां लेखक के मतानुसार निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं -

1. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।

2. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
3. निर्देशन अधिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
4. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
5. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner)की क्षमताओं का विकास करना है।
6. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.6 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याएं (Issues and Problems of Guidance)

1. **जागरूकता की कमी (Lack of Awareness)-** भारतीय समाज विश्व का सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क रखने के बाद भी अपने भोलेपन और जागरूकता के अभाव के कारण सैकड़ों वर्ष छोटे-छोटे देशों का गुलाम रहा और जागरूकता का यही अभाव उसे आज भी विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा पिछड़ा बनाये हुए है। यह बात निर्देशन के क्षेत्र में अक्षरशः सत्य है। पीछे के पृष्ठों में हम यह बात भली भांति समझ चुके हैं कि उचित निर्देशन के बिना व्यक्ति अपने जीवन में क्षमताओं का अपेक्षित विकास नहीं कर सकता तथा उसकी सफलता का स्तर भी कम हो जाता है। तथापि अधिकांश लोग समस्याओं से जूझते हुए भी निर्देशन प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते अथवा निर्देशक की सलाह को अपेक्षित महत्त्व नहीं देते।
2. **उपयुक्त प्रशिक्षण का अभाव (Lack of Proper Training)** - समाज में तो निर्देशन के प्रति जागरूकता की कमी है ही साथ ही निर्देशक वर्ग भी अपने इस महत्त्व पूर्ण कार्य के प्रति उदासीन नजर आता है जिसका एक प्रमुख कारण निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण न मिलना है आज जितनी संख्या में शिक्षक प्रशिक्षित हो रहे हैं यदि उसका 10% भी निर्देशकों को प्रशिक्षण दिया गया होता तो हम प्रशिक्षित निर्देशकों की कमी का सामना न कर रहे होते।
3. **कुशल निर्देशकों का अभाव (Lack of Expert Guides)**-प्रशिक्षण की कमी के कारण विद्यालयों में तथा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले कुशल निर्देशकों का अभाव उत्पन्न हो गया है आज विद्यालयों में या तो निर्देशकों की नियुक्ति की ही नहीं गयी है और यदि कहीं नियुक्ति की भी गयी है तो उनमें बहुत कम निर्देशक ऐसे हैं जो अपने कार्य को दक्षता पूर्वक सम्पन्न कर पाते हैं। इसके अनेक कारणों में से कुछ कारण इस प्रकार हैं-जैसे प्रशिक्षण का न होना, निर्देशक की निर्देशन कार्य में रूचि न होना, निर्देशक पर कार्य भार की अधिकता, निर्देशक की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याऐं आदि।
4. **तीव्रता से बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ (Rapidly Changing Social Senerio)-** विश्व के अनेक राष्ट्र आज बहुत तेजी से एक दूसरे के निकट आ रहे हैं जिसके

कारण हम दूसरों की संस्कृति और सभ्यता की ओर तेजी से आकर्षित हो जाते हैं परिणामस्वरूप सामाजिक परिस्थितियों का चक्र तेजी से घूम जाता है। एक प्रकार की सामाजिक परिस्थिति में निर्देशन प्राप्त करके व्यक्ति जब उसको बदली हुई परिस्थिति में प्रयोग करता है तो सफलता की संभावनायें कम हो जाती है और इसका दोष निर्देशन कार्य पर मढ़ दिया जाता है।

5. **निरन्तर बढ़ती प्रतिस्पर्धा (Constantly Increasing Competition)** वैश्वीकरण ने हमारे समक्ष विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। एक ओर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवसरों की भरमार हुई है तो दूसरी ओर पारस्परिक प्रतिस्पर्धा ने भी अपने पांव तेजी से पसारे हैं। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति अनुपयुक्त साधनों का भी प्रयोग करने लगता है, ऐसी स्थिति में उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन भी काम नहीं आता।
6. **व्यक्ति सापेक्षता (Subjectivity)-** निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशक को वस्तुनिष्ठता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। किन्तु, मानव की स्वाभवगत विशेषताओं के कारण निर्देशक में व्यक्ति सापेक्षता आ जाती है जो निर्देशन कार्य की गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में निर्देशन कार्य करते समय व्यक्ति के स्वभाव, प्रतिक्रिया आदि के प्रभाव में आकर निर्देशक दो अलग-अलग प्रकार से निर्देशन देने लगता है जो निर्देशन के सिद्धान्तों के विरूद्ध है।
7. **पूर्वाग्रहों से ग्रसित होना (Prejudicousness)**- निर्देशन कार्य की प्रक्रिया में कभी-कभी निर्देशक उपबोध्य की रूचि, योग्यता, क्षमता आदि के विषय में अपनी कुछ पूर्वधारणाएं बना लेता है तथा उसकी यह धारणाएं निर्देशन प्रक्रिया को प्रभावित करती है। कभी-कभी इन पूर्वागहों के कारण निर्देशन की प्रक्रिया समुचित प्रकार से पूर्ण नहीं हो पाती तथा कभी-कभी इससे घातक परिणाम भी प्राप्त हो सकते हैं।
8. **व्यक्तिगत विचारधारा (Personal Ideology)-** प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है और वह समाज, परिस्थितियों, व्यवस्थाओं एवं घटनाओं को अपने इसी दृष्टिकोण से देखता है। जब कभी निर्देशक और उपबोध्य जो विपरीत जीवन दर्शन को मानने वाले होते हैं तब निर्देशन की प्रक्रिया बहुत कठिनाई से पूर्ण हो पाती है। इसी प्रकार निर्देशक के व्यक्तिगत जीवन दर्शन का प्रभाव उसके निर्देशन कार्य पर पड़ता है जो उपबोध्य के लिए सदैव उपयोगी हो यह जरूरी नहीं।
9. **प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Motivation)-** निर्देशन प्रक्रिया को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए निर्देशकों का अत्यधिक अभाव होने के बाद भी निर्देशन कार्य को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। न तो निर्देशकों के पास उनके उपबोध्य की सफलता

का श्रेय होता है और न ही कोई अन्य लाभ। विद्यालयों में निर्देशन कार्य करने वाले शिक्षकों को यह कार्य अतिरिक्त कार्य के रूप में दिया जाता है तथा इसकी प्रतिक्रिया में न तो उनका कार्यभार ही कम होता है और न ही कोई अन्य लाभ होता है।

10. **नैतिक मूल्यों का क्षरण (Inharresment of Moral Values)**-निर्देशन कार्य करते समय निर्देशक समाज के नैतिक मूल्यों का ध्यान रखता है; किन्तु, उपबोध्य जिस समाज में इस निर्देशन का प्रयोग करता है वहाँ यदि उपबोध्य का सामना अनैतिकता का आश्रय लेने वाले प्रतियोगी से होता है तो इस दशा में निर्देशन कार्य के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते। अतः गिरता हुआ नैतिक स्तर भी इसमें बहुत बड़ी बाधा है।
11. **शिक्षा का गिरता स्तर (Decreasing Leval of Education)-**वर्तमान परिवेश में शिक्षा का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्ति की ललक निरन्तर कम होती जा रही है वह अनुपयुक्त (अनुचित) रास्तों को अपनाकर श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने का सफल प्रयास करता है। ऐसी परिस्थितियों में कुशल से कुशल निर्देशक भी अपने निर्देशन कार्य की सफलता की गारन्टी नहीं ले सकता। क्योंकि ज्ञान के ठोस आधार के बिना यथार्थ सफलता की दीवार खड़ी नहीं हो सकती।

1.7 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Guidance)

वर्तमान युग अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। तकनीकी के निरन्तर विकास ने इस जटिलता को और बढ़ा दिया है। जहाँ एक ओर तकनीकी विकास ने हमारी सामर्थ्य को बढ़ाकर कार्यप्रणाली को सरल किया है वहीं इसी तकनीक के कारण नये-नये कौशलों का जन्म भी हुआ है जिससे निर्देशन की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। यहां पर हम कतिपय महत्त्व पूर्ण क्षेत्रों में निर्देशन की आवश्यकता पर चर्चा करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Personal Life)

मनुष्य समाज में रहते हुए जीवन के प्रत्येक पग पर दूसरों से सीखता है। अपने दैनिक जीवन में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसे वह दूसरों की सहायता से न सीखता हो। धीरे-धीरे वह इन कार्यों का अभ्यस्त हो जाता है तथा स्वयं ही इन कार्यों को करने में सक्षम हो जाता है। चूंकि जीवन की परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं अतः उसे समायोजन हेतु नये-नये कार्यों को सीखना पड़ता है। व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता मुख्यतः निम्न कारणों से पड़ती है -

i. **व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास हेतु (For Development of Individual Skills) -** कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास निर्देशन के बिना संभव नहीं है। यदि हमें बालपन में माता की उंगली का सहारा न मिला होता तो शायद हम अभी तक सीधे खड़े होना भी न सीख पाये होते। निर्देशन का यह पहला चरण हमारी प्रकृति और क्षमताओं को समझते हुए जिस प्रकार हमारा विकास करता है निर्देशन की वह प्रक्रिया हमारे सम्पूर्ण जीवन में हमारी व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करती रहती है। इस विषय में हम भीतर के पृष्ठों में और अधिक चर्चा करेंगे।

ii. **पारिवारिक जीवन में आवश्यक (Necessary in Family Life)-** माता-पिता के कुशल निर्देशन में बालक परिवार की व्यवस्थाओं को ठीक से समझ जाता है। पारिवारिक जीवन में स्वंय को स्थापित करने के लिए निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

iii. **किशोरावस्था का सामना करने के लिए (To Face Adolescence Period)-** स्टेनले हाल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को संवेग और तूफान की अवस्था कहा है। इस अवस्था में बालक युवावस्था की ओर कदम बढ़ा रहा होता है। उसके भीतर बहुत तेजी से शारीरिक मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन आ रहे होते हैं। बदलती हुई सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में बालक इन परिवर्तनों में डूब जाना चाहता है। उपयुक्त निर्देशन के अभाव में इस अवस्था का बालक अप्रत्याशित निर्णय ले सकता है जो उसके जीवन तथा समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। अतः किशोरावस्था में निर्देशन अति आवश्यक है।

शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता Need of Guidance in Educational Field

आज देश में हम बेरोजगारों की जो भारी भीड़ देख रहे हैं उसका एक महत्त्व पूर्ण कारण अपनी रूचि, योग्यता और क्षमता को जाने बिना किसी भी विषय का अध्ययन कर लेना भी है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में विषय चयन से लेकर परीक्षा उत्तीर्ण करने तक प्रत्येक चरण में व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

i. **उपयुक्त विषयों के चयन हेतु (For Selecting Appropriate Subject) -** विद्यार्थी को यह समझ में नहीं आता कि वह किन विषयों का चयन करे जिसके द्वारा वह भविष्य में सफल हो सके। आज यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में विषयों की भरमार है लेकिन सबसे बड़ी समस्या उसके उपयुक्त चयन की है अतः आज विद्यार्थियों को उपयुक्त विषयों के चयन हेतु निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

ii. **कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए (For Classroom Behaviour)**- बालक जब से विद्यालय में प्रवेश लेता है प्रत्येक स्तर पर उससे एक विशेष प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है। इस व्यवहार को बालक को सिखाना पड़ता है, तथा इसके लिए निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है। बालक को कक्षा में किस प्रकार का आचरण करना है उसे अपने गुरूजनों, साथियों से किस प्रकार का व्यवहार करना है, तथा उसे अपनी कक्षा की भौतिक सम्पत्ति को किस प्रकार सहेज कर रखना है, यह सब वह निर्देशन से ही सीखता है।

iii. शैक्षिक उपलब्धि बढ़ाने हेतु (For the Increasment of Educa-tional Achievenent) - विद्यालय में अलग-अलग मानसिक स्तर के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं| प्रायः निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी प्राप्त ज्ञान को अभिव्यक्त करने में असफल रहता है, जिससे उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन बालक की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में सहायक है।

iv. **विद्यालय की अन्य गतिविधियों हेतु (For Other Activities of School)**- विद्यालय केवल विद्या का मन्दिर ही नहीं है अपितु वहाँ अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त अन्य प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं, किन्तु अभिभावकों तथा विद्यार्थियों की नजर में इन गतिविधियों का महत्त्व न होने के कारण विद्यालय के बहुत कम विद्यार्थी इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेते हैं। यदि अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देशन प्रदान किया जाये तो न केवल विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ेगी अपितु उनका तीव्रतर विकास भी होगा।

व्यावसायिक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Vocational Field) व्यक्तिगत एवं शैक्षिक जीवन में निर्देशन की जितनी आवश्यकता अनुभव होती है। व्यावसायिक जीवन के लिए निर्देशन की आवश्यकता उससे कहीं अधिक है। निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत हम अपनी बात को और अधिक स्पष्ट कर सकेंगे।

i. **उपयुक्त व्यवसाय के चयन हेतु (for Selection of Appropriate Occupation)** आज बेरोजगारी का एक कारण लोगो द्वारा उपयुक्त व्यवसाय का चयन न करना भी है। खासतौर पर आज का युवा दिग्भ्रमित है। जिस तरफ सब जा रहे हैं वह भी उसी अंधी दौड़ में शामिल है। उसे अपनी रूचि, क्षमताओं तथा योग्यताओं का तो पता ही नहीं है। भारत जैसा देश जहाँ आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा युवाओं का है तथा जहाँ युवा बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहे हैं वहाँ निर्देशन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। आज भारत को अच्छे निर्देशकों की आवश्यकता है जो यहां के युवाओं की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में मोंड़ कर (लगाकर) भारत को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सके।

ii. **व्यावसायिक क्षमताओं के विकास हेतु (For the Development of Vocational Skill)-** केवल उपयुक्त व्यवसाय का चयन करने में सहायता करने पर ही निर्देशन की भूमिका समाप्त नहीं हो जाती|व्यवसाय आरम्भ करते ही कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। कभी-कभी व्यवसाय में असफलता का भय भी बना रहता है। व्यवसाय चयन के बाद व्यवसाय विशेष की बारीकियों को समझने तथा अपने प्रिय व्यवसाय में अपनी क्षमताओं को बढ़ाते रहने के लिए सतत् निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

iii. **तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए (To Face Technical Complication)**- आज हर कार्यक्षेत्र में नयी-नयी तकनीकों का विकास हो रहा है। आज इस क्षेत्र में इतने नवाचार हो रहे हैं कि किसी भी व्यक्ति का इन सबसे स्वयं अवगत रहना तथा इन सारी कुशलताओं का स्वंय में विकास करना लगभग असम्भव सा कार्य है। अतः आज इन सभी क्षेत्रों में हो रहे नवाचारों को समझने के लिए उसे निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है।

सामाजिक जीवन में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Social Life)

समाज में सामंजस्य हेतु निर्देशन की महती आवश्यकता है। वस्तुतः बालक को समाज में केवल अपनी विचारधाराओं, धारणाओं तथा विश्वासों के आधार पर ही नहीं अपितु सामाजिक विश्वासों, धारणाओं तथा विचारधाराओं के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जीवन यापन करना होता है तथा इन सबके लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है।

i. **समाज के परिवर्तनशील मानदंडों में समायोजन के लिए (For the Compatibility of Changing Social Norms)-** तकनीकी के विकास तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समाज के मानदंडों में तीव्रगामी परिवर्तन ला दिये हैं। इन बदलते सामाजिक मानदंडों में समायोजन के लिए व्यक्ति को निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

ii. **मजबूत लोकतन्त्र के निर्माण हेतु (For the Building of Strong Democracy)-** आज भारत के समक्ष क्षेत्रवाद, जातिवाद, तथा साम्प्रदायिकता जैसी अनेक समस्याऐं हैं जो भीतर ही भीतर राष्ट्र की मजबूत नींव को खोखला कर रही हैं। आज वैश्वीकरण का युग है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र को अत्यन्त मजबूत होकर विश्व पटल पर स्वयं को प्रस्तुत करना है। अतः ऐसे में एक निर्देशक का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि वह राष्ट्र के लोगों को इन संकीर्ण मानसिकताओं से ऊपर उठाकर उन्हें एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित करे।

1.8 निर्देशन का विषय क्षेत्र (Scope of Guidance)

यद्यपि निर्देशन के कार्यक्षेत्र को बताना सप्रयास निर्देशन प्रक्रिया का सीमांकन करना है; तथापि अध्ययन को सरल बनाने की दृष्टि से हम निर्देशन के कार्य क्षेत्र को कुछ बिन्दुओं के अन्तर्गत अभिव्यक्त करने का प्रयास करेंगे।

i. **व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन (Personal Life of Individual)-** प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आदि। ये समस्याऐं व्यक्ति को तोड़कर रख देती हैं, किन्तु, एक कुशल निर्देशक व्यक्ति को इन समस्याओं से न केवल उबार लाता है बल्कि उसे जीवन में सफलता भी प्राप्त कराता है, अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण वैयक्तिक जीवन निर्देशन का कार्य क्षेत्र कहा जा सकता है।

ii. **व्यक्ति का सामाजिक जीवन (Social Life of Individual)**- व्यक्ति परिवार के सम्पर्क में आते ही अपना सामाजिक जीवन जिसे हम पारिवारिक जीवन कहते हैं जीना आरम्भ कर देता है। धीरे-धीरे वह समाज के सीधे सम्पर्क में आता है और अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करने लगता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के समस्त सामाजिक सम्बन्ध निर्देशन के कार्य क्षेत्र में आते हैं।

iii. **व्यक्ति के शैक्षिक क्रियाकलाप (Educational Activity of Individual)** विद्यालय में प्रवेश के बाद विषय चयन से लेकर विषय को समझने, उसकी कठिनाईयाँ दूर करने, विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बन्ध, विद्यार्थी और अयापकों के कार्य सम्बन्ध, विद्यार्थी और कार्यालय, विद्यार्थी और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तथा विद्यार्थी की अध्ययन से सम्बन्धित अन्य समस्याऐं सभी निर्देशन के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आती है, क्योंकि बिना निर्देशन के इन समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है।

iv. **व्यक्ति के व्यावसायिक क्रियाकलाप (Vocational Activity of Individual)** बिना उपयुक्त निर्देशन के उचित व्यवसाय का चयन नहीं किया जा सकता। व्यवसाय चयन के बाद भी उसके व्यावसायिक जीवन में अनेक समस्याऐं आती रहती हैं; इन समस्त समस्याओं का निदान करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यावसायिक जीवन निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

1.9 निर्देशन की उपयोगिता (Significance of Guidance)

यहाँ हम वर्तमान परिस्थियों में निर्देशन की उपयोगिता पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

i. **आधारभूत कौशलों को सीखने में सहायक (Helpful to Learn Fundamental Skills)**- इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक कोई भी व्यक्ति बिना उपयुक्त निर्देशन के आधारभूत कौशलों को नहीं सीख पाया है जैसे - खड़े होना, चलना, बोलना, पढ़ना, लिखना, खाना-पीना इत्यादि। अतः शैक्षिक, व्यक्तिगत, व्यवसायिक एवं सामाजिक जीवन में आधारभूत कौशलों को सीखने के लिए निर्देशन की भूमिका महत्त्व पूर्ण है।

ii. **बालक का परिवार से विद्यालय में समायोजन (Adjustment of Child from Family to Home)**- अपने बाल्यकाल में बालक जब परिवार से विद्यालय का रूख करता है तब उसके सामने समायोजन की भीषण समस्या होती है निर्देशन के द्वारा ऐसी स्थिति में बालक का विद्यालय में समायोजन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

iii. **अध्ययन छोड़ने वाले बालकों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में सहायक (Helpful to Re-enrollment of Droppers)-** अपने अध्ययन कार्य को बालक अनेक कारणों से बीच में ही छोड़ देते हैं। उचित निर्देशन के द्वारा इन बच्चों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

iv. **शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति में सहायक (Helpful in Academic Achievment and Development)-**विषयवस्तु का ज्ञान होना एक बात है तथा उसकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दूसरी बात। अनेकशः विषय वस्तु का पर्याप्त ज्ञान होने पर भी अनेक बालकों की शैक्षिक उपलब्धि बहुत कम रह जाती हैं ऐसे बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति को उचित निर्देशन के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है।

v. **बालक के समग्र विकास में सहायक (Helpful in Wholesome Development of Child)-** निर्देशन कार्य बालक को न केवल जीवन का अर्थ समझने में सहायता देता है अपितु उसके वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक एवं तकनीकी विकास में पूरी तरह से सहायता करता है।

vi. **भविष्य की योजना बनाने में सहायक (Helpful to Future Planning)-** निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान निर्देशक बालक की दैनंदिन सामान्य समस्याओं से अवगत होता रहता है अतः वह भविष्य की शिक्षा योजना बनाते समय इन समस्याओं का विशेष ध्यान रखता है। हम कह सकते हैं कि निर्देशन का कार्य भविष्य की योजना बनाने में सहायक है।

अभ्यास प्रश्न

1. _____निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।
2. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं लिखिए।

1.10 सारांश

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव के पास स्वयं की भाषा, बुद्धि एवं विवेक आदि होते हुए भी उपयुक्त विकास के लिए उसे किसी अन्य की सहायता लेनी पड़ती है। व्यक्ति की उत्तम क्षमताओं का विकास करने से सहायता करने का कार्य निर्देशन कहलाता है। निर्देशन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व हमें निर्देशन के सिद्धान्तों से अवश्य परिचित होना चाहिए। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि निर्देशन एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रक्रिया है। निरन्तर चलने वाली इस प्रक्रिया में निर्देशक को सामाजिकता एवं नैतिकता का ध्यान रखना चाहिए। निर्देशन कार्य करने से पूर्व उसे वैज्ञानिक आधारों पर परिस्थितियों का विश्लेषण कर लेना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह अपने उपबोध्य को सकारात्मक निर्देशन दे तथा उसे आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करे। उपबोध्य निर्देशक का निर्देशन मानने अथवा न मानने के लिए स्वतन्त्र हो निर्देशन की प्रक्रिया लचीली होनी चाहिए। व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समान महत्त्व दिया जाना चाहिए तथा उपबोध्य के सम्पूर्ण विकास का प्रयास करना चाहिए।

एक से अधिक निर्देशक होने की स्थिति में निर्देशकों को परस्पर समन्वय स्थापित करना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह निरपेक्ष रहकर निर्देशन का कार्य करे तथा विशिष्ट क्षेत्रों में निर्देशन के लिए निर्देशक को प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना चाहिए।

निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता होते हुए भी भारत में इसके प्रति जागरूकता का अभाव है। निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण नहीं मिलता फलतः समाज में कुशल निर्देशकों की कमी है। तेजी से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियाँ तथा बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण भी निर्देशन के सुपरिणाम नहीं मिल रहे। निर्देशक भी यदा कदा पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाते हैं; व्यक्तिगत विचारधारा को महत्त्व देने लगते हैं तथा व्यक्ति सापेक्ष हो जाते हैं। शिक्षा का गिरता हुआ स्तर भी निर्देशन कार्य में बाधा बनता है।

हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता है। मुख्य रूप से व्यक्तिगत जीवन में क्षमताओं के विकास के लिए, पारिवारिक जीवन में समायोजन के लिए, तथा किशोरावस्था का सामना करने के लिए निर्देशन अति आवश्यक है। इसी प्रकार शैक्षिक क्षेत्र में उपयुक्त विषयों के चयन के लिए, कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए तथा अपनी शैक्षिक उपलब्धियाँ बढ़ाने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है।

व्यावसायिक क्षेत्र में उपयुक्त व्यवसाय चयन करने के लिए, व्यवसायिक क्षमताओं का विकास करने के लिए तथा तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। सामाजिक जीवन में बदलते हुए मानदंड तथा मजबूत लोकतन्त्र के लिए निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन, शैक्षिक क्रियाकलाप, सामाजिक क्रियाकलाप आदि निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गुड के अनुसार
2. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं-
    i. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।
    ii. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
    iii. निर्देशन अधिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
    iv. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
    v. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner) की क्षमताओं का विकास करना है।
    vi. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.12 संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
2. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)
3. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
4. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
5. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
6. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्देशन की प्रमुख अवधारणायें स्पष्ट कीजिए?
2. भारतवर्ष में निर्देशन के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याऐं हैं?
3. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्पष्ट कीजिए?

इकाई 2. निर्देशन के प्रकार: व्यक्तिगत, सामूहिक एवं शैक्षणिक (Types of Guidance: Personal, Group & Educational)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण
2.4 व्यक्तिगत निर्देशन: अर्थ
2.4.1 व्यक्तिगत निर्देशन के प्रकार
2.4.2 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.4.3 व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य
2.5 सामूहिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा
2.5.1 सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.5.2 सामूहिक निर्देशन के उद्देश्य
2.6 शैक्षिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा
2.6.1 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.6.2 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य
2.7 सारांश
2.8 संदर्भ ग्रंथ
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

जटिलताओं के आधुनिक युग में, जैसे-जैसे मानव समाज विकसित होता जा रहा है उसके जीवन में जटिलतायें और बढ़ती जा रही हैं। किसी समय में कंटीली घास को ले आने वाला व्यक्ति कुशल कहलाता था किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कुशल कहलाने के लिए मनुष्य को अपने भीतर अनेक योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास करना होगा। निरन्तर जटिल होते इस समाज में कोई भी व्यक्ति केवल अपने अनुभवों के द्वारा पूर्ण सफल नहीं हो सकता । समस्याओं का समाधान करने के लिए, अध्ययन में मन लगाने के लिए, उपलब्धि का स्तर ऊँचा उठाने के लिए, आदत में सुधार के लिए अथवा

इसी तरह के किसी अन्य कारण से जब हम अपने अनुभव अथवा ज्ञान को व्यक्ति विशेष के लिए प्रदान करते हैं तब अनुभव एवं ज्ञान के आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया निर्देशन का रूप ले लेती हैं।

वास्तव में निर्देशन एक बहुमुखी प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति शैक्षिक निर्देशन ले रहा होता है तब वह अपना व्यक्तिगत तथा सामाजिक परिष्कार भी कर रहा होता है। इसी प्रकार अनेक बार शैक्षिक निर्देशन बालक की व्यावसायिक समस्याओं का भी समाधान कर देता है। अतः निर्देशन को यदि विभिन्न प्रकारों में बाँटा जाये, तो भी ये परस्पर इतने अन्तर्सम्बद्ध होंगे कि उनमें भेद करना मुश्किल हो जायेगा। प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशन के प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. निर्देशन के अनेक प्रकारों के विषय में जान सकेंगे।
2. व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
3. व्यक्तिगत निर्देशन के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
4. व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्यों को जान सकेंगे।
5. सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्यों को भली भाँति समझ सकेंगे।
6. शैक्षिक निर्देशन के अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
7. शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता महत्त्व एवं उद्देश्य के बारे में जान सकेंगे।

2.3 निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classifiction of Types of Guidance

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि केवल अध्ययन की दृष्टि से निर्देशन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण किया जा सकता है। अध्ययन की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन के अनेक प्रकार बताये है जिनमें कुछ निम्नवत है:-

पैट्रसन के अनुसार निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classification of Guidance According to Petrson

पैट्रसन ने निर्देशन को पाँच भागो में बाँटा है। पैट्रसन के अनुसार निर्देशन का वर्गीकरण इस प्रकार है:-

1. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance

2. व्यावसायिक निर्देशन Vocational Guidance
3. व्यक्तिगत निर्देशन Personal Guidance
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन Health & Hygenic Guidance
5. आर्थिक निर्देशन Financial Guidance

विलियम मार्टिन के अनुसार निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classificat-ion of Guidance According to William Martin

विलियम मार्टिन प्रॉक्टर के द्वारा उनकी पुस्तक "Educational and Vocational Guidance" में निर्देशन के निम्नांकित 6 प्रकार बताये गये है:-

1. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance
2. व्यावसायिक निर्देशन Vocational Guidance
3. सामाजिक एवं नागरिक कार्यों में निर्देशन Social and Civic Guidance
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं से सम्बन्धित निर्देशन Guidance for Health & Physical Problem
5. अवकाश के उत्तम उपयोग के लिये निर्देशन Guidance for Leisure
6. चरित्र निर्माण के कार्यों में निर्देशन Guidance for Development of Charactor

पश्चिमी विद्वानों के द्वारा किया गया निर्देशन का उपरोक्त वर्गीकरण, अस्पष्ट एवं अधूरा है। अतः निर्देशन को भली भांति समझने के लिए इसका वर्गीकरण निम्नंकित प्रकार से किया जा सकता है:-

1. क. वैयक्तिक निर्देशन
   ख. सामूहिक निर्देशन
2. क. प्रत्यक्ष निर्देशन
   ख. अप्रत्यक्ष निर्देशन
3. क. औपचारिक निर्देशन
   ख. अनौपचारिक निर्देशन
4. क. निर्देशात्मक निर्देशन
   ख. सुझावात्मक निर्देशन
5. क. सैद्धान्तिक निर्देशन
   ख. प्रयोगात्मक निर्देशन

6. क. मौखिक निर्देशन
   ख. लिखित निर्देशन

निर्देशन के इन सभी प्रकारों को पुनः निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता हैः-

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. सामाजिक निर्देशन
4. चिकित्सकीय निर्देशन
5. धार्मिक निर्देशन
6. तकनीकी निर्देशन
7. पारिवारिक निर्देशन
8. अवकाश सदुपयोग से सम्बन्धित निर्देशन
9. नैतिक निर्देशन

हम यह कह सकते हैं कि पूर्वोक्त सभी प्रकार के निर्देशन (शैक्षिक, व्यावसायिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी आदि) व्यक्तिगत अथवा सामूहिक दोनों प्रकार से दिये जा सकते हैं। प्रत्येक वैयक्तिक अथवा सामूहिक निर्देशन, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रत्येक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष निर्देशन औपचारिक अथवा अनौपचारिक निर्देशन, निर्देशात्मक अथवा सुझावात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है और प्रत्येक निर्देशात्मक अथवा सुझावात्मक निर्देशन सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार निर्देशन कुल मिलाकर 576 प्रकार का हो सकता है ($9 \times 2^{12} = 576$)

2.4 व्यक्तिगत निर्देशन : अर्थ

यद्यपि पैट्रसन ने निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण करते हुए व्यक्तिगत निर्देशन को निर्देशन के मुख्य 5 प्रकारों में सम्मिलित किया है| पैट्रसन ने व्यक्तिगत निर्देशन को अत्यधिक महत्त्व देते हुए सामाजिक निर्देशन, मनोवेगों से सम्बन्धित निर्देशन तथा अवकाश के समय का सदुपयोग से सम्बन्धित निर्देशन को व्यक्तिगत निर्देशन में सम्मिलित किया है किन्तु लेखक की मान्यता है कि उपरोक्त तीनों कार्यों के अतिरिक्त मनुष्य की अन्य गतिविधियों के लिए अथवा पूर्वोक्त सभी 9 प्रकार के निर्देशन व्यक्तिगत रूप से दिये जा सकते हैं इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि व्यक्तिगत निर्देशन निर्देशन का मुख्य प्रकार न होकर निर्देशन का गौण प्रकार है तथा शैक्षिक, व्यावसायिक आदि निर्देशन के सभी प्रकारों में यह

सम्मिलित है। यहाँ पर हम व्यक्तिगत रूप से दिये जाने वाले शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा पैट्रसन के अनुसार व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत आने वाले सामाजिक, मनोवेगात्मक एवं अवकाश सम्बन्धी निर्देशन पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

व्यक्तिगत निर्देशन का अर्थ

व्यक्तिगत निर्देशन अथवा वैयक्तिक निर्देशन को हम दो प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं प्रथमतः किसी भी प्रकार का निर्देशन जब किसी व्यक्ति विशेष को अकेले में प्रदान किया जाता है तब उस निर्देशन को हम व्यक्तिगत निर्देशन कहते हैं।

पैट्रसन के विचारानुसार व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए जो निर्देशन प्रदान करते है उसे व्यक्तिगत या वैयक्तिक निर्देशन कहते हैं चाहे वह सामूहिक रूप से क्यों नहीं दिया जा रहा है।

2.4.1 व्यक्तिगत निर्देशन के प्रकार

उपरोक्त परिभाषाओं को आधार बनाकर हम व्यक्तिगत निर्देशन के दो प्रकार निर्धारित कर सकते हैं:-

1. व्यक्तिगत रूप से प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।
2. व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।

यहाँ हम पुनः स्पष्ट कर दें कि व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिये दिया जाने वाला निर्देशन सामूहिक रूप से भी प्रदान किया जा सकता है।

2.4.2 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

हमें निम्नांकित कारणों से व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है-

1. **व्यक्ति विशेष की आवश्यकता को समझने के लिए** -व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति विशेष की आवश्यकता को समझने के लिए अति महत्त्व पूर्ण है। व्यक्ति विशेष को किस प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, तथा उसे इन परिस्थितिओं में किस प्रकार के निर्देशन की आवश्यकता है यह दोनों बातें व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से ही समझी जा सकती हैं।
2. **व्यक्तिग विशेष की समस्याओं के निजी रूप से समाधान के लिए** - व्यक्ति की अनेक समस्याऐं इस प्रकार की होती हैं जिनका समाधान समूह के साथ नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति को वैयक्तिक निर्देशन की आवश्यकता होती है जिससे वह समस्याओं का निजी समाधान प्राप्त कर सके।

3. **व्यक्तिगत गोपनीयता के लिए** - हम जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का निजी जीवन होता है तथा उसकी अनेक समस्याऐं भी गोपनीय होती हैं अतः उसकी समस्याओं एवं उनके समाधान को गोपनीय बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

व्यक्तिगत निर्देशन का महत्त्व

व्यक्तिगत निर्देशन के महत्त्व को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट करेंगे-

1. **समस्या का तुरन्त समाधान** -समस्या का तुरन्त समाधान करने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है इसमें व्यक्ति अपने निर्देशक से सीधे सम्पर्क करके अपनी समस्या का त्वरित समाधान प्राप्त कर सकता है।
2. **समस्या का पूर्ण समाधान** - व्यक्ति की समस्या का पूर्ण समाधान व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है। इसमें व्यक्ति एवं निर्देशक के बीच में कोई बाधा नहीं होती और वह अपनी निजी बातें भी निर्देशक के समक्ष निःसंकोच रख देता है तथा अपनी समस्या का समाधान हो जाने तक निरन्तर निर्देशन प्राप्त कर सकता है।
3. **गोपनीयता** - व्यक्तिगत निर्देशन ही गोपनीयता बनाये रखने की एकमात्र गारन्टी दे सकता है इसमें निर्देशक और उपबोध्य के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति न होने के कारण उपबोध्य अपनी अत्यन्त निजी बातों को भी निर्देशक के समक्ष निःसंकोच रख देता है और वह अपनी समस्या का सही समाधान पाने के साथ-साथ उसे गोपनीय बनाये रखने में सफल होता है।

2.4.3 व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य

निम्नांकित उद्दश्यों को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत निर्देशन दिया जाना चाहिए-

i. **व्यक्ति के पारिवारिक समायोजन के लिए** - समाज व्यक्तियों के समूह से मिलकर बना है एक व्यक्ति समाज की ही तरह परिवार की भी एक इकाई होती है परिवार में समायोजन किये बिना वह समाज में समायोजन नहीं कर सकता अतः व्यक्तिगत निर्देशन का पहला महत्त्व पूर्ण उद्देश्य पारिवारिक समायोजन है।
ii. **व्यक्ति के सामाजिक समायोजन के लिए** - समाज में कुसमायोजित व्यक्ति सामाजिक विध्वंस के लिए उत्तरदायी होता है अतः व्यक्तिगत निर्देशन का दूसरा महत्त्व पूर्ण उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक समायोजन करना है।

iii. **व्यक्ति की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति**- प्रत्येक व्यक्ति की शैक्षिक आवश्यकतायें अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है अतः व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा उसकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ती की जाती है।

2.5 सामूहिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा

यद्यपि इलाहाबाद स्थित Bereau of Psychology ने निर्देशन के प्रकार बताते हुए समूह निर्देशन को इसके मुख्य प्रकारों में गिना है किन्तु लेखक के मतानुसार व्यक्तिगत निर्देशन की तरह ही सामूहिक निर्देशन भी निर्देशन का एक गौण प्रकार है तथा यह निर्देशन के सभी मुख्य प्रकारों में सम्मिलित है।

सामूहिक निर्देशन का अर्थ

निर्देशन की पूर्वोक्त परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्देशन चाहे वह किसी भी प्रकार क्यों न हो यदि समूह में दिया जा रहा है तो वह सामूहिक निर्देशन की श्रेणी में आता है।

सामूहिक निर्देशन की परिभाषा

इस पुस्तक के लेखक के मतानुसार वे सभी समस्याऐं जो सामूहिक रूप से समाधान के योग्य होती है उनके लिए दिया जाने वाला निर्देशन तथा व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए समूह में दिया जाने वाला निर्देशन सामूहिक निर्देशन कहलाता है।

2.5 .1 सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट करेंगे -

i. **समय, श्रम एवं धन की बचत** - भारत जैसे देश में जहाँ संसाधनों का नितान्त अभाव होते हुए भी हमारी महत्वाकांक्षायें विश्व के सफल राष्ट्रों से होड़ लेने की है, सामूहिक निर्देशन अत्यन्त, महत्त्व पूर्ण हो जाता है। व्यक्तिगत निर्देशन में जहाँ हम एक-एक व्यक्ति को अलग-अलग निर्देशन प्रदान करते हैं वही सामूहिक निर्देशन में अनेक व्यक्तियों को एक साथ बैठाकर निर्देशन प्रदान करने से समय, श्रम एवं शक्ति की पर्याप्त बचत कर लेते हैं।

ii. **विद्यार्थी के सामान्य व्यवहार को सुधारने में सहायक** -निर्देशन प्राप्त करते समय व्यक्ति प्रायः अकेला होने के कारण असामान्य अनुभव करता है तथा अनेक सूचनाओं को देने में सकुचाता है। सामूहिक निर्देशन में अपने समूह के साथ होने के कारण उसका व्यवहार अपेक्षाकृत सामान्य रहता है तथा किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत सूचनायें दिये बिना निर्देशन प्राप्त कर लेता है।

iii. **नये व्यक्ति (उपबोध्य) को निर्देशन प्रदान करने में सरलता** -निर्देशन की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्ति इसे बहुत देर से समझता है। जबकि सामूहिक निर्देशन में नया व्यक्ति भी अपने पुराने साथियों की सहायता से सरलतापूर्वक समझ लेता है।

iv. **सामाजीकरण में सहायक** -सामूहिक रूप से निर्देशन प्राप्त करने की प्रक्रिया में बालक को बार-बार अपने साथियों के साथ अन्तः क्रिया करनी पड़ती है। सहज और सामान्य रूप से चलने वाली यह प्रक्रिया बालक के सामाजीकरण में सहायता करती है।

v. **दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाने में सहायक** -सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक बातें अपने साथ निर्देशन प्राप्त कर रहे लोगों के साथ बाँटता है परस्पर अनुभव बाँटने की इस प्रक्रिया में व्यक्ति जिन अनुभवों को अपने योग्य समझता है उन अनुभवों का प्रयोग करता है तथा निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी कर लेता है अतः सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया दूसरों के अनुभवों से लाभ लेने में सहायता करती है।

2.5 .2 समूह निर्देशन के उद्देश्य

सामूहिक निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य निम्नवत् निर्धारित किए जा सकते हैं-

i. **सामान्य समस्याओं का समाधान** - बालक की समस्याऐं दो प्रकार की हो सकती हैं- समान्य एवं विशिष्ट। उसकी सामान्य समस्याओं का समाधान करना सामूहिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है।

ii. **सामाजिक तथा राज्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना-** व्यक्ति की सामाजिक तथा राज्य सम्बन्धी अनेक समस्याऐं ऐसी होती हैं जो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सी होती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए यदि व्यक्तिगत रूप से निर्देशन दिया जाये तो इस प्रक्रिया में बहुत समय लग जाता हैं। अतः बालक की राज्य तथा समाज सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना सामूहिक निर्देशन का उद्देश्य है।

iii. **समूह में रहते हुए व्यक्ति की गतिविधियों का निरीक्षण करना** -प्रत्येक व्यक्ति समूह में रहते हुए जो व्यवहार करता है वह बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व तथा उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का परिचय देता है। उसके व्यवहार का निरीक्षण करके यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि उसमें सामाजिकता के लक्षण विद्यमान हैं या नहीं तथा सामाजिकता की भावना विकसित करने के लिए हमें उसे किस प्रकार का निर्देशन देना होगा इन सबके लिए समूह में रहते हुए व्यक्ति की गतिविधियों का निरीक्षण करना सामूहिक निर्देशन का एक प्रमुख उद्देश्य है।

iv. **व्यक्तिगत निर्देशन के लिए सुपात्र ढूंढना**-यद्यपि सामूहिक निर्देशन में व्यक्ति समूह के व्यवहार के अनुरूप व्यवहार करता है तथापि उपबोधक को उपबोध्य की व्यक्तिगत विशेषताओं का अनुमान समूह मे व्यक्ति की गतिविधियों को देखकर ही हो जाता है। तथा वह व्यक्तिगत निर्देशन के लिए सुपात्र चुन लेता है।

v. **व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना**- सामूहिक निर्देशन से न केवल एक बड़े समूह को निर्देशन प्राप्त होता है बल्कि यह व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार करता है। जब व्यक्ति सामूहिक रूप से निर्देशन प्राप्त करता है तो उसकी न केवल निर्देशन सम्बन्धी भ्रान्तियां दूर होती हैं बल्कि उसे यह भी ज्ञात होता है कि उसकी किन समस्याओं का समाधान व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से हो सकता है। साथ ही साथ निर्देशक भी इस बात से भली-भांति परिचित हो जाता है कि सामूहिक निर्देशन की किन कठिनाइयों को व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से सुलझाया जा सकता है।

2.6 शैक्षिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा

निर्देशन के विभिन्न प्रकारों के विषय में जानने के बाद हम शैक्षिक निर्देशन शब्द को जानने का प्रयास करेंगे। अब हम जानते हैं कि निर्देशन एक व्यापक शब्द है तथा हमें अपने जीवन के जिस किसी भी क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता होती है, निर्देशन का वही प्रकार हमारे लिये उपयोगी हो जाता है। जैसे सामाजिक समायोजन के लिए सामाजिक निर्देशन, शैक्षिक समायोजन के लिये शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक समायोजन के लिये व्यावसायिक निर्देशन ।

आदि काल से ही अपने जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा मानव समाज आधुनिक समय में जटिल समाज की संज्ञा से विभूषित है। तकनीकी के विकास ने इस जटिलता को और भी बढ़ा दिया है। आज मनुष्य की रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं को गौण करके तकनीकी तथा अन्य समस्याओं ने स्वयं महत्त्व पूर्ण स्थान ले लिया है। दूसरे शब्दों में आज का मानव यन्त्रों की भीड़ में स्वयं भी यन्त्रवत् बनता जा रहा है। भारत सहित अनेक देशों की सरकारों ने मानव को संसाधन मानकर इस आग में घी डालने का ही काम किया है।

आधुनिक तकनीकी युग में मनुष्य का अधिकांश समय किसी न किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में ही व्यतीत होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के जीवन का महत्त्व पूर्ण भाग, जिसे हम किशोरावस्था एवं युवावस्था के नाम से सम्बोधित करते हैं, विद्यालयों में बीतता है; इसलिये उसके सामने शैक्षिक समायोजन से सम्बन्धित समस्याऐं सर्वाधिक होती हैं। अतः प्रायः प्रत्येक मनुष्य को शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

शैक्षिक निर्देशन का अर्थ

निर्देशन का यह भाग शैक्षिक सेवा एवं विद्यालयों से सम्बन्धित है। इस सेवा के माध्यम से विद्यार्थी अपनी प्रतिभा का अधिकतम उपयोग करने मे सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त निर्देशन के द्वारा उनका वैयक्तिक विकास भी होता है। निर्देशन, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, एक प्रकार की शैक्षिक प्रक्रिया है। अपने व्यापक अर्थों में हम किसी भी प्रकार के निर्देशन को शिक्षा प्रक्रिया का अंग मान सकते हैं, किन्तु जब हम "शैक्षिक निर्देशन" शब्द का प्रयोग कर रहे होते हैं तब हमारा तात्पर्य विद्यार्थी के शैक्षिक समायोजन में आने वाली समस्याओं का समाधान करने से होता है। यद्यपि शिक्षा भी एक प्रकार का निर्देशन ही है, तथापि शैक्षिक निर्देशन शिक्षण कार्य का स्थान नही ले सकता। शैक्षिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए हम यह कह सकते हैं कि "विद्यार्थी जीवन में आने वाली ज्ञान प्राप्ति से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने में जब हम सहायता करते हैं तब यह प्रक्रिया शैक्षिक निर्देशन कहलाती है"

शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा

विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों ने शैक्षिक निर्देशन को अपनी अपनी रीति से परिभाषित करने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

किट्सन - "शिक्षा का वैयक्तिकरण करने का प्रयास ही निर्देशन है"

लिफिवर, टसेल एवं विट्जिल "निर्देशन एक शैक्षिक सेवा है जो विद्यालय में प्राप्त दीक्षा का अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली उपयोग करने में विद्यार्थियों की सहायता प्रदान करने के लिये आयोजित की जाती है"

कैरोल एच. मिलर "निर्देशन सेवाओं का सम्बन्ध विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रमों के अन्तर्गत आने वाले उन संगठित क्रियाकलापों से है जो विद्यार्थी के वैयक्तिक विकास की आवश्यकताओं में सहयोग देने के उद्देश्य से आयोजित किये जाते हैं"

आर्थर जे. जोन्स "शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यक्रमों एवं शिक्षालय के जीवन से सम्बद्ध चुनावों एवं समायोजन के लिए अपेक्षित है"|

2.6 .1 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

मनुष्य की ही भांति इस धरती पर चींटी से लेकर हाथी तक का अपना समाज होता है तथा उनके समाज के अनुभवी एवं सक्रिय सदस्य अपने समाज के नए सदस्यों को विभिन्न कार्यों से निर्देशन प्रदान करते हैं। अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों ने भी इस बात को सिद्ध किया है। मनुष्य स्वंय को समस्त प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शैक्षिक निर्देशन की सर्वाधिक आवश्यकता है। वस्तुतः ''शैक्षिक निर्देशन शैक्षिक परिवेश में समायोजन से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या से जुड़ा हुआ है।'' तथापि शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं-

1. **अध्ययन के विषय चयन के लिए** -अपने शैक्षिक जीवन में जब विद्यार्थी को अध्ययन के विषयों का चयन करना होता है, उस समय तक उसकी मानसिक सामर्थ्य एवं अनुभव इतना कम होता है कि वह सही निर्णय नहीं ले पाता। इस समय तक न तो वह अपनी क्षमताओं को पहचान पाया होता है और न ही अपनी रूचि को समझ पाता है। निर्देशन के अभाव में अपने साथियों की देखा-देखी एवं मित्रों का अनुसरण करते हुए विषयों का चयन कर लेता है। इन परिस्थितियों में यदि उसे समुचित शैक्षिक निर्देशन प्राप्त हो जाये तो वह इस समस्या से बच सकता है। समुचित शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से वह कृषि, विज्ञान, कला अथवा वाणिज्य विषय का चयन अपनी रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार कर सकता है।
2. **विद्यालय एवं जीवन में अनुशासन स्थापना के लिए** - अनुशासनहीनता की समस्या आज शिक्षा की सार्वभौमिक समस्या बन गयी है। अध्यापकगण एवं समाज अनुशासनहीनता की समस्या के लिए विद्यार्थियों को दोषी ठहराते हैं। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने भी किशोरवय बालकों को स्वभाव से विद्रोही सिद्ध किया है। दुनिया भर के शिक्षा शास्त्री अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान खोजने में लगे हैं तथा आज भी इस समस्या के समाधान के लिए नित नये प्रयोग किये जा रहे हैं। कोई किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन को अनुशासनहीनता का मूल मानता है तो कोई विद्यार्थी के विद्रोही स्वभाव को। कुछ विद्वान तथाकथित आधुनिकता, बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रदूषण आदि को भी अनुशासनहीनता का कारण मानते हैं। वास्तव में अनुशासनहीनता के मूल में केवल एक कारण है और वह है उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन का अभाव। यदि विद्यार्थी को उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन प्राप्त होता रहे तब ऊपर बताये गए अनुशासनहीनता के सभी कारण गौण हो जायेंगे तथा विद्यालयों के साथ-साथ विद्यार्थी के जीवन में भी अनुशासन स्थापित हो जायेगा।
3. **सीखने की प्रक्रिया को तेज करने के लिये** - जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं कि निरन्तर बढ़ते हुए तकनीक के विकास ने न केवल अभिभावकों की अपेक्षाओं को पहले से भी अधिक

बढ़ा दिया है, अपितु विद्यार्थियों में भी प्रतिस्पर्धा की भावना तेज हो गयी है। कक्षा में प्रथम स्थान पर बने रहने का प्रयास बालक के मन पर एक प्रकार का दबाव बना देता है जिससे उसके सीखने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन इन विषम परिस्थितियों में विद्यार्थी की सीखने की गति को बढ़ा सकता है तथा वह सीखने की प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों का सरलता से सामना कर सकते हैं।

4. **अध्ययन सामग्री का चुनाव करने के लिये** -आज बाजार में अनेक प्रकार की उच्चस्तरीय तथा निम्नस्तरीय अध्ययन सामग्रूरी उपलब्ध है। जो विद्यार्थी को भ्रमित करने के लिए पर्याप्त है। समुचित शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की इस कठिनाई को हल कर सकता है।
5. **उपयुक्त अध्ययन विधि का चयन करने के लिए**-अध्ययन सामग्री का चयन करने के पश्चात विद्यार्थी के सामने सबसे बड़ी समस्या उपयुक्त अध्ययन विधि का चुनाव करने की आती है। प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अलग-अलग प्रकार की अध्ययन विधियाँ उपयोगी होती हैं। इसके लिये भी उसे उचित शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।
6. **परीक्षा की समुचित तैयारी के लिए**- प्रायः यह देखा गया है कि विद्यार्थी अत्यधिक अध्ययन तथा ज्ञानार्जन के बाद भी परीक्षा में अपेक्षित अच्छे अंक प्राप्त करने में असफल रहता है। इसका मुख्य कारण प्राप्त ज्ञान को विधिवत अभिव्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करना है। इस समस्या के निदान के लिए भी समुचित शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता है।

शैक्षिक निर्देशन का महत्त्व

1. **प्रतिभा का समुचित उपयोग** -शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी को उपयुक्त विषय सामग्री का चयन कराकर हम प्रतिभाओं का समुचित उपयोग करने में सक्षम होते हैं।
2. **श्रेष्ठतम पुस्तकों के चयन में सहायक** -प्रायः विद्यार्थी अपने अध्ययन के लिये उपयुक्त पुस्तकों का चयन नहीं कर पाता है। शैक्षिक निर्देशन श्रेष्ठतम पुस्तक के चयन में महत्त्व पूर्ण भूमिका निर्वाह करता है।
3. **आत्मज्ञान** - शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी को अपनी रुचि, आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का ज्ञान हो जाता है तथा वह अपनी क्षमताओं का अधिकतम प्रयोग करने में समर्थ हो जाता है।
4. **अपव्यय तथा अवरोधन को रोकने में सहायक** - शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय तथा अवरोधन एक बड़ी समस्या है शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रिया इस समस्या का समाधान करने में सक्षम है। इस प्रक्रिया के द्वारा हम विद्यालय के भौतिक संसाधनों का समुचित प्रयोग कर पाते हैं। जिन विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन नहीं दिया जाता वहाँ लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो

जाते है अथवा पढ़ाई छोड़ देते हैं। अतः शैक्षिक निर्देशन अपव्यय तथा अवरोधन को रोकने में सहायता करता है।

5. **नैतिक मूल्यों का संरक्षण**- प्रत्येक समाज के नैतिक मूल्य दूसरे समाज के नैतिक मूल्यों से भिन्न होते हैं। भारतीय समाज विश्व के प्राचीनतम समाजों में से एक है तथा इसके नैतिक मूल्य विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। वर्तमान समय में भारत में पश्चिमी सभ्यता और उसके मूल्यों का प्रसार बड़ी तेजी से होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण मीडिया द्वारा पश्चिमी मूल्यों का प्रचार-प्रसार है। वर्तमान समय में छात्र अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों तथा पश्चिमी सभ्यता के मूल्यों में से कौन से मूल्य उनके लिये सही हैं, इस बात को लेकर द्वन्द्व की स्थिति में है। उसके मस्तिष्क में निरन्तर इस बात को लेकर संघर्ष चलता रहता है जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ता है और वे नकरात्मकता की ओर अग्रसर हो जाता है। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा भारतीय समाज के विशिष्ट नैतिक मूल्यों का संरक्षण किया जाता है तथा पश्चिम की चकाचौंध से ग्रसित बालक को उपयुक्त निर्देशन से सही दिशा प्रदान की जाती है।
6. **वैज्ञानिक सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायक** - शैक्षिक निर्देशन वैज्ञानिक सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। यह छात्रों के अन्धविश्वासों को दूर करता है, साथ ही साथ उन्हें पश्चिम के अन्धानुकरण से भी बचाता है जिससे उनके मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की छवि बन सके जो सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों, रूढ़िवादों एवं सभी प्रकार के अन्धविश्वासों से मुक्त हो और वे इसके अनुरूप समाज की संरचना कर सके।
7. **प्रतिभा संरक्षण-** मानव समाज में प्रतिभाओं का अभाव कभी भी नहीं रहा। सच तो यह है कि सभ्यता का अद्यतन विकास प्रतिभाओं के बल पर ही सम्भव हो सका; किन्तु किसी भी समाज में प्रतिभाशाली बालकों को उसी प्रकार संरक्षण की आवश्यकता होती है जैसे किसी महत्त्व पूर्ण प्रजाति के पौधे को। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा प्रतिभाओं का संरक्षण भी किया जाता है। भिन्न-भिन्न छात्र भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिभाओं के धनी होते हैं लेकिन इन प्रतिभाओं का समुचित विकास तभी हो पाता है जब इन्हें उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाये और यह शैक्षिक निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है।
8. **पारिवारिक समस्याओं के समाधान में सहायक**-जीवन और समस्या दोनों साथ-साथ चलते हैं। जहां जीवन है वहां समस्या भी है। जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं से बचने हेतु मानव समाज ने परिवार नामक संस्था का गठन किया। किन्तु परिवार में भी विभिन्न प्रकार की समस्याओं ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया। विद्यालय में आने वाले विभिन्न छात्र कई बार अलग-अलग प्रकार की पारिवारिक समस्याओं से ग्रस्त होते है, जैसे परिवार में कलह का वातावरण, परिवार की आर्थिक स्थिति का अच्छा न होना, माता या पिता में से किसी का

देहान्त, अपंगता इत्यादि। इन समस्याओं से जूझते हुए छात्रों को शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता सबसे अधिक होती है जिससे वे इन समस्याओं से उभर कर अपना सम्पूर्ण ध्यान अध्ययन पर केन्द्रित कर सके।

2.6.2 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

हम जानते हैं कि निरूद्देश्य किया गया कोई भी कार्य निरर्थक होता है अतः हमें शैक्षिक निर्देशन के भी उद्देश्यों का ज्ञान होना चाहिए। अनेक शिक्षाविदों के कार्यों का अध्ययन करने के पश्चात हम निम्नांकित प्रकार से शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्यों का निर्धारण कर सकते हैं-

1. **विद्यालयों के चयन में सहायता करना** - भारतीय सन्दर्भ में एक छात्र प्राथमिक स्तर की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात विद्यालयों के चयन की समस्या से जूझने लगता है। वह इस समस्या से निम्न-माध्यमिक, उच्च-माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भी दो-चार होता है। उसके पश्चात उसके समक्ष सबसे बड़ी समस्या होती है कि वह किस विद्यालय का चयन करे? हालाँकि यह समस्या बहुत छोटी प्रतीत होती है, परन्तु यह अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है, क्योंकि एक विद्यार्थी का भविष्य उपयुक्त विद्यालय के चयन पर निर्भर करता है। शैक्षिक निर्देशन इस संदर्भ में विद्यार्थियों को उचित परामर्श उपलब्ध कराकर उनकी समस्या का समाधान कर सकता है।
2. **पाठ्यक्रम की विविधता के अनुरूप विद्यालयों के चयन में सहायता करना** - वर्तमान समय में पाठ्यक्रम की विविधता के अनुरूप विभिन्न प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की गयी है- जैसे बहुउद्देशीय विद्यालय, कृषि विद्यालय, चिकित्सा विद्यालय, व्यावसायिक विद्यालय इत्यादि। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थियों की रुचि और उनकी बौद्धिक मानसिक योग्यता के अनुरूप उन्हें विद्यालयों के चयन में सहायता दी जाती है। विद्यार्थी शैक्षिक निर्देशन के द्वारा अपनी रुचि के अनुरूप विद्यालय का चयन कर सकता है तथा अपनी प्रतिभा को निखार सकता है।
3. **विद्यालय के प्रवेश नियमों को समझने में सहायता करना** -विभिन्न विद्यालयों में प्रवेश के लिए अनेक प्रकार की प्रवेश परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इन प्रवेश परीक्षाओं के अनेक प्रकार होते हैं तथा प्रत्येक प्रवेश परीक्षा की अपनी कुछ तकनीकी औपचारिकताएं होती हैं, जिनमें विद्यार्थी प्रायः गलती कर जाते हैं तथा योग्यता होते हुए भी उस परीक्षा को उत्तीर्ण नहीं कर पाते। शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से हम विद्यार्थी को औपचारिकताएं, नियम तथा परीक्षा हेतु तकनीकी रूप से समृद्ध कर देते हैं जिससे वे प्रवेश के नियमों को भली भाँति समझकर सफल हो जाते हैं।

4. **व्यवहारगत समस्याओं के समाधान के लिए** -विद्यार्थी को कक्षा में तथा कक्षा के बाहर अपने अनेक साथियों, अध्यापकों तथा कर्मचारियों से व्यवहार करना पड़ता है। कभी-कभी परिस्थिति विशेष के कारण अथवा विपरीत मनोदशा के कारण उसके स्वभाव में नकारात्मकता आ जाती है। यह नकारात्मकता कभी-कभी गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लेती है। उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी की इन व्यवहारगत समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
5. **अभिव्यक्ति क्षमता का विकास करने के लिए** - शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी स्वयं को मौखिक तथा लिखित दोनों ही प्रकार से अभिव्यक्त करना सीख जाता है तथा समाज के निर्माण में अपनी महत्त्व पूर्ण भूमिका का निर्वाह करने लगता है।
6. **अनुशासन स्थापना में सहायक** - अनुशासनहीनता आज के विद्यालयों का अभिन्न अंग बन गयी है। इसका एक प्रमुख कारण समुचित शैक्षिक निर्देशन का अभाव है। जिन विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से विद्यार्थी को अनुशासित किया जाता है, वहाँ अनुशासनहीनता की समस्या प्रायः बहुत कम होती है।

2.7 सारांश

पैट्रसन ने व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए दिये जाने वाले निर्देशन को व्यक्तिगत निर्देशन की संज्ञा दी है चाहे वह सामूहिक रूप से दिया जा रहा हो। व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं को समझने उसकी समस्याओं का समाधान करने और गोपनीयता को बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत निर्देशन समस्या का त्वरित एवं पूर्ण समाधान करता है। यह व्यक्ति के पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं के लिए तथा शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिया जाता है।

समूह में दिया जाने वाला किसी भी प्रकार का निर्देशन सामूहिक निर्देशन कहलाता है। सामूहिक निर्देशन समय, धन एवं श्रम की बचत करता है। विद्यार्थी के सामान्य व्यवहार को सुधारता है तथा सामाजीकरण में सहायक होता है। सामूहिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। तथा एक दूसरे के अनुभवों से लाभ लेना सिखाता है।

जटिल एवं तकनीकी युग ने प्राणी जगत में निर्देशन की आवश्यकता को अत्याधिक बढ़ा दिया है। निर्देशन स्वंयं के अनुभवों का प्रयोग दूसरों की सहायता के लिये करना है। आदिकाल से चले आ रहे इस निर्देशन को विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से परिभाषित भी किया है। अतः हम कह सकते हैं कि जब अभ्यर्थी स्वयं के अनुभवों के द्वारा अपने विद्यार्थी की सहायता उसके शैक्षिक समस्याओं का

समाधान करने में करता है तब यह प्रक्रिया शैक्षिक निर्देशन कहलाती है। शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति को पग-पग पर पड़ती है चाहे वह विषयों का चयन हो, विद्यालय में अनुशासन की स्थापना हो अथवा विद्यार्थी के सीखने की गति को तेज करना हो। इतना ही नहीं विद्यार्थी अपने लिये अध्ययन सामग्री, पाठ्य पुस्तक एवं अध्ययन विधि का चुनाव भी शैक्षिक निर्देशन के द्वारा करते हैं। शैक्षिक निर्देशन से विद्यार्थी आत्मज्ञान प्राप्त करता है तथा शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान भी करता है। इस प्रकार शैक्षिक निर्देशन के द्वारा प्रतिभाओं का समुचित उपयोग होता है।

2.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन को कितने प्रकारों से वर्गीकृत किया है। आपकी दृष्टि में निर्देशन का सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण कौन सा है।
2. शैक्षिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन को परिभाषित करते हुए दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
3. व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन में अन्तर बताइये।

इकाई 3. अच्छे परामर्शदाता की विशेषतायें एवं निर्देशन में परामर्शदाता की भूमिका (Characteristics of a Good Counsellor and role of Counsellor in Guidance)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 परामर्शदाता

3.3.1 परामर्शदाता के गुण

3.3.2 परामर्शदाता का प्रशिक्षण

3.3.3 प्रशिक्षण से सम्बन्धित अध्ययन क्षेत्र

3.3.4 परामर्शदाता के गुणों का विकास

3.3.5 परामर्श कौशल

3.4 परामर्शदाता के कार्य

3.4.1 कार्य क्षेत्र

3.5 परामर्शदाता की भूमिका

3.5.1 मनोविश्लेषणात्मक उपागम

3.5.2 व्यक्ति केन्द्रित उपागम

3.5.3 संज्ञानात्मक उपागम

3.5.4 व्यवहार उपागम

3.6 परामर्शदाता के उत्तरदायित्व

3.6.1 कार्यकारी उत्तरदायी

3.6.2 नैतिक उत्तरदायित्व

3.7 साराशं

3.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

परामर्शदाता ही परामर्श से सम्बन्धित सभी कार्यों के सफल संचालन के लिये उतरदायी होता है। इस इकाई में आप परामर्शदाता के गुणों, भूमिका तथा उतरदायित्वों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप परामर्श की प्रक्रिया में परामर्शदाता के महत्व को समझ सकेंगे। एक अच्छे परामर्शदाता में क्या-क्या गुण होने चाहिये तथा इन गुणों का विकास कैसे किया जाए, से अवगत हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. बता सकेंगे कि परामर्शदाता कौन होता है।
2. परामर्शदाता के गुणों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
3. विभिन्न परामर्श कौशलों को जान सकेंगे।
4. परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
5. परामर्शदाता के उत्तरदायित्वों से अवगत हो सकेंगे।

3.3 परामर्शदाता

परामर्शदाता से तात्पर्य उस व्यक्ति अथवा शिक्षक से होता है जिसके ऊपर विद्यालीय परामर्श और निर्देशन सेवाओं को संचालित करने की जिम्मेदारी होती है। वह अपने कौशलों के द्वारा परामर्शी अथवा छात्रों को समस्याओं के समाधान की ओर अग्रसर कर भावी जीवन को तैयार करने में मदद करता है।

परामर्शदाता वह है जो-

1. परामर्शी (छात्र) की भावनाओं को भलीभांति समझकर तथ्यात्मक जानकारी हासिल करे।
2. सभी प्राप्त सूचनाओं को गोपनीय रखे।
3. परामर्शी को अभिव्यक्ति का पूरा मौका दे।
4. परामर्शी के आत्मविश्वास में वृद्धि कर सके।
5. परामर्शी की भावनाओं और विचारों का सम्मान कर सके।
6. परामर्शी यदि असुरक्षित महसूस करें तो उसमें सुरक्षा की भावना का विकास कर सके।
7. परामर्शी जिसके साथ सकारात्मक सम्मान और संगति का अनुभव कर सके।
8. परामर्शी की आवश्यकताओं को समझकर लक्ष्यों का निर्धारण कर सके।
3. अपने को विशेषज्ञ समझने की भूल न करे।

3.3.1 परामर्शदाता के गुण

एक अच्छे परामर्शदाता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

व्यक्तिगत गुण- परामर्शदाता को विनोदप्रिय, धैर्यवान, मृदुभाषी, स्वस्थ एवं आकर्षित व्यक्तित्व वाला होना चाहिए। उसमें नागरिकता का भाव हो। उसका जीवन-दर्शन सकारात्मक और आचरण उत्तम होना चाहिए। उसका व्यवहार एवं वेशभूषा ऐसी न हो जिसकी कोई हंसी न उड़ाये।

बौद्धिक क्षमता- परामर्शदाता को विभिन्न व्यावसायिक, अध्ययन एवं परामर्श क्षेत्रों का ज्ञान होना चाहिए। उसमें तर्कयुक्त एवं व्यवस्थित चिन्तन करने की योग्यता होनी चाहिए। ताकि वह सूचनाओं को एकत्र कर योजनाबद्ध ढंग से परामर्शी को आवश्यक सहायता प्रदान कर सके।

ऊर्जावान- परामर्श सेवा एक भावात्मक मांग है। परामर्श के सामने कई समस्यायें होती हैं। वह अपने को कमजोर और असहाय समझता है। परामर्शदाता के उत्साह के द्वारा परामर्शी में आत्मविश्वास और स्वयं कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

लचीलापन- अच्छा परामर्शदाता कभी भी परामर्श के दौरान एक विधि का अनुसरण नहीं करता है। वह छात्र की व्यक्तिगत विभिन्नताओं और समस्या के स्वरूप को ध्यान में रखकर यह निर्णय लेता है कि- कौन सी विधि, तकनीक एवं व्यवहार छात्र की समस्या समाधान हेतु उपयुक्त होगी।

सहयोग- परामर्शदाता को सहयोगी प्रवृति का होना आवश्यक है। तभी छात्र उसका आदर व सम्मान करते हैं।

स्वतत्परता- परामर्शदाता के मनोभावों, विचारों और कार्य का प्रभाव परामर्शी के व्यवहार पर पड़ता है। परामर्शदाता की मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक तत्परता के द्वारा परामर्शी से वांछनीय सहयोग मिलता है।

संवेदनशीलता- परामर्शदाता को अपने व्यवसाय और परामर्शी (छात्र) के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तभी वह पूर्ण तत्परता के साथ अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर पायेगा।

परानुभूति- परानुभूति परामर्शदाता के व्यवहार की वह विशेषता अथवा योग्यता है जिसके द्वारा वह परामर्शी के द्वारा संसार को देखने की कोशिश करता है और वह अपने विचार मतों को परामर्शी की भावनाओं के साथ जोड़ने की जरा सी भी भूल नहीं करता है। इस गुण के द्वारा परामर्शदाता अपने सेवार्थी को भलीभांति जान सकता है।

सकारात्मक सोच- "परामर्शदाता परामर्शी को बिना किसी शर्त के आत्म महत्व के रूप में स्वीकार करता है चाहे उसकी दशा जैसी भी हो फिर भी वह मूल्यवान है" (राजर्स)। परामर्शदाता जब बिना किसी शर्त के परामर्शी का आदर व सम्मान करता है तो दोनों के मध्य उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे सहजता के साथ परामर्श की प्रक्रिरया को पूरा किया जाता है। परामर्श के बाद कई बार वांछनीय परिणाम प्राप्त नहीं होते, ऐसी परिस्थितियों में परामर्शदाता यह निर्णय नहीं देता कि 'तुम यह कभी नहीं कर सकते हो'। परामर्शदाता को आशावादी और सकारात्मक सोच वाला होना चाहिए।

संगति- परामर्शन के दौरान परामर्शदाता जो अनुभव कर रहा है और परामर्शी (छात्र) को जो कुछ अनुभव संप्रेषित कर रहा है उसमें कोई भी द्वन्द्व नहीं हैं यदि है भी तो वह न्यूनतम है। यह तभी सम्भव है जब परामर्शदाता का व्यवहार दिखावटी न हो वह परामर्शी के सम्मुख ईमानदार और वास्तविक दिखाई पड़े ऐसा न हो कि परामर्शदाता कोई ड्रामा कर रहा हो।

3.3.2 परामर्शदाता का प्रशिक्षण

परामर्शन की सफलता परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण एवं अनुभव पर निर्भर करती है। यदि छात्रों को अप्रशिक्षित और अनुभवहीन व्यक्तियों को सौंप दिया जाता है तो उनको अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। परामर्श सेवा में संलग्न व्यक्तियों के लिये निर्देशन व परामर्शन से सम्बन्धित आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। सामान्य रूप से परामर्शदाता को मनोविज्ञान विषय का ज्ञान होना चाहिए।

इसके लिये प्रशिक्षण को तीन स्तरों में बांटा जा सकता है।

1. प्रथम स्तर- स्नातक तथा बी0 एड0/ आवश्यक अनुभव
2. द्वितीय स्तर- परामर्शन सम्बन्धी कोर्स में स्नातकोत्तर उपाधि / एम0 एड0
3. तृतीय स्तर- पी0 एच0 डी0 उपाधि प्राप्त / शोध अनुभव

3.3.3 प्रशिक्षण से सम्बन्धित अध्ययन क्षेत्र

वर्तमान में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा निर्देशन एवं परामर्श से सम्बन्धित सर्टीफिकेट, डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर के कोर्सों के साथ ही शोध कार्यों का संचालन किया जा रहा है। जिनके अन्तर्गत निम्न विषयो का अध्ययन करना अनिवार्य है।

- व्यावसायिक पहचान
- निर्देशन और परामर्श
- सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता
- बाल मनोविज्ञान
- मानव वृद्धि और विकास
- वृत्तिक विकास
- पारस्परिक सम्बन्ध विकास का अध्ययन
- सामूहिक कार्य
- मापन और मूल्यांकन
- शोध की विधियां

3.3.4 परामर्शदाता के गुणों का विकास

- परामर्शदाता के गुणों का विकास करनें में महत्वपूर्ण बिन्दु-
- दूसरों के विचारों, भावनाओं, हावभावों के द्वारा वर्तमान को समझने का प्रयास करना।
- स्वंय तथा दूसरे की भावनाओं को स्वीकार करना।

- स्वंय की राय को अलग रखना जिससे परामर्शन सेवा में परेशानियां उत्पन्न न हो।
- परामर्शी को खुले मन से स्वीकार करना तथा आत्मीयता के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।
- लगातार सक्रिय रूप से सुनने की क्षमता का विकास व अभ्यास करना इसके लिये धैर्य की आवश्यकता होती है।

उदाहरण- छात्रः मैं कल बाजार में था, लेकिन गणित विषय के शिक्षक को देखते ही छिप गया और डर के मारे पसीने से तर-बतर हो गया।

परामर्शदाता-अच्छा तुमने गृहकार्य नहीं किया होगा (यह निर्णय लेना एकदम गलत होगा)। परामर्शदाता को छात्र से बातचीत कर ऐसा माहौल तैयार करना होगा ताकि छात्र स्वयं ही इस भय का कारण बता सके अथवा परामर्शदाता को अन्य स्रोतों के माध्यम से तथ्यात्मक जानकारी एकत्रित कर किसी नतीजे पर पहुंचना चाहिए।

3.3.5 परामर्श कौशल

एक अच्छे परामर्शदाता के लिये परामर्श सम्बन्धी कौशलों की जानकारी होनी चाहिये। परामर्श की सफलता परामर्शदाता तथा छात्र के मध्य मानवीय सम्बन्धों की प्रगाढता पर निर्भर करती है। सभी प्रकार के परामर्श में दो प्रकार के अर्न्तसम्बन्ध निहित होते हैं।

1. परामर्शदाता का छात्र से सम्बन्ध तथा
2. छात्र का परामर्शदाता से सम्बन्ध

सभी प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता को विशेष कौशलों की आवश्यकता होती है। फ्रेन्सिसका इंसकिप्प (Francesca Inskipp, 2000) ने परामर्श के लिये छः सामान्य कौशलों का वर्णन किया है।

1. परामर्शी से सम्पर्क स्थापित करना
2. परामर्शन दशा की संरचना सुनिश्चित करने का कौशल
3. सम्बन्ध विकास करना
4. परामर्शी के साथ अन्तक्रिया का विकास एवं अनुरक्षण
5. मूल्यांकन कार्य

6. परामर्शन की प्रक्रिया में स्वयं का अनुश्रवण (मॉनिटरिगं) करना।

यदि आप परामर्शदाता के रूप में कार्य करना चाहते हैं तो निम्न कौशलों में दक्ष होना अनिवार्य है।

1. ध्यान देना
2. श्रवण कौशल
3. चुनौती देना
4. प्रश्न पूछना
5. प्रत्यावर्तन
6. पुर्नकथनीकरण
7. व्यवस्था सम्बन्धी कौशल

(1) ध्यान देना- ध्यान देना किसी व्यक्ति के व्यवहार और अभिव्यक्ति का संयुक्त रूप है। ध्यान देने की प्रक्रिया में किसी सम्प्रेषण से सम्बन्धित शाब्दिक और अशाब्दिक पक्षों की जटिल श्रृंखला निहित होती है।

परामर्शी पर ध्यान देने से वह सकारात्मक संगति का अहसास करता है जिससे वह सुरक्षा की भावना महसूस करता है। इसके लिये परामर्शदाता को ध्यान व्यवहारों के प्रयोग में दक्ष होना चाहिए। यहॉ पर संक्षेप मे कुछ ध्यान व्यवहारों के नाम दिये हैं।

- चेहरा परामर्शी की तरफ रखना
- सिर हिलाना
- सही ढंग से बैठना
- शाब्दिक तालमेल एवं प्रवाह
- वाणी
- परामर्श की तरफ झुकाव
- नजरें मिलाना
- शान्त अथवा धैर्य रखना

(2) श्रवण कौशल- परामर्श की प्रक्रिया में श्रवण कौशल का सम्बन्ध कान और आंख से है। परामर्शी के शाब्दिक और अशाब्दिक व्यवहार तथा संकेतो को सुनकर व देखकर परामर्शदाता, समस्या की पहचान कर आवश्यक सहायता प्रदान करता है।

श्रवण कौशल में तीन मुख्य पक्ष होते हैं।

भाषा-परामर्शदाता को भाषा की अच्छी जानकारी होनी चाहिये जिससे परामर्शी के शब्दों, वाक्यों, उक्तियों, अलंकारों आदि का सही अर्थापन कर उसकी सही दशा का आंकलन किया जा सके।

भाषाई संकेत-जैसे उच्चारण, लय, सुर, गति, विराम, वलाघात् आदि पर ध्यान देना तथा उनका सही अर्थापन करना।

अशाब्दिक संकेत-जैसे परामर्शी के चेहरे के हावभाव, शारीरिक स्थिति, हिलना-डुलना, हाथ-पैरों के इशारे तथा परामर्शदाता की निकटता (ध्यान रखें-एक निश्चित सीमा में रहकर परामर्शी को छूना विशेषकर परामर्शी के विषम लिंगी होने पर) का ज्ञान।

उपरोक्त तीनों पक्ष परामर्शी के आन्तरिक व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं। अतः परामर्श के लिये परामर्शदाता को श्रवण कौशल में दक्ष होना चाहिए।

(3) चुनौती देना- परामर्शी को लक्ष्य एवं उद्देश्य की दिशा में अग्रसर करने के लिये ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है जो परामर्शी के लिये चुनौती पूर्ण हो तथा वह स्वंय समाधान के मार्ग को ढून्ढकर उसका अनुसरण कर सके। अथवा स्वंय की समझ को विकसित कर सकारात्मक ढंग से संसार को देख सके।

चुनौती देने के लिये परामर्शदाता को परामर्शी के बारे में ज्ञान होना चाहिये। उसे स्वंय तथा परामर्शी के भय और कोरध अथवा अन्य कुसामायोजित व्यवहार की संभावना का बोध होना चाहिए। चुनौती देने के लिये उपयुक्त समय कब होगा। इसका ज्ञान परामर्शदाता को होना चाहिये।

(4) प्रश्न पूछना- परामर्श की प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रश्न के माध्यम से आवश्यक सामग्री एकत्रित कर लेता है। प्रश्न पूछने की कला में दक्ष होना चाहिये। प्रश्न क्यों, क्या, किसका, कब और कैसे से सम्बन्धित होने चाहिये ताकि परामर्शी से सम्बन्धित सही जानकारी प्राप्त हो, लेकिन प्रश्न को परामर्शी की मनोदशा को ध्यान में रखकर उचित समय पर पूछा जाना चाहिये।

उदाहरण-

परामर्शदाता -

1 अपने परिवार के बारे मे बताइए।

2 आपका परिवार आपके लिये क्यूँ महत्वपूर्ण है?

3 क्या आपके माता-पिता आपकी बातों पर ध्यान देते हैं?

4 आपको ऐसा क्यों लगता है, कि आपके माता-पिता आपकी बातों पर ध्यान नही देते हैं।

5 आपके परिवार मे दुर्घटना कब हुई?

6 यह दुर्घटना कैसे हुई?

7 दुर्घटना के बाद आप कैसा महसूस करते हैं?

(5) प्रत्यावर्तन-प्रत्यावर्तन का अर्थ परामर्शी द्वारा अभिव्यक्त के किये गये विचारों, शब्दों आदि के कुछ अंशो का परामर्शदाता द्वारा दोहराना है।

उदाहरण-

परामर्शी- परीक्षाओं के लिये एक महीना शेष है। जब भी मै पढ़ने बैठती हूँ मुझे लगता है कि मैं सब कुछ भूल गई हूँ और मुझे कुछ भी समझ मे नही आ रहा है।

परामर्शदाता-अच्छा आपको लगता है कि आप सब कुछ भूल गए हो।

(6) पुर्नकथनीकरण-परामर्शदाता परामर्श के दौरान परामर्शी के द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं का सही अर्थ जानने तथा किसी नतीजे पर पहुचने के लिये कथनों को सही ढंग से अभिव्यक्त करता है।

उदाहरण

छात्र- गणित विषय में बहुत डर लग रहा है मेरा परीक्षाफल ठीक नही रहेगा। यहॉ कोई भी ऐसा नही है जो मेरी सहायता कर सके।

परामर्शदाता-यदि कोई आपके गणित के कठिन पाठों को समझने मे आपकी सहायता करे तो क्या आपका परीक्षाफल अच्छा रहेगा।

(7) व्यवस्था सम्बन्धी कौशल-परामर्शदाता को अच्छी व्यवसायिक वृत्ति से सम्बन्धित कौशलों मे निपुण होना

परामर्शी तथा परामर्शदाता दोनों की सुरक्षा को ध्यान मे रखना। परामर्श के लिये उपयुक्त भौतिक परिवेश (कक्ष, मेज, कुर्सी, लाइट तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं आदि की व्यवस्था) का निर्माण। अभिलेख तैयार करना। इसके अलावा परामर्शदाता को आधुनिक उपकरणों जैसे-कम्पयूटर, मोबाइल, क्लोज सक्रिट कैमरा, आडियो-विडियो रिकॉडिंग आदि के संचालन मे दक्ष होना चाहिये।

परामर्शी कई प्रकार के शाब्दिक और अशाब्दिक व्यवहार करता है। जिसमे वाणी की गुणवत्ता, सांस लेना, ऑखों के इशारे, चेहरे के भाव, हाथ-पैरों और अन्य शारीरिक गतिविधियॉ शामिल हैं। जिनके अध्ययन के द्वारा परामर्शदाता किसी नतीजे पर पहुच सकता है। यहॉ पर कुछ संकेत और उनके सम्भावित अर्थ को सूचीबद्ध किया गया है। आप इनका अध्ययन कर किसी एक छात्र के व्यवहार का अध्ययन करें-

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. परामर्शन की सफलता ……. के प्रशिक्षण एवं अनुभव पर निर्भर करती है।
2. अच्छा परामर्शदाता कभी भी परामर्श के दौरान एक विधि का ……. नहीं करता है।
3. चुनौती देने के लिये परामर्शदाता को परामर्शी के बारे में ……. होना चाहिये।

3.4 परामर्शदाता के कार्य

विद्यालीय परामर्शन में परामर्शदाता बहुत से कार्यों और सेवाओं का निर्वहन करता है।

व्यक्तिगत परामर्श- परामर्शदाता विद्यालय में अलग से समय निर्धारित कर छात्रों को उनकी शैक्षिक और व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिये परामर्श प्रक्रिया को पूरा करता है।

सामूहिक परामर्श- परामर्शदाता छात्रों के छोटे-छोटे समूह बनाकर उनको समस्याओं के समाधान हेतु प्रेरित करता है। छात्रों के विचारों और आवश्यकताओं को समझकर शैक्षिक योजना का निर्माण करता है।

अर्पण कार्य- परामर्शदाता एक अपर्ण कार्यकर्ता की भांति कार्य करता है। वह छात्रों की समस्या समाधान हेतु उनके परिवार और अन्य स्रोत्रों से प्राप्त अभिलेखों के साथ परामर्शी को अन्य परामर्शदाता के पास भी भेज सकता है अथवा दूसरों से प्राप्त करता है।

सलाह देना- परामर्शदाता छात्र की योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप शिक्षकों ओर अभिभावकों सलाह व सुझाव देता है।

वृत्रिक सहायता- छात्रों की अभिवृत्ति, रूचि, योग्यता, शारीरिक क्षमता के अनुरूप उन्हें रोजगार परक विषयों के चयन करने में सहायता प्रदान करता है ताकि भविष्य में जीवन में सफल हो सकें।

समन्वय-परामर्शदाता अपने कार्यों और सेवाओं द्वारा छात्र, परिवार, शिक्षकों, प्रधानाचार्य एवं चिकित्सकों के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है। उदाहरण के तौर पर परामर्शदाता विद्यालयों में मानकीकृत परीक्षण के सत्र के आयोजन के लिये छात्रों, शिक्षकों और प्रशासकों के मध्य समन्वय का कार्य करता है।

मूल्यांकन-मूल्यांकन के द्वारा परामर्शी की क्रियाओं और सफलता की प्रभावकता का मापन किया जाता है।

शोधकार्य-परामर्शदाता निरन्तर शोधकार्य में संलग्न रहता है तथा उस कार्य का उपयोग भावी परिस्थितियों में परामर्शदाता स्वंय अथवा अन्य परामर्शकों द्वारा परामर्शन सेवाओं में किया जाता है।

3.4.1 कार्य क्षेत्र

परामर्शदाता कहां कार्य करता है?

- शैक्षिक संस्थाओं में
- पुनर्वास केन्द्रों में
- उद्योगों में
- सामुहिक या विभिन्न संगठनों में
- व्यक्तिगत व्यवसाय के रूप मे
- चिकित्सालयों में।

3.5 परामर्शदाता की भूमिका

किसी भी व्यक्ति की समस्यायें और आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न होती हैं जो परामर्शी के व्यवहार को प्रभावित करती है। शैक्षणिक आधार पर परामर्शन की तकनीकियों और प्रक्रिया लक्ष्यों में भिन्नता पायी

जाती है। परामर्शन की प्रक्रिया का कई उपागमों में अध्ययन किया जाता है और प्रत्येक उपागम के अनुसार परामर्शदाता की भूमिका अलग-अलग होती है।

3.5.1 मनोविश्लेषणात्मक उपागम

- परामर्शी को वार्ता के दौरान प्रेरित करना ताकि वह अपने मस्तिष्क में निहित बालवस्था के अनुभवों की अभिव्यक्ति कर सके।
- वार्ता हेतु उपयुक्त परिवेश का निमार्ण करना।
- मनोवैज्ञानिक परिक्षणों के द्वारा परामर्शी का मूल्यांकन करना।
- परामर्शी के चिन्ताग्रस्त रहने के कारणों की खोज करना जिनके कारण उसकी सोच व व्यवहार में अवांछनीय बदलाव आये।
- परामर्शी को उसकी सामर्थ से अवगत कराना तथा जीवन को बेहतर स्थिति में लाने के लिये सामाजिक जागरूकता का विकास करना।
- अनुभव, भावनाओं और विचारों को परामर्शी के साथ बांटना तथा मनोचिकित्सीय सम्बन्धों को स्थापित करना।
- परामर्शदाता एक मनोचिकित्सक तथा मित्र की भूमिका का निर्वहन करता है।

3.5.2 व्यक्ति केन्द्रित उपागम

- परामर्शदाता एक सहायता प्रदान करने वाले व्यक्ति की भूमिका का निर्वहन करता है। वह निर्देशक के रूप में कार्य नहीं करता।
- परामर्शदाता एक ऐसे परिवेश का निर्माण करता है जिसमें परामर्शी को सहज और मुक्त वातावरण की अनुभुति हो तथा वह अपनी समस्याओं से सम्बन्धित समाधान की खोज कर सके।

3.5.3 संज्ञानात्मक उपागम

इस प्रकार के परामर्शन में परामर्शदाता एक शिक्षक अथवा समन्वयक की तरह कार्य करता है। वह परामर्शी की क्षमताओं और योग्यताओं का मूल्यांकन कर शिक्षण कार्य करता है या अन्य शिक्षकों को

परामर्शी के संज्ञानात्मक व्यवहार के बारे में अवगत कराकर उसके अनुरूप शिक्षण कार्य के लिये जानकारी प्रदान करता है।

3.5.4 व्यवहार उपागम

इस प्रकार के परामर्शन में परामर्शदाता सलाहकार, दिशा निर्देशन तथा प्रेरक का कार्य करता है वह परामर्शी के सामें एक आदर्श प्रस्तुत करता है जिससे वह परिस्थितियों के साथ समायोजन कर सके।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

4. शैक्षणिक आधार पर …… की तकनीकियों और प्रक्रिया लक्ष्यों में भिन्नता पायी जाती है।

5. ……. एक सहायता प्रदान करने वाले व्यक्ति की भूमिका का निर्वहन करता है।

6. किसी भी व्यक्ति की समस्यायें और आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न होती हैं जो …….. के व्यवहार को प्रभावित करती है।

3.6 परामर्शदाता के उत्तरदायित्व

यहां परामर्शदाता के उत्तरदायित्वों का वर्णन दो भागों में किया गया गया है। प्रथम भाग उसके कार्यों तथा दूसरा प्रथम भाग व्यवसायिक नैतिकता से सम्बन्धित है।

3.6.1 कार्यकारी उत्तरदायी

परामर्शदाता परामर्शन सम्बन्धी कार्यों कार्य के सफल संगठन और संचालन के लिये उत्तरदायी होता है। उसके कार्यकारी उत्तरदायित्व निम्न हैं-

परामर्श कार्यक्रम की योजना करना।

परामर्शन/निर्देशन समितियों के कार्यों का समन्वयन।

व्यवसायिक वार्ताओं एवं सम्मेलन दिवसों का आयोजन करना।

अनुस्थापन कार्य।

विषयों के चयन में सहायता देना।

अध्ययन-आदतों का अध्ययन कर मार्गदर्शन करना।

व्यवसायों के चयन में सहायता देना।

उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना।

शोध कार्य करना।

प्रकाशन कार्य करना।

अभिभावकों, शिक्षकों, माता-पिता, सम्बन्धित अधिकारियों, व्यक्तियों और चिकित्सकों से परामर्शी के बारे में सूचनायें लेना तथा उन्हें यथास्थिति से अवगत कराना।

अभिलेखों का संग्रहण कर संरक्षित रखना।

3.6.2 नैतिक उत्तरदायित्व - परामर्शदाता के नैतिक उत्तरदायित्व निम्न हैं।

- परामर्शदाता को मानकों और अपनी सीमाओं का ज्ञान होना चाहिए। परामर्शदाता को परामर्शी की समस्या की पहचान कर उस पर अनावश्यक प्रयोग करने से बचना चाहिए।
- परामर्शदाता को अपनी क्षमताओं के अनुरूप निर्णय लेना चाहिए-कि क्या इस समस्या के समाधान में छात्र की सहायता कर सकता हूं या नहीं, यदि नहीं तो किसी अन्य एजेन्सी या परामर्शदाता के पास भेज देना चाहिए।
- परामर्शदाता को परामर्शी से प्राप्त सूचनाओं को गोपनीय रखना चाहिए।
- परामर्शदाता को परामर्शी के अधिकारों के बारे में उचित ज्ञान होना चाहिए।
- परामर्शदाता को नैतिक संहिता की जानकारी होनी चाहिए।
- व्यवसायिक संविदा सम्बन्धी शर्तों की अग्रिम एंव लिखित जानकारी परामर्शी को देना।
- परामर्शी का किसी भी रूप या यौनिक शोषण नहीं किया जाना चाहिए।
- परामर्शदाता द्वारा परामर्शी के प्रति धर्म, जाति, लिंग, क्षेत्र आदि आधार पर भेदभाव नहीं करना।
- प्राप्त सूचनाओं का ईमानदारी से विश्लेषण करना।
- परामर्शी और परामर्शदाता के हितों को संरक्षित करने के लिये भारत में नैतिक संहिता और निर्देशक नियमों से सम्बन्धित

भारतीय पुर्नवास परिषद द्वारा लागू किया गया अधिनियम महत्वपूर्ण है जबकि अमेरिका में अमेरिकिन पर्सनल गाइडेन्स एसोसिएसन द्वारा लागू की गयी संहिता है।

3.7 सारांश

परामर्शदाता एक विशेषज्ञ होता है जिसके ऊपर विद्यालय परामर्शन और निर्देशन सेवाओं को सम्पादित करने की जिम्मेदारी होती है।विघालयों में परामर्शदाता का कार्य कुशल तथा अनुभवी शिक्षक करता है।परामर्शदाता का मुख्य उद्देश्य छात्रों को शैक्षिक, व्यवसायिक और वैयक्तिक समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने और उनका समाधान करने में सहायता प्रदान करना है।एक अच्छे परामर्शदाता को बौद्धिक, शैक्षिक तथा वैयक्तिक रूप से योग्य होना चाहिए तथा उसने परामर्श सेवा से सम्बन्धित आवश्यक प्रशिक्षण किया हो।परामर्शदाता को विभिन्न परामर्श की विभिन्न विधियों तथा परीक्षण एवं उपकरणों के प्रशासन के बारे में ज्ञान होना चाहिए।परामर्शदाता को अपने व्यवसाय से सम्बन्धित नैतिक उत्तरदायित्वों की सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये। इसके लिये उसे समय-समय पर सेवा सम्बन्धी आचार संहिता का अघ्ययन करना चाहिये।कैरियर के रूप में एक परामर्शदाता शैक्षिक संस्थाओं, पुर्नवास केन्द्रों, उद्योगों, सामुदायिक केन्द्रों, चिकित्सालयों अथवा व्यक्तिगत व्यवसाय के रूप में कार्य कर सकता है।परामर्शदाता, परामर्शन हेतु शिक्षक, मित्र, अभिभावक अथवा चिकित्सक की भांति कार्य करता है।विद्यालीय सन्दर्भ में परामर्शदाता का कार्य परामर्श प्रक्रिया का सफल संचालन करना है। सम्बन्धित सूचनाओं की जानकारी से शिक्षकों, अभिभावकों तथा अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों को अवगत करना है।

3.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - परामर्शदाताओं

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - अनुसरण

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - ज्ञान

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - परामर्शन

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर – परामर्शदाता

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर – परामर्शी

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- बारकी वी0 जी0 एण्ड मुख्योपपध्याय, वी0 (1991), गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग-ए मैन्युल, स्र्टलिंग पब्लिसर प्रा0 लि0, न्यू दिल्ली।
- शर्मा आर0 ए0, शैक्षिक एंव व्यायसायिक निर्देशन तथा परामर्श, सूर्या पब्लिकेसन, मेरठ।
- राय, अमरनाथ एंव अस्थाना (2006), निर्देशन एंव परामर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेसन, दिल्ली।
- कक्कड़, एस0 बी0 (1989), 'एजुकेशनल साइकोलॉजी एण्ड गाइडेन्स, द इण्डियन पब्लिकेसन, हिल रोड, अम्बाला केन्ट।
- भटनागर, आशा तथा गुप्ता निर्मल (1999), गाइडेन्स एण्ड कॉउन्सिलिंग: थ्योरिटिकल
- http:// www addictionfo.org/articals/II/I/stages –of–changes model / page 1.html.

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित सूची को ध्यान में रखकर आप अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं का आकलन कीजिए।

(1) बौद्धिक क्षमता

(2) अन्य व्यक्तियों को सक्रियता के साथ सुनने की क्षमता

(3) सहनशीलता

(4) आदर करना

(5) व्यवहार में लचीलापन

(6) दूसरों की भावनाओं को स्वीकार करना

(7) प्रयत्नशील

(8) ईमानदारी

2. एक अच्छे परामर्शदाता में कौन कौन से मुख्य गुण होने चाहिए?

3. विद्यालीय सन्दर्भ में परामर्शदाता के कार्यों का वर्णन कीजिए?

इकाई 4. निर्देशन में शिक्षकों की भूमिका (Role of Teachers in Guidance)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 निर्देशन में शिक्षक की भूमिका
4.3.1 शिक्षक की परिभाषा
4.3.2 निर्देशन कार्य में शिक्षक का महत्व
4.3.3 शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य
4.3.4 शिक्षक का निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्षेत्र
4.4 निर्देशन और कक्षा कक्ष अधिगम
4.4.1 कक्षा कक्ष शिक्षण के सिद्धान्त
4.4.2 शिक्षक का निर्देशक के रूप में कक्षा कक्ष अधिगम में महत्व
4.4.3 कक्षा कक्ष अधिगम में अधिगमकर्ता के रूप् में विद्यार्थी की भूमिका
4.4.4 कक्षा कक्ष अधिगम से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक कारक
4.5 सारांश
4.6 संदर्भ ग्रंथ
4.7 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं, निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, अतः निर्देशन का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने के लिए निर्देशक का योग्य एवं कुशल होना आवश्यक है।

एक कुशल निर्देशक माता पिता की भांति निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति को हाथ पकड़कर सही दिशा में ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त किसी न किसी निर्देशक के सम्पर्क में रहता है; चाहे वह दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी अधिकारी अथवा किसी अन्य रूप में क्यों न हो। व्यक्ति का अधिकांश समय विद्यालय में व्यतीत होता है, अतः निर्देशन कार्य में एक शिक्षक का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. जान सकेंगे कि अच्छे निर्देशन कार्य में शिक्षक की क्या भूमिका होती है।
2. कुशल निर्देशक के रूप में एक अच्छे शिक्षक के गुणों से अवगत करा सकेगी।
3. शिक्षक को परिभाषित कर सकेंगे।
4. यह जान सकेंगे कि एक शिक्षक किन-किन रूपों में निर्देशक की भूमिका का निर्वहन कर सकता है।
5. पाठ्यक्रम को परिभाषित कर सकेंगे।
6. अच्छे पाठ्यक्रम के सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
7. पाठ्यक्रम एवं निर्देशन में समानता एवं अन्तर से अवगत करा सकेगी।

4.3 निर्देशन में शिक्षक की भूमिका Role of Teacher in Guidance

निर्देशन कार्य में शिक्षक की भूमिका को समझने से पहले हमें निर्देशन और शिक्षक इन दो शब्दों को भली-भाँति समझना होगा। अब तक की चर्चा में हम निर्देशन शब्द से भली भाँति परिचित हो चुके हैं। अतः अब हम शिक्षक शब्द से परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

4.3.1 शिक्षक की परिभाषा Definition of Teacher

शिक्षा शब्द 'शिक्ष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'सीखना' अथवा 'सिखाना' अतः जो व्यक्ति सिखाने का कार्य करता है, उसे हम शिक्षक कह सकते हैं। किन्तु एक वास्तविक शिक्षक का कार्य केवल इतना ही नहीं है। अपितु उसे एक कुम्हार की भाँति अपने छात्र को गढ़ना होता है।

जान एडम्स के अनुसार "शिक्षक मनुष्य का निर्माता है"

हुमाँयु कबीर ने शिक्षक को "राष्ट्र का भाग्य निर्माता कहा है"

भारतीय संस्कृति में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की संज्ञा दी गयी है -

गुरुर्ब्रह्मा गुर्रुविष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुर्साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवेनमः।

अतः हम कह सकते हैं कि गुरू ब्रह्मा बनकर अपने शिष्य के भीतर श्रेष्ठता को जन्म देता है, विष्णु बनकर उस श्रेष्ठता का पालन पोषण करता है, तथा शिव बनकर शिष्य के दोषों का संहार करता है, अतः गुरू साक्षात् परब्रह्मा हैं।

4.3.2 निर्देशन कार्य में शिक्षक का महत्व (Importance of Teacher in Guidance)

शिक्षक की उपरोक्त परिभाषायें यह सिद्ध करती हैं कि एक व्यक्ति को जीवनपर्यन्त निर्देशक की आवश्यकता होती है, तथा शिक्षक कुशलतापूर्वक निर्देशक की इस भूमिका का निर्वाह करता है।
निर्देशन कार्य में शिक्षक की भूमिका को हम निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट करते हैं-

1. विद्यार्थी शिक्षक को अपना आदर्श मानता है।
2. अनेक विद्यार्थी शिक्षक का अन्धानुसरण करते हैं।
3. शिक्षक और विद्यार्थी का अत्यधिक सम्पर्क रहता है।
4. शिक्षक विद्यार्थी को भली भांति समझता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम कह सकते हैं, कि एक निर्देशक के रूप में शिक्षक की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी परिवार में माता-पिता, समाज में नेता, जहाज में कप्तान, और बाग में माली की है।

4.3.3 शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य Guidance Related Works of a Teacher

निर्देशक के रूप में शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अनेक प्रकार से निर्देशन प्रदान करता है, शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्यों को समझने के लिए हम उसके कार्यों को निम्नांकित दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. वैयक्तिक निर्देशन Personal Guidance
2. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance

वैयक्तिक निर्देशन Personal Guidance- यद्यपि किसी भी प्रकार का निर्देशन व्यक्ति विशेष को ही प्रदान किया जाता है, अतः प्रत्येक निर्देशन वैयक्तिक निर्देशन की श्रेणी में रखा जा सकता है तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए हम वैयक्तिक निर्देशन के प्रकारों का विभाजन निम्नांकित रूप में कर सकते हैं-

1. **संवेगात्मक निर्देशन Emotional Guidance** -हमारा अधिकाँश जीवन संवेगों के द्वारा संचालित होता है अतः जीवन को उपयुक्त दिशा देने के लिए हमें संवेगों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। किशोरावस्था में बालक का संवेगात्मक विकास तीव्रता से हो रहा होता है, एक शिक्षक के सम्पर्क में अधिकाँशतः किशोर अथवा युवा बालक आते हैं अतः निर्देशक के रूप में शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बालक के संवेगों को सही दिशा देना है।
2. **स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन Health Related Guidance**- किशोरावस्था तूफान की अवस्था कही जाती है, इस अवस्था में बालक का ध्यान अपने स्वास्थ्य पर या तो नहीं रहता

या वह स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियों में उसे शिक्षक के द्वारा कुशल निर्देशन की आवश्यकता होती है, यदि वह अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग नहीं है तो उसे सचेत करने का दायित्व शिक्षक का बनता है। यदि वह अपने शरीर निर्माण के लिए गलत साधनों का प्रयोग कर रहा है तो उसे रोकना भी शिक्षक का दायित्व है।

3. **व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन Behavioural Guidance-** छात्र जीवन में व्यक्ति प्रायः व्यवहार कुशल नहीं होता जिस कारण उसके समक्ष सामाजिक समायोजन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। एक कुशल निर्देशक के रूप में शिक्षक अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देशन देता है जिससे वह अपने साथियों और समाज में भली-भाँति समायोजित हो सके।

शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance

जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्ति के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय उसका अध्ययन काल है, अतः व्यक्ति के लिए उचित शैक्षिक निर्देशन अनिवार्य है, शिक्षक के शैक्षिक निर्देशन सम्बन्धी कार्य को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं-

1. **उपयुक्त विषय के चुनाव में सहायता करना Helpful in Selecting Appropriate Subject** -पूर्व माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अध्ययन के विषयों का चयन करना है, प्रायः विषय चयन के सम्बन्ध में विद्यार्थी अपने साथियों का अनुसरण करते हैं और गलत विषयों का चुनाव कर बैठते हैं। शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह विद्यार्थी की रूचि और योग्यता का ध्यान रखते हुए उसे विषय चयन में इस प्रकार सहायता प्रदान करे जिससे विद्यार्थी अपना भविष्य सुरक्षित कर सके।
2. **ज्ञान प्राप्ति में सहायता करना Helpful in Aquiring Knowledge-** अनुपयुक्त परीक्षा प्रणाली और निम्नस्तरीय पुस्तकों की भीड़ ने विद्यार्थियों के ज्ञान प्राप्ति के स्तर को कम कर दिया है। शिक्षक का दायित्व यह है कि वह अपने विद्यार्थियों को विषय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करे तथा ज्ञान वृद्धि के लिए आवश्यक पुस्तकें उपलब्ध कराने में सहायता करे।
3. **श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की विद्या सिखाना Teaching, Better Style of Manifestetion-** आपने अपने विद्यार्थी जीवन में प्रायः यह अनुभव किया होगा कि जितना हम किसी विषय विशेष में जानते हैं, मौखिक अथवा लिखित अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होने पर हम स्वयं को उतना अभिव्यक्त नहीं कर पाते। इस तरह की समस्या अधिकांश विद्यार्थियों के जीवन में आती है। एक कुशल निर्देशक के रूप में शिक्षक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह उन्हें मौखिक एवं लिखित अभिव्यक्ति के उपाय सिखाने हेतु उचित निर्देशन प्रदान करें।

4. **कक्षा कक्ष व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन Guidance Related to Class Room Behaviour**- विद्यालय स्तर पर विद्यार्थी प्रायः कक्षा कक्ष में किये जाने वाले व्यवहारों से अनभिज्ञ रहता है। शिक्षक के कक्षा में प्रवेश करते समय, अध्यापन कार्य करते समय अथवा कक्षा से शिक्षक के बाहर जाते समय विद्यार्थी को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए यह निर्देशन देने का दायित्व शिक्षक का है। इतना ही नहीं शिक्षक के समक्ष अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त करने अथवा अपनी बात कहने का तरीका भी शिक्षक को ही सिखाना चाहिए।
5. **अध्ययन सामग्री का चयन करने के लिए निर्देशन Guidance to Select the Study**-Material विद्यालय में पढ़ाये गये पाठ को आत्मसात करने के लिए विद्यार्थी को श्रेष्ठ अध्ययन सामग्री की आवश्यकता होती है। बाजार में उपलब्ध अनेक प्रकार की अध्ययन सामग्री में से कौन सी सामग्री स्तरीय एवं उपयोगी है इस बात का ज्ञान विद्यार्थी को नहीं होता। अतः उचित अध्ययन सामग्री का चयन करने हेतु विद्यार्थी को निर्देशन प्रदान करना शिक्षक का दायित्व है।
6. **प्रयोगात्मक कार्य के लिए निर्देशन Guidance for Practical Work** - विद्यालय की प्रयोगशालाओं में उपलब्ध उपकरणों तथा रसायनों से विद्यार्थी प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे प्रयोगशाला उपकरण, रसायन अथवा स्वयं को गम्भीर क्षति पहुँचा सकते हैं। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह प्रयोगशाला में कार्य करते समय विद्यार्थियों के साथ स्वयं भी उपस्थित रहे तथा उन्हें प्रयोगात्मक कार्य के लिए उचित निर्देशन प्रदान करे।

4.3.4 शिक्षक का निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्षेत्र (Scope of a Teacher as a Guide) - शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्यों की चर्चा करने से पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है कि किन परिस्थितियों में विद्यार्थी को शिक्षक के निर्देशन की आवश्यकता होती है। लेखक के मतानुसार निम्नांकित कार्य क्षेत्र ऐसे हैं जहां विद्यार्थी को शिक्षक के निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है-

1. शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का क्षेत्र
2. कुसमायोजित बालकों के समायोजन का क्षेत्र
3. शैक्षिक विकास का क्षेत्र
4. सूचनाओं को समझने एवं अनुसरण करने का क्षेत्र
5. शैक्षिक उपकरणों एवं रसायनों का प्रयोग
6. पुस्तकाल।
7. पाठ्य-सहगामी गतिविधियाँ
8. विशिष्ट बालकों के लिए निर्देशन

निर्देशक के रूप में शिक्षक की भूमिका का निर्वहन निम्न रूपों में किया जा सकता हैः-

i. एक व्यक्ति के रूप में
ii. कक्षा शिक्षक के रूप में
iii. विषय शिक्षक के रूप में
iv. खेल शिक्षक के रूप में
v. प्रशासक के रूप में
vi. अनुशासक के रूप में

इसके अतिरिक्त शिक्षक विद्यार्थी का अभिभावक और नेता भी होता है।

4.4 निर्देशन और कक्षा कक्ष अधिगम Guidance and Classroom Learning

यदि हम शिक्षण प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक देखें तो हम पायेंगे कि शिक्षण का कार्य निर्देशन से अधिक कुछ भी नहीं है। प्रायः विद्यालयों में दो प्रकार से शिक्षण कार्य किया जाता है। शिक्षक केन्द्रित तथा छात्र केन्द्रित।

व्याख्यान विधि से किया गया कार्य शिक्षक केन्द्रित होता है और इसमें छात्र केवल सुनते हैं। इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान ऊपर से थोपा गया ज्ञान होता है।

छात्रों की सहायता से किया जाने वाला शिक्षण कार्य एक प्रकार से निर्देशन का ही दूसरा रूप है, शिक्षक विषय को प्रस्तावित करके उसका विकास छात्रों पर छोड़ देता है तथा बीच-बीच में आवश्यकतानुसार निर्देशन प्रदान करता रहता है। कक्षा कक्ष अधिगम की इस प्रक्रिया के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

कक्षा कक्ष अद्यिगम में निर्देशन की भूमिका (Roll of Guidance in Classroom Learning)-

कक्षा कक्ष अद्यिगम में निर्देशन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रतिदिन के कक्षा कक्ष व्यवहार में एक कुशल शिक्षक अधिगम का उच्च स्तर प्राप्त करना चाहता है। शिक्षण की श्रेष्ठ कला, शिक्षक का उच्चस्तरीय ज्ञान तथा छात्रों का उच्च मानसिक स्तर मिलकर श्रेष्ठ अधिगम के लिए उत्तरदायी हैं किन्तु उक्त समस्त तथ्य निर्देशन की भूमिका के बिना आधारहीन हैं। जब प्रतिदिन के कक्षा-कक्ष व्यवहार में एक शिक्षक कुशल निर्देशक की भूमिका का निर्वहन करता है तब वह शिक्षण की गतिविधि को आधार प्रदान कर रहा होता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि प्रतिदिन का कक्षा-कक्ष व्यवहार

निर्देशन की आधार भूमि पर ही सम्पन्न हो सकता है। आगे की जाने वाली चर्चा कक्षा-कक्ष अधिगम में निर्देशन की भूमिका को और अधिक स्पष्ट करने में सक्षम होगी।

4.4.1 कक्षा कक्ष शिक्षण के सिद्धान्त Theories of Classroom Teaching

1. **पाठ्यक्रम का ज्ञान Knowledge of Curriculum**- किसी भी कक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षण एवं निर्देशन कार्य का मूल आधार है शिक्षक को कक्षा कक्ष शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व सर्वप्रथम अपने लिए निर्धारित कक्षा के पाठ्यक्रम से भली-भाँति अवगत हो जाना चाहिए तभी वह उचित प्रकार से शिक्षण कार्य करने में सक्षम होगा।
2. **सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण Determination of General Objectives** -कक्षा कक्ष शिक्षण आरम्भ करने से पहले शिक्षक को वर्षपर्यन्त किये जाने वाले शिक्षण कार्य के लिए उद्देश्यों का निर्धारण कर लेना चाहिए। उसे पहले से ही यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्धारित किया गया है, तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकेगी।
3. **शिक्षण लक्ष्य का निर्धारण Determination of Learning Aims**-पूरे वर्ष के लिए शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण करने के पश्चात शिक्षक का प्रथम दायित्व यह बनता है कि वह अपने प्रतिदिन के शिक्षण कार्य की योजना बना लें। उक्त योजना में उसे यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कक्षा में प्रवेश करने से लेकर एक दिन का शिक्षण कार्य समाप्त करने के पश्चात वह किन-किन लक्ष्यों को प्राप्त कर लेगा।
4. **विद्यार्थी के ज्ञान का आकलन Estimate of Student's Knowledge**-कक्षा में जाने से पूर्व हमें यह अवश्य पता होना चाहिए कि हम जिन विद्यार्थियों को पढ़ाने जा रहे हैं, उनका मानसिक स्तर क्या है तथा हमारे विषय से सम्बन्धित कितना और किस प्रकार का ज्ञान छात्र पहले से ही रखते हैं छात्रों के ज्ञान का स्तर पता चल जाने से शिक्षण का कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।
5. **सहायक सामग्री का एकत्रीकरण Collection of Helping Aid**- एक कुशल शिक्षक के रूप में हमें अपने शिक्षण विषय से सम्बन्धित वह सामग्री पहले से ही एकत्र कर लेनी चाहिए जो शिक्षण कार्य में सहायक हो सकती है। यह सामग्री किसी भी प्रकार की कोई वस्तु, उपकरण, चित्र, रेंखाचित्र, ग्राफ, चार्ट, मानचित्र, किसी वस्तु का मॉडल आदि हो सकती है।
6. **विद्यार्थियों में विषय के प्रति रूचि उत्पन्न करना To Increase the Interest of Student for Particular Subject** - गली में तमाशा दिखाने वाला मदारी और कक्षा में

शिक्षण करने वाले शिक्षक दोनों की भूमिका इस दृष्टि से समान होती है कि वे स्वयं में अथवा अपने विषय में बालक का रूझान विकसित किये बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। विशेषकर किशोरावस्था की ओर बढ़ रहे बालक केवल उन्हीं कार्यों को पूरे मन से सम्पादित करते हैं जिनमें उनकी रूचि होती है। अतः कक्षा कक्ष में जाने पर एक शिक्षक का पहला कर्तव्य यह बनता है कि वह किसी भी प्रकार से पढ़ाये जाने वाले विषय में विद्यार्थी की रूचि का विकास करे।

7. **मूल विषय का प्रस्तुतीकरण Presentation of Main Subject** - अंग्रेजी में एक कहावत है कि well begin is half done अर्थात अच्छी तरह से आरम्भ किया गया कार्य सहजता और सरलता से सम्पन्न होता है यह बात कक्षा कक्ष शिक्षण पर भी पूरी तरह से लागू होती है, अतः एक शिक्षक का यह दायित्व बनता है कि वह पढ़ायी जाने वाली विषयवस्तु को अपनी सर्वोत्तम क्षमता का उपयोग करते हुए प्रस्तुत करे।
8. **पाठ का विकास Development of Lesson-** पाठ के उत्तम प्रस्तुतीकरण के बाद शिक्षक के भीतर बैठा हुआ निर्देशक सक्रिय हो जाता है। शिक्षण की कला में पारंगत शिक्षक इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि ईश्वर ने समस्त प्रकार का ज्ञान बालक के भीतर पहले से ही भरा हुआ है किन्तु उसको विकसित करने का दायित्व शिक्षक का है। एक कुशल शिक्षक अपने विद्यार्थियों पर अपना ज्ञान कभी भी थोपता नहीं है अपितु वह तो उनके भीतर के ज्ञान को ही निर्देशन की विभिन्न विधियों से बाहर निकालने का कार्य करता है। इस बात को हम निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट करेंगे।

    a. **विद्यार्थियों की सुनिश्चित भागीदारी Confirmation of Participation of Students** - पाठ के विकास की प्रक्रिया में एक कुशल शिक्षक यह सुनिश्चित कर लेता है कि पाठ का विकास करते समय कक्षा के अधिकांश छात्र सक्रिय रूप से भागीदार रहें। वस्तुतः पाठ का वास्तविक विकास विद्यार्थी ही करते हैं। शिक्षक तो अपने उचित निर्देशन के माध्यम से पाठ को उपयुक्त दिशा और सही गति प्रदान करता है।
    b. **कक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण गति Teaching Speed Acoording to Requirment of Classes**- किसी भी पाठ का विकास किस गति से होगा यह कक्षा के विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। वास्तव में कक्षा में उपस्थित विद्यार्थियों की रूचि तथा उनका मानसिक स्तर पाठ के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।

c. **विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का विशेष ध्यान Special Care for Special Child** - किसी भी कक्षा में प्रायः तीन प्रकार के विद्यार्थी होते हैं कुछ मानसिक स्तर पर पिछड़े हुए कुछ प्रखर तथा अधिकांश सामान्य बुद्धि के प्रायः शिक्षण कार्य को सामान्य बुद्धि के विद्यार्थी संचालित करते हैं, किन्तु कक्षा के पिछड़े एवं प्रखर विद्यार्थियों की आवश्यकतायें अलग-अलग होती है। अतः शिक्षक को इन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

d. **सहायक सामग्री का सटीक प्रयोग Appropriate use of Material Aid** - शिक्षण कार्य के लिए कक्षा में उपकरण आदि सहायक सामग्री का ले जाना ही शिक्षक के लिए पर्याप्त नहीं है अपितु उसे इस बात का भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए कि किस प्रकार की सामग्री का प्रयोग कब और कैसे करना है। सहायक सामग्री वास्तव में शिक्षण की कला को जानने वाले अध्यापकों के हाथ में एक महत्वपूर्ण उपकरण तथा अकुशल शिक्षक के हाथ में खतरे की घंटी है।

पाठ के विकास में शिक्षक की निर्देशक के रूप में भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है इस पर सम्पूर्ण चर्चा करने के लिए अलग से एक पुस्तक लिखने की आवश्यकता है। समय तथा स्थान के अभाव में यहाँ कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा की गयी है। उक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त कक्षा कक्ष शिक्षण की प्रक्रिया में कुछ और बिन्दु भी है जो अधिगम के स्तर को बढ़ाते हैं, जैसे-आवश्यकतानुसार विषय की गहराई में जाना, बीच-बीच में प्रश्नोत्तर, प्रेरणात्मक वाक्यों का प्रयोग, उपयुक्त उदाहरणों का प्रयोग तथा हाव-भाव का प्रदर्शन आदि।

9. **प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन Evaluation of Aquired Knowledge** -एक कुशल शिक्षक प्रतिदिन के कक्षा कक्ष शिक्षण के अन्तिम चरण में इस बात का मूल्यांकन अवश्य करता है कि उसके विद्यार्थियों ने आज की कक्षा में किस सीमा तक ज्ञान प्राप्त किया।
10. **समस्त पाठ की संक्षिप्त आवृत्ति Brief Recaptulation of Whole Lesson-** कक्षा कक्ष शिक्षण का समापन करते हुए एक कुशल शिक्षक को उस दिन के समस्त पाठ की संक्षिप्त आवृत्ति अवश्य करनी चाहिए यह प्रक्रिया प्राप्त किये गये ज्ञान को स्थिर करने में सहायक होती है।
11. **पुनरावलोकन के अवसर प्रदान करना To Provide Oppurtunity of Revision** - केवल एक बार विषय वस्तु को भली-भाँति पढ़ाकर शिक्षक का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता, अपितु छात्र को विषयवस्तु के पुनरावलोकन का अवसर प्रदान करना भी शिक्षक का दायित्व बनता है। इस कार्य के लिए वह ग्रह कार्य की सहायता ले सकता है।

12. **प्राप्त ज्ञान का व्यवहारिक पटल पर आकलन Evaluation of acquired Knowledge on the Practical Basis** - मेरी कक्षा के छात्रों ने कितना सीखा? क्या वह सीखे हुए ज्ञान का उपयोग पर पायेंगे? इस तरह के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए उसे छात्रों के समक्ष भविष्य में ज्ञान के प्रयोग हेतु परिस्थितियों का निर्माण करना होगा, प्रयोगशाला में प्रयोग कराने होंगे तथा आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को उपयुक्त निर्देशन देना होगा।

उक्त बिन्दुओं के माध्यम से की गयी अति संक्षिप्त चर्चा यह स्पष्ट करती है कि कक्षा कक्ष शिक्षण में अधिगम का श्रेष्ठ स्तर प्राप्त करने के लिए एक शिक्षक तथा उसके द्वारा दिया जाने वाला निर्देशन अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

4.4.2 शिक्षक का निर्देशक के रूप में कक्षा कक्ष अधिगम में महत्व Importance of Teacher as a Guide in Classroom Learning

शिक्षक के महत्व को स्वीकार करते हुए विद्वानों ने उसकी तुलना जहाज में कप्तान, घड़ी में कमानी तथा शरीर में मस्तिष्क से की है। इतनी महत्वपूर्ण स्थितियों को संजोकर रखने वाले शिक्षक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कक्षा कक्ष शिक्षण है। एक विषय शिक्षक के रूप में शिक्षक अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन करता है अतः यह स्पष्ट ही है कि कक्षा कक्ष शिक्षण में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।

किसी विषय का विशेषज्ञ शिक्षक यदि निर्देशन की कला से अनभिज्ञ है तो उसकी विद्वता विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी इसमें संशय है। किन्तु, यदि शिक्षक निर्देशन कार्य को निपुणतापूर्वक सम्पन्न करना जानता है तो उसकी यह विशेषता न केवल शिक्षक को सफल सिद्ध करेगी अपितु ऐसे शिक्षक के विद्यार्थी ज्ञान के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित करने में सफल होंगे, अतः एक शिक्षक के लिए जितना अनिवार्य विषय विशेषज्ञ होना है उतना ही निर्देशन की कला में निपुण होना भी है।

4.4.3 कक्षा कक्ष अधिगम में अधिगमकर्त्ता के रूप में विद्यार्थी की भूमिका Role of a Student as a Learner in Classroom Learning

कुम्हार चाहे कितना ही कुशल क्यों न हो बर्तन बनाने की मिट्टी यदि उत्तम प्रकार की नहीं है तब श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त होने की आशा कम रहती है। इसी प्रकार एक योग्य शिक्षक के कुशल निर्देशक होते हुए भी अधिगम का स्तर कक्षा के विद्यार्थियों पर अधिक निर्भर करता है। यदि कक्षा के विद्यार्थी श्रेष्ठ मानसिक स्तर (High I.Q) स्वस्थ शरीर वाले एवं विषय में रूचि रखने वाले होंगे तभी विषय विशेष में उनका

अधिगम का स्तर ऊंचा होगा। निश्चित रूप से निर्देशक के रूप में शिक्षक की भूमिका जितनी अधिक महत्वपूर्ण है अद्यिगमकर्ता के रूप में उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका अध्येता (विद्यार्थी) की है।

4.4.4 कक्षा कक्ष अद्यिगम से सम्बन्धित कुछ मनोवैज्ञानिक कारक Some Psychological Factors Related to Classroom Learning-

किसी भी कार्य को भली-भाँति सम्पन्न करने की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार कक्षा कक्ष अद्यिगम में भी मनोवैज्ञानिक कारक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, यहाँ हम कुछ अति महत्वपूर्ण कारकों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

1. शिक्षक को बालक के ज्ञान का स्तर पता होने की दशा में अधिगम का स्तर बढ़ने की सम्भावना रहती है।
2. शिक्षक द्वारा ज्ञान प्रदान करने से पूर्व विद्यार्थी की विषय के प्रति रूचि विकसित कर लेने से रूचिपूर्वक पढ़े गये पाठ सदैव श्रेष्ठ परिणाम देने वाले होते हैं।
3. विषय के प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित संसाधनों को पहले से ही एकत्र कर लेना तथा कक्षा में उनका सहज और सटीक प्रदर्शन भी अधिगम के स्तर को बढ़ाने में सफल होता है।
4. कक्षा कक्ष में शिक्षण करते समय शिक्षक पाठ के विकास में विद्यार्थियों की जितनी अधिक भागीदारी सुनिश्चित करेगा अधिगम का स्तर उतना ही अधिक होगा।
5. पाठ का विकास करते समय विद्यार्थियों की अनुकूल प्रतिक्रिया मिलने पर शिक्षक द्वारा उनके लिए प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग अधिगम के स्तर को बढ़ाने का कार्य करता है।
6. आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को प्रेरित करने वाले वाक्य भी अद्यिगम का स्तर बढ़ाते हैं।
7. एक कुशल निर्देशक समय-समय पर कक्षा की प्रगति का मूल्यांकन भी करता रहता है जिससे वह अधिगम के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उपयुक्त प्रयास कर सके।
8. उपरोक्त समस्त कारकों के साथ यदि विद्यार्थी में दृढ़ इच्छा शक्ति एवं आत्मविश्वास का विकास कर दिया जाये तो हम निश्चित रूप से अधिगम के श्रेष्ठ स्तर को प्राप्त कर सकेगें।

4.5 सारांश

निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, इस कार्य में शिक्षक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि विद्यार्थी शिक्षक को न केवल अपना आदर्श मानते हुए उसका अन्धानुसरण करता है अपितु उसके अत्यधिक सम्पर्क में होने के कारण शिक्षक भी अपने विद्यार्थी को भली भाँती समझता

है। एक अच्छा शिक्षक अपने विद्यार्थी को वैयक्तिक निर्देशन के अन्तर्गत संवेगात्मक निर्देशन, स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन एवं व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन प्रदान करता है। इसी प्रकार शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत वह उपयुक्त विषय के चुनाव में सहायता करते हुए न केवल ज्ञान प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है अपितु श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की विद्या भी सिखाता है। एक शिक्षक अपने विद्यार्थी को कक्षा कक्ष व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन देने के साथ-साथ अध्ययन सामग्री का चयन करने में सहायता तथा प्रयोगशाला कार्य के लिए निर्देशन भी प्रदान करता है। एक शिक्षक अपने विद्यार्थी को कभी एक व्यक्ति के रूप में, कभी कक्षाध्यापक के रूप में, कभी विषय शिक्षक के रूप में, कभी खेल शिक्षक के रूप में और कभी अनुशासक के रूप में निर्देशन प्रदान करता है।

निर्देशन एवं पाठ्यक्रम में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी पाठ्यवस्तु एवं पाठ्यक्रम को पर्याय मान लिया जाता है किन्तु पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का एक अंग मात्र है। विद्यालय के सन्दर्भ में की गयी प्रत्येक प्रक्रिया पाठ्यक्रम का ही अंग होती है। अच्छे पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें अनेक बातों का ध्यान रखना चाहिए। जैसे पाठ्यक्रम न केवल ज्ञान वृद्धि में सहायक हो अपितु शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक हो। बालक के समग्र विकास में सहायता करने वाला पाठ्यक्रम उसे अवकाश के समय का सदुपयोग करना सिखाये और जीवन की वास्तविकताओं के निकट हो।

निर्देशन और पाठ्यक्रम दोनों ही छात्र केन्द्रित एवं विषय केन्द्रित होने चाहिए तथा बालक के समग्र विकास में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होनी चाहिए। एक कुशल शिक्षक अपने विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के माध्यम से श्रेष्ठ निर्देशन प्रदान करता है तथा कक्षा कक्ष अध्ययन के समय अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का ध्यान रखता है।

4.6 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)

5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

4.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक कुशल निर्देशक के रूप में शिक्षक के दायित्वों का वर्णन करो।
2. निर्देशक के रूप में शिक्षक को किन-किन भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है।
3. एक सफल कक्षा कक्ष अधिगम के लिए किन बातों की आवश्यकता होती है।
4. 'कक्षा कक्ष अधिगम में शिक्षक एवं विद्यार्थी एक दूसरे के पूरक हैं' सिद्ध कीजिए।

इकाई-5 - समाजीकरण का संप्रत्यय एवं प्रक्रिया (Concept & Process of Socialization)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा
5.4 समाजीकरण की विशेषताएं
5.5 समाजीकरण के स्तर
5.5.1 मौखिकावस्था
5.5.2 शौच सोपान
5.5 .3 ऑडियन सोपान
5.4.4 किशोरावस्था
5.5.5 युवावस्था
5.5.6 प्रौढ़ अवस्था
5.5.7 वृद्धावस्था
5.6 समाजीकरण के अभिकरण
5.6.1 प्राथमिक संस्थाएं
5.6.2 द्वितीयक संस्थाएं
5.7 सारांश
5.8 बोध प्रश्न
5.9 शब्दावली
5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 प्रस्तावना

प्रत्येक शिशु जन्म के समय एक शारीरिक ढांचा मात्र होता है। वह न तो अपने बारे में और न ही समाज के बारे में कुछ जानता है और न ही किसी सामाजिक गतिविधि में भाग लेने की स्थिति में होता है। उसमें किसी प्रकार के सामाजिक गुण नहीं होते। वह न तो सामाजिक होता है, न असामाजिक और न समाज विरोधी। समाज में उसे किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, समाज के क्या नियम कानून हैं, समाज के रीति रिवाजों, मूल्यों व मानदंडों आदि से वह अनभिज्ञ होता है लेकिन वह कुछ

शारीरिक क्षमताओं के साथ पैदा होता है, इन क्षमताओं के कारण ही वह बहुत कुछ सीख लेता है और समाज का क्रियाशील सदस्य बन जाता है। यह सीखने की क्षमता समाज व सामाजिक संपर्क से ही विकसित होती है । सामाजिक संपर्क के कारण ही व्यक्ति समाज के रीति- रिवाजों, प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, संस्कृति एवं सामाजिक गुणों को सीखता है और सामाजिक प्राणी का दर्जा प्राप्त करता है । इस सीखने की प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहते हैं । समाजीकरण की प्रक्रिया प्राणी शास्त्रीय प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदल देती है ।

बालक का जन्म परिवार में होता है । परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है । सर्वप्रथम परिवार के माध्यम से ही बालक अपने सामाजिक, सांस्कृतिक व भौतिक पर्यावरण को आत्मसात करता है । परिवार ही बालक को समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनाता है। परिणामस्वरूप वह समाज की गतिविधियों में भाग लेने में समर्थ होता है । समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति को सामान्य व्यवहार करने में समर्थ बनाती है ।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- व्यक्ति के लिए समाज व सामाजिक संपर्क क्यों आवश्यक है यह जान सकेंगे।
- समाजीकरण के विभिन्न स्तरों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- समाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार, पड़ोस व मित्र समूह की भूमिका के संदर्भ में विवेचना कर सकेंगे।

5.3 समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

समाजीकरण का अर्थ नवजात शिशु को सामाजिक प्राणी बनाने की प्रक्रिया से लिया जाता है। समाजीकरण की अवधारणा का प्रयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है जिनके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक- सांस्कृतिक संसार से परिचित कराया जाता है। इस अर्थ में समाजीकरण वह विधि है जिसके द्वारा संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित किया जाता है । इसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह एवं समाज के मूल्यों, जनरीतियों, लोकाचारों, आदर्शों एवं सामाजिक उद्देश्यों को सीखता है । समाजीकरण का अर्थ निम्न परिभाषाओं से और स्पष्ट हो जाएगा ।

जॉनसन के अनुसार: 'समाजीकरण सीखने की वह प्रक्रिया है जो सीखने वाले को सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह करने के योग्य बनाती है।' इसका तात्पर्य है कि अपनी प्रस्थिति का बोध व उसके अनुरूप भूमिका निभाने की विधि को हम समाजीकरण द्वारा सीखते हैं।

गिलिन व गिलिन: 'समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह में एक क्रियाशील सदस्य बनने हेतु समूह की कार्यविधियों से समन्वय स्थापित करता है उसकी परंपराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने साथियों के प्रति सहन शीलता की भावना को विकसित करता है।' गिलिन व गिलिन ने समाजीकरण का आशय एक ऐसी प्रक्रिया से लिया है जिसके द्वारा **व्यक्ति** समूह का क्रियाशील सदस्य बनता है। समाजीकरण ही व्यक्ति का सामाजिक परिस्थिति से अनुकूलन कराता है और व्यक्ति में सहन शीलता की भावना को विकसित करता है।

ब्रूम व सेल्जनिक: के अनुसार समाजीकरण के दो पूरक अर्थ हैं - 'संस्कृति का हस्तांतरण और व्यक्तित्व का विकास' इसका अर्थ है कि समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा ही एक व्यक्ति अपनी संस्कृति को सीखता है। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है और संस्कृति को सीखकर ही बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है।

टालकॉट पारसंस: व्यक्ति द्वारा सामाजिक मूल्यों को सीखने और उन्हें आंतरीकृत करने को ही समाजीकरण कहते हैं। व्यक्ति समाजीकरण के द्वारा सामाजिक मूल्यों को सीखता ही नहीं वरन् उनको आत्मसात करता है। ये मूल्य उसके मस्तिष्क व व्यक्तिव की स्थायी निधि बन जाते हैं जिससे एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक स्थिति में वह हमेशा वैसा ही व्यवहार करता है।

हारोलांबोस ने लिखा है: 'वह प्रक्रिया जिसके द्वारा लोग अपने समाज की संस्कृति को सीखते हैं समाजीकरण के नाम से जानी जाती है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तिव का विकास करता है और समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है। समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक मानदंडों को सीखता है और समाज के साथ अपना अनुकूलन करता है, इससे समाज में नियंत्रण बना रहता है। समाजीकरण सभी सदस्यों को समाज सम्मत व्यवहार सिखाकर सामाजिक नियंत्रण की समस्या को हल कर देता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मानदंडों, मूल्यों व समाज सम्मत व्यवहार को सीखने की प्रक्रिया ही समाजीकरण है जो व्यक्ति को समाजोचित व्यवहार करना सिखाती है।

5.4 समाजीकरण की विशेषताएं

समाजीकरण के अर्थ एवं परिभाषा द्वारा इसकी कुछ विषेशताएं उभर कर सामने आती हैं जो निम्नलिखित हैं:

- **समाजीकरण आजीवन चलने वाली प्रक्रिया:** समाजीकरण कुछ विशेष समय तक चलने वाली प्रक्रिया नहीं है वरन् बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है । समाजीकरण की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है । व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रस्थितियां धारण करता है और उनके अनुसार भूमिका निर्वाह करना सीखता है। बचपन में वह पुत्र-पुत्री के रूप में माता-पिता भाई-बहिन व अन्य संबंधियों के साथ व्यवहार करना सीखता है । बड़े होकर नए पदों के अनुरूप भूमिका का निर्वाह करना सीखता है । समाज में व्यक्ति को अनेक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जैसे पदाधिकारी के रूप में यात्रा करते समय क्रेता या विक्रेता के रूप में अलग अलग भूमिकाएं होती हैं जिनके अनुसार उसे व्यवहार करना होता है । इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक नई-नई प्रस्थितियां हमारे सामने आती रहती हैं तथा हम उनसे संबंधित व्यवहार को सीखते रहते हैं । मनुष्य के जीवन काल में समाजीकरण की प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं होती ।
- **सीखने की प्रक्रिया:** समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है । इस सीखने की प्रक्रिया में सामाजिक मूल्यों, मानदंडों एवं समाज स्वीकृत व्यवहारों को लिया जा सकता है । इन समाज सम्मत व समायोजित क्रियाओं को सीखकर व्यक्ति समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बन जाता है । अतः समाज सम्मत व्यवहारों, प्रतीमानों व मूल्यों को सीखना ही समाजीकरण है क्योंकि ये क्रियाएं व्यक्ति को समाज का क्रियाशील सदस्य बनाती हैं, जबकि चोरी करना, गाली देना आदि को समाजीकरण नहीं कहा जाएगा क्योंकि ये क्रियाएं ना तो समाज-स्वीकृत हैं और ना ही इन्हें सीख कर व्यक्ति समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है ।
- **समय व स्थान सापेक्ष प्रक्रिया:** समाजीकरण की प्रक्रिया समय व स्थान सापेक्ष है । जो व्यवहार एक समाज में मान्य है किसी दूसरे समाज या स्थान पर वही व्यवहार अमान्य ठहराए जा सकते हैं । उदाहरणार्थ अफ्रीका की मसाई जनजाति में एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए एक-दूसरे पर थूकना सिखाया जाता है, किंतु यह व्यवहार भारत में अनुचित व निंदनीय माना जाता है । समाजीकरण की प्रक्रिया समय सापेक्ष भी है । समय सापेक्ष का अर्थ है एक समाज में दो भिन्न कालों में समाजीकरण की विषय वस्तु अलग-अलग हो सकती है । उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में नव विवाहित वधू से पर्दे की अपेक्षा की जाती थी लेकिन

आधुनिक भारत में नए मूल्यों के प्रादुर्भाव से इस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा नव वधू से नहीं की जाती।

- **संस्कृति को आत्मसात करने की प्रक्रिया:** समाजीकरण की प्रक्रिया में हम संस्कृति को आत्मसात करते हैं जिससे संस्कृति व्यक्तित्व का अंग बन जाती है। संस्कृति के दो रूप हैं (1) भौतिक संस्कृति (2) अभौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति के अंतर्गत मानव निर्मित मूर्त वस्तुएं आती हैं जैसे मकान, पंखा, टेबल , पैन आदि। अभौतिक संस्कृति में मानव निर्मित अभौतिक या अमूर्त वस्तुएं आती है जैसे विचार, रीति रिवाज, मानदंड व मूल्य आदि समाजीकरण संस्कृति के दोनों रूपों भौतिक व अभौतिक स्वरूपों को आत्मसात करने की प्रक्रिया है।
- **समाजीकरण समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनाने की प्रक्रिया**: समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति सामाजिक कार्यों में भाग लेने योग्य बनता है। इसी के द्वारा वह प्राणीशास्त्रीय प्राणी से सामाजिक प्राणी में बदल जाता है। पद-प्रस्थिति के अनुसार भूमिका निर्वाह करना सीख जाता है और अन्य व्यक्तियों की अपेक्षाओं के अनुसार व्यवहार करने लगता है। समाजीकरण के अभाव में व्यक्ति समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य नहीं बन सकता।
- **स्व का विकास**: समाजीकरण के द्वारा व्यक्ति में स्वयं के प्रति चेतना तथा जागरूकता का विकास होता है। व्यक्ति में इस ज्ञान का विकास होता है कि समाज के अन्य सदस्य उसके संबंध में क्या सोचते हैं। समाजीकरण प्रक्रिया की सबसे प्रमुख विशेषता यही है कि इसके द्वारा व्यक्ति स्वयं का मूल्यांकन दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि से करना सीखता है। इसी को समाज शास्त्रियों ने जैसे - कूले ,मीड, दुर्खीम आदि ने 'स्व' का विकास कहा है जो कि समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है।

बोध प्रश्न -

1. समाजीकरण क्या है?
2. समाजीकरण की प्रक्रिया के टॉलकॉट पारसंस ने कितने स्तर बताए हैं?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1.सामाजिक मानदंडों, मूल्यों व समाज समस्त व्यवहार को सीखने की प्रक्रिया ही समाजीकरण हैं।

2.टॉलकॉट पारसंस ने समाजीकरण प्रक्रिया के चार स्तर बताए हैं वे इस प्रकार से हैं -

(i) मौखिक स्तर

(ii) शौच सोपान

(iii) ऑडियस

(iv) किशोरावस्था स्तर

5.5 समाजीकरण के स्तर

समाजीकरण सीखने की ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है। यह प्रक्रिया काफी लम्बी होती है अतः विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं समाज शास्त्रियों ने समाजीकरण को कई स्तरों में विभक्त कर देखने का प्रयास किया है। मानव शरीर की विशिष्ट संरचना के कारण उसमें सीखने की विशिष्ट क्षमता पायी जाती है और सामाजिक सीख के द्वारा वह अपने व्यक्तिव का विकास करता है। सीखने का कार्य केवल समाज में ही संभव है। अतः पारसन्स कहते हैं कि बच्चा उस पत्थर के समान है जिसे जन्म के समय समाज रूपी तालाब में फेंक दिया जाता है, जिसमें रहकर वह अपना समाजीकरण करता है और समाज का अंग बन जाता है।टॉलकट पारसन्स ने समाजीकरण के किशोरावस्था तक चार ही सोपान निम्न प्रकार से बताये हैं:-

- मौखिकावस्था
- शौच सोपान
- ऑडियस सोपान
- किशोरावस्था

5.5.1 मौखिकावस्था: गर्भ में भ्रूण आरामपूर्वक रहता है। जन्म के समय शिशु प्रथम संकट का सामना करता है, उसे सांस लेनी पड़ती है, उसे भूख लगती है , पेट भरने के लिए उसे श्रम करना पड़ता है। उसे सर्दी, गर्मी, गीलेपन आदि से पीड़ा होती है, वह रोता चिल्लाता है। इस अवस्था में बालक का मुंह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि वह अपने मन का संतोष या दुख मुंह के हाव भावों द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। इस स्थिति में वह मौखिक निर्भरता स्थापित करता है। समाजीकरण का यह प्रथम स्तर है। इस अवस्था में शिशु अपने भोजन के बारे में संकेत देना शुरू करता है। शिशु अपना सुख दुख मुंह के माध्यम से व मुंह के हाव भाव से प्रकट करता है इसलिए इसे मौखिक अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बच्चा परिवार के सभी सदस्यों से संबंध स्थापित नहीं कर पाता, केवल माता से ही वह अंतर्क्रिया कर पाता है। पारसंस कहते हैं कि माता व शिशु की उप-प्रणाली बन जाती है। परिवार के दूसरे सदस्यों के लिए तो बालक महज एक संपदा है। पिता या परिवार का कोई अन्य सदस्य माता की

तरह बालक की देखभाल करने लगे तो भी भूमिका विभेद नहीं होता, वह भी माता की भूमिका ही निभाता है। इस अवस्था में बालक अपनी व अपनी मां की भूमिका में अंतर नहीं कर पाता। अतः माता व शिशु 'मिले हुए' रहते हैं। इस स्थिति को फ्रायड ने 'प्राथमिक परिचय' कहा है। मौखिक अवस्था में शिशु कुछ आंतरीकृत करने की स्थिति में नहीं होता। इतना जरूर है कि उसे माता के साथ शारीरिक संपर्क से धुंधली सी उद्दीपन भाव की अनुभूति होने लगती है। इस मौखिक सोपान की अवधि लगभग एक से डेढ़ वर्ष तक की होती है।

5.5.2 शौच सोपान: विभिन्न समाजों में इस स्तर का काल भिन्न-भिन्न है। वैसे सभी समाजों में यह स्तर एक से पांच वर्ष के बीच की अवधि में माना जाता है। इस स्तर पर बच्चे से यह अपेक्षा की जाने लगती है कि वह अपने-आपको थोड़ा बहुत स्वयं संभाले। इस संदर्भ में उसे शौच प्रशिक्षण दिया जाता है। इस स्तर में बालक दो भूमिकाओं को आंतरीकृत करता है - (1) अपनी और अपनी माता की भूमिका, जिसे वह अपने से भिन्न करने लग जाता है। (2) इस स्तर पर बालक को सही और गलत के बीच भेद करना सिखाया जाता है। सही कार्यों के लिए एक ओर जहां उसे प्यार का पुरस्कार प्राप्त होता है वहीं पर गलत कार्यों के लिए उसे दंड भी दिया जाता है। बालक इस स्तर पर परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी अंतर्क्रिया करता है और पारिवारिक व्यवहार प्रतिमान को अपनाता है।

यह अवस्था शौच संकट से आरंभ होती है जिसके अंतर्गत बच्चा स्वयं भी अपना ध्यान रखने लग जाता है। माता से उसका तादात्म्य हो जाता है। वह माता का प्यार पाता ही नहीं बल्कि अपनी ओर से देता भी है। मां उसे शौच संबंधी प्रशिक्षण देती है। मां की भूमिका इस स्तर पर भी समाजीकरण में महत्वपूर्ण होती है। माता का यहां द्विपक्षीय कार्य है। प्रथम तो मां-शिशु उप प्रणाली में साधक नेता के रूप में कार्य करती है, दूसरे पूरे परिवार में बच्चे का प्रतिनिधित्व करती है। अतः इस स्तर पर समाजीकरणकर्ता को स्वयं सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक व्यवहार प्रतिमान के प्रति सजग रहना पड़ता है ताकि बालक का समाजीकरण उचित हो सके। इस स्तर पर बालक बातचीत करना सीखता है तथा चलने-फिरने लगता हैं अब उसके सामाजिक संबंध भी बढ़ जाते हैं क्योंकि वह परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अंतर्क्रिया करने लगता है। इस अवस्था में बालक को थोडा कष्ट भी होता है क्योंकि यही वह अवस्था है जिसमें मां उनकी दूध पीने की आदत में परिवर्तन लाना चाहती है।

5.5.3 ऑडियस या गुप्तावस्था स्तर: ऑडियस स्तर सामान्यतया चौथे वर्ष से प्रारंभ होकर बारह या तेरह वर्ष की आयु तक रहती है। मनोवैज्ञानिकों ने इस चरण को ऑडियस संकट का काल कहा है। इस अवस्था में बालक यौन भेद की ओर सहज आकर्षण का अनुभव करता है। यही वह समय है जब उसमें ऑडियस कॉम्पलैक्स व इलेक्ट्रा कॉम्पलैक्स दो प्रकार की ग्रंथियां जन्म लेती है । (1) ऑडियस

कॉम्पलैक्स लड़के की उस भावना को कहते हैं जिसके अनुसार वह अपनी मां से प्यार करता है और वह चाहता है कि उसका पिता उसकी मां को प्यार न करें। (2) इलेक्ट्रा कॉम्पलैक्स लड़कियों की उस भावना को कहते हैं जिसमें वह चाहती है कि उनके पिता उनसे प्यार करें न कि उनकी माता से। ये भावनाएं चार से बारह वर्ष की अवस्था में होती है। इसमें लड़के व लड़कियां क्रमशः माता-पिता से प्यार करना चाहते हैं और चाहते हैं कि पति-पत्नी (माता-पिता) आपस में प्यार न करें। उन्हें अपने माता-पिता से ईर्ष्या होती है। फ्रायड ने कहा है कि इस अवस्था में बच्चों में यौन भावना जाग्रत हो जाती है , जिससे लड़के अपनी मां व लड़कियां अपने पिता से प्यार करने लग जाते हैं।

इस अवस्था में समाजीकरण की प्रक्रिया दो रूपों में होती है **(1) सामाजिक भूमिका से तादात्म्यीकरण-**सामाजिक भूमिका से तादात्म्यीकरण करने के लिए वह अपनी भूमिका को आंतरीकृत करता है, उससे संबंधित योग्यता को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है अर्थात बालक पिता, भाई व परिवार के अन्य सदस्यों की आशाओं के अनुरूप भूमिका निभाना सीखता है। **(2) सामाजिक समूहों से तादात्म्यीकरण -** सामाजिक समूहों से तादात्म्यीकरण करने के लिए वह परिवार, अपने लिंग के साथियों, विद्यालय के साथियों व मित्रों के अनुरूप कार्य करता है। जॉनसन के अनुसार बालक समाजीकरण के तीसरे सोपान में तीन प्रकार से तादात्म्य स्थापित करता है। (1) परिवार (2) मित्र मंडली (3) समाज के अनुरूप व्यवहार करके।

5.5.4 किशोरावस्था स्तर: किशोरावस्था मानव जीवन का एक संक्रांति काल है। इस स्तर पर बच्चे अपने माता-पिता के नियंत्रण से मुक्त होना चाहते हैं। इसी काल में कैशोर्य संकट उपस्थित होता है। इस अवस्था में लड़के-लड़कियों में शारीरिक परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगते हैं। यौन संबंधी ज्ञान होने लगता है लेकिन यौन संबंधों की स्वतंत्रता न होने से किशोरावस्था में विभिन्न प्रकार के तनाव देखने को मिलते हैं। यह वह काल है जब वह सीमांत संस्कृति पर होता है अर्थात किशोर को बड़े व छोटे दोनों ही से खुले मन से स्वीकार नहीं करते। यह स्थिति उसके जीवन में उदात्तीकरण के रूप में अभिव्यक्त होती है। उदात्तीकरण के अनुसार वह छोटो का साथ छोड़ने व बड़ों का साथ न मिल पाने के कारण इस मानसिक तनाव की स्थिति का हल अन्य कार्यों में देखता है अतः या तो वह अच्छा विद्यार्थी बन जाता है या बुरी प्रवृत्तियों में पड़ जाता है। इस काल में उसके साथ किए जाने वाले व्यवहार पर ही उसकी उन्नति व अवनति निर्भर करती है।

इस स्तर पर किशोर से यह आशा की जाती है कि वह अपने बारे में स्वयं निर्णय ले लेकिन साथ-साथ यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह निर्णय परंपरागत हो तथा सामाजिक व्यवहार प्रतिमान से मेल खाता हो। किशोर को न केवल परिवार के सदस्यों अपितु पास-पड़ोस, विद्यालय तथा अन्य द्वितीयक समूहों

के सदस्यों से सामंजस्य स्थापित करना होता है। किशोरावस्था एक तनाव का काल होता है। पश्चिमी जगत में तो इस स्तर पर एक किशोर आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपना अलग परिवार भी बसाता है। इस स्तर पर व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण के अनुरूप व्यवहार करे।

ये चारों समाजीकरण के प्रमुख सोपान हैं। यहां यह नहीं समझा जाना चाहिए कि इन चार चरणों के बाद जीवन में समाजीकरण की प्रक्रिया रूक जाती है या समाप्त हो जाती है। यह प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि समाजीकरण की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उपर्युक्त चार सोपान व्यक्तित्व के लिए रचनात्मक हैं क्योंकि हमारा मूलभूत O;fDrत्व इस काल तक बन चुका होता है। इन सोपानों के पश्चात अन्य सोपान भी समाजीकरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। जो निम्नलिखित हैं -

5.5.5 युवावस्था: इस अवस्था में व्यक्ति को अनेक नए पद प्राप्त होते हैं। उसे पति, पिता, दामाद, अधिकारी आदि की प्रस्थितियां प्राप्त होती है। युवा होने पर व्यक्ति को जितनी भी नई प्रस्थितियां मिलती हैं उन सबकी भूमिका - अपेक्षाओं का उसे निर्वाह करना पड़ता है। यह अवस्था उत्तरदायित्वों से भरी हुई होती है। इस अवस्था में परिवार व बाह्य जगत में महत्वपूर्ण दायित्वों को निभाता है। अतः कभी-कभी उसे भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है क्योंकि विभिन्न प्रस्थितियों का एक साथ पालन करना कठिन होता है।

5.5.6 प्रौढ़ अवस्था: इस अवस्था में व्यक्ति पर और अधिक जिम्मेदारियां आ जाती हैं। उस पर बच्चों की शिक्षा, विवाह की जिम्मेदारी आ जाती हैं एवं व्यवसाय या वरिष्ठ अधिकारी के रूप में दायित्व संभालना होता है। जॉनसन कहते हैं कि वयस्कों का समाजीकरण सरल होता है क्योंकि (अ) वयस्क साधारणतः उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने को प्रेरित होता है जो स्वयं देख चुका है (ब) जिस नई प्रस्थिति को वह आंतरीकृत करने का प्रयास करता है उसमें और पुरानी स्थितियों में काफी साम्य होता है (स) समाजीकरण करने वाला भाषा के माध्यम से आसानी से बोधगम्य संबंध स्थापित कर सकता है। इन तीनों से समाजीकरण की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

5.5.7 वृद्धावस्था: वृद्धावस्था में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दृष्टि से कई परिवर्तन आ जाते हैं। अब उसे दादा, परदादा, नाना, श्वसुर आदि के रूप में नई प्रस्थितियां प्राप्त होती हैं और वह उनके अनुसार भूमिका निभाता है। क्षीणकारी शारीरिक परिवर्तनों के कारण क्षमताएं और आकांक्षाएं भी घट जाती हैं। उसमें दुर्बलता आ जाती है। कार्य करने का पूर्ववत सामर्थ्य नहीं रहता। इस अवस्था में वह सेवा निवृत्त हो जाता है। अब वह आर्थिक रूप से कमाने योग्य नहीं रहता। अतः उसे पराश्रित रहना पड़ता है। अधिक कार्य न कर पाने के कारण वृद्ध प्रायः भार समझे जाने लगते हैं। अतः पारिवारिक

तनाव की स्थिति भी उपस्थित हो जाती है। पीढ़ीगत भेद के कारण नवीन पीढ़ी से उसका सामंजस्य नहीं हो पाता जिससे वह कुंठाग्रस्त हो जाता है। अतः यहां भी वृद्ध व्यक्ति को समाजीकरण की आवश्यकता पड़ती है। इस अवस्था में वृद्धों में एक तरफ पूर्वावस्थाओं में समाजीकृत भूमिकाओं के विसर्जन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है तो दूसरी तरफ अवकाश कार्यों से सामंजस्य की। यद्यपि वृद्ध महत्वपूर्ण सामाजिक उत्तरदायित्वों का परित्याग कर देते हैं फिर भी सामाजिक परिस्थितियों व परंपराओं के अनुसार वे अनेक हल्के फुल्के कार्य करते हैं जैसे बच्चों की, घर की व बगीचे की देखभाल आदि। अनुभवी परामर्शक के रूप में उनका महत्व समाज में सदैव ही बना रहता है। संक्षेप में वृद्ध व्यक्तियों को सामाजिक व्यावसायिक व वैचारिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के समझौते करने पड़ते हैं। नई परिस्थितियों में व्यावहार के नए प्रतिमान उन्हें सीखने ही नहीं पड़ते अपितु उनके संदर्भ में उन्हें आचरण भी करना पड़ता है।

इस प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तिव के विकास में समाजीकरण की सबसे प्रमुख भूमिका होती है। व्यक्तिव का विकास सिर्फ जैविक प्रक्रिया नहीं है बल्कि सामाजिक प्रक्रिया है। व्यक्ति जन्म से ही अपने गुणों को प्राप्त नहीं करता बल्कि समाज के सदस्य के रूप में वह धीरे-धीरे अर्जित करता है। लुंडबर्ग ने अपनी कृति 'सोशयोलॉजी' में समाजीकरण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि व्यक्ति का व्यवहार जब समाज के अनुरूप होता है तो उसे समाजीकरण से व्यक्त करते हैं।

5.6 समाजीकरण के अभिकरण

बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक व्यक्ति के जीवन में जितने भी लोग आते हैं उन सभी से वह कुछ न कुछ अवश्य सीखता है। इसलिए कहा जाता है कि समाजीकरण के बहुत सारे अभिकरण होते हैं। इसके बावजूद कुछ ऐसे अभिकरण हैं जो विश्वव्यापी स्तर पर समाजीकरण की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं। किंबाल यंग ने लिखा है कि 'समाज के अंतर्गत समाजीकरण के विभिन्न साधनों में परिवार सबसे महत्वपूर्ण है। परिवार के अंतर्गत माता-पिता ही साधारणतया सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं। समाजीकरण के अन्य साधनों में पड़ोस, सगे-संबंधी, प्राथमिक समूहों के सदस्य तथा बाद में द्वितीयक समूहों की सदस्यता आती है। समाजीकरण करने वाली संस्थाओं को दो भागों में विभाजित किया गया है -

- प्राथमिक संस्थाएं
- द्वैतीयक संस्थाएं

5.6.1 प्राथमिक संस्थाएं: प्राथमिक संस्थाएं वे हैं जहां बालक का प्रारंभिक स्तर का समाजीकरण होता है , जिसमें उसके मूलभूत व्यक्तिव का निर्माण होता है। ये संस्थाएं निम्न हैं

(अ) परिवार: समाज का निर्माण और उसकी निरंतरता परिवार के द्वारा ही संभव है। शिशु परिवार में जन्म लेता है अतः सर्वप्रथम अपने समाज एवं संस्कृति के बारे में परिवार में ही सीखता है। बोलना, खड़ा होकर चलना, ढंग से रहना, वस्त्र पहनना, विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ व्यवहार करने के संबंध में सर्वप्रथम वह परिवार में ही सीखता है। परिवार में ही वह उचित अनुचित में भेद करना सीखता है उसमें नैतिकता के भाव उत्पन्न होते हैं। भाषा का प्रयोग विभिन्न लोगों के साथ अनुकूलन करना, बड़ों की आज्ञा पालन करना, पारिवारिक आदर्श व मूल्य व आदर्श नागरिकता का पाठ परिवार से ही सीखता है। अतः कहा जाता है कि परिवार शिशु की प्रथम पाठशाला है। बच्चा परिवार का ही प्रतिरूप होता है। परिवार से ही बालक को प्रस्थिति व भूमिका का ज्ञान होता है।

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है, अतः समस्त विश्व में यह समाजीकरण की आधारभूत संस्था है। पारसंस ने व्यक्तित्व निर्माण के लिए परिवार को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि परिवार बालक के व्यक्तित्व को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसी कारण व्यक्ति के समाजीकरण में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(ब) मित्रों का समूह: बच्चा घर से बाहर जिस दूसरी समाज व्यवस्था में अंतर्क्रिया करता है वह मित्र समूह होता है। बच्चा घर से बाहर निकल कर अपने साथियों के साथ खेलता है जहां वह अनेक प्रकार के व्यवहारों को सीखता है - खेल के नियम, अनुशासन, नेतृत्व के गुण, अन्य साथियों से अनुकूलन करना आदि वह अपने साथी समूह में ही सीखता है। खेलते समय उसमें परस्पर सहयोग, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, सहकारिता आदि गुण विकसित होते हैं। ब्रूम व सेल्जनिक ने कहा है कि मित्रों के समूह का आधुनिक युग में अत्यंत महत्व है क्योंकि 'आधुनिक व्यक्ति दूसरों के मूल्यों व विश्वासों में अधिक आस्था रखता है।

(स) पड़ोस: पड़ोस का भी बच्चे के समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। शहरों की तुलना में गांवों में पड़ोस का अधिक प्रभाव होता है। बच्चे अनजाने में ही पड़ोसी से ही कई बातें सीख जाते हैं उसका वहां के लोगों व बच्चों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जिस ढंग के परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व में अवश्य दिखाई पड़ता है।

(द) नातेदारी समूह: नातेदारी समूह में रक्त एवं विवाह से संबंधित सभी रिश्तेदार आ जाते हैं। अतः भाई-बहिन, पति-पत्नी, साले- साली, सास-ससुर व उनके भी दूर के संबंधी हमारे संबंधी हो जाते

हैं। इन सबसे हमारा पृथक-पृथक व्यवहार होता है। किसी के साथ परिहास का तो किसी के साथ परिहार का व किसी से माध्यमिक संबंध है। इन सब के पृथक-पृथक व्यवहार प्रतिमानों को हम सीखते हैं। प्रस्थिति व भूमिका की श्रृखलाएं व्यवहार के द्वारा हम आत्मसात करते जाते हैं।

(य) विवाह: विवाह का भी व्यक्ति के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विवाह के बाद लड़के व लड़की को पति-पत्नी की भूमिका निभानी होती है। उन्हें नए दायित्वों का निर्वाह करना होता है। एक दूसरे के लिए त्याग करना होता है, परस्पर निष्ठा व विश्वास रखना होता है। नई प्रस्थितियां व भूमिकाएं विवाह के उपरांत ही ग्रहण की जाती हैं जिनके साथ तादात्म्य व आंतरीकरण करना होता है।

5.6.2 द्वितीयक संस्थाएं

(अ) **शिक्षण संस्थाएं**: शिक्षण संस्थाएं हमें समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनाती हैं और यही समाजीकरण है। शिक्षण संस्थाओं में समाजीकरण के तीन स्त्रोत है (1) गुरूजन (2) सहपाठी (3) पुस्तक। इन्हीं तीन चीजों के मिलने से स्कूली शिक्षा का वातावरण निर्मित होता है जिसके प्रभाव से व्यक्तित्व का विकास होता है। यहां व्यक्ति नवीन ज्ञान अर्जित करता है, उसकी मानसिक क्षमता का विकास होता है। व्यक्ति समाज व संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त कर व्यक्तित्व में निखार लाता है।

(ब) **राजनीतिक संस्थाएं**: राजनीतिक संस्थाएं व्यक्ति को शासन, कानून, अनुशासन आदि सीखाती हैं। ये व्यक्ति को उसके कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं। ये संस्थाएं समाज की दिशा का ज्ञान कराती हैं जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में अपना समाजीकरण कर सकता है।

(स) **धार्मिक संस्थाएं**: व्यक्ति के जीवन पर धर्म का गहरा प्रभाव होता है। धार्मिक संस्थाएं हमें ईश्वर के बोध से अवगत कराती हैं। व्यक्ति में पवित्रता, न्याय, सच्चरित्रता, कर्तव्य परायणता, ईमानदारी, दया आदि गुणों का विकास करने में धर्म प्रमुख भूमिका निभाता है। धार्मिक संस्थाएं सीखाती हैं कि मंदिर या पवित्र स्थल पर कैसा व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार ये संस्थाएं व्यक्ति को धार्मिक शास्त्रों से परिचित कराती हैं।

(द) **आर्थिक संस्थाएं**: आर्थिक संस्थाएं व्यक्ति को जीवन यापन के लिए समर्थ बनाती हैं। ये संस्थाएं व्यक्ति को व्यावसायिक संघों से परिचित कराती हैं। व्यक्ति में सहयोग, प्रतिस्पर्द्धा एवं समायोजन के भाव उत्पन्न करती हैं। मार्क्स व वेबलिन का मत है कि अधिक संस्थाएं ही व्यक्ति के जीवन और सामाजिक ढांचे को निर्धारित करती हैं।

(य) **सांस्कृतिक संस्थाएं**: सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा व्यक्ति समाज की संस्कृति से परिचित होता है। नगरों व महानगरों में कवि सम्मेलन, नाटक, गोष्ठियां आदि के आयोजनों द्वारा व्यक्तियों को उस समाज की संस्कृति से अवगत कराया जाता है। ये संस्थाएं व्यक्ति को अपनी संस्कृति से परिचित कराती हैं। इनके द्वारा व्यक्ति अपनी प्रथाओं, परंपराओं, वेशभूषा, साहित्य, कला, भाषा आदि से परिचित होता है और ये संस्थाएं उसके व्यक्तित्व के विकास में योग देती है।

इन सभी संस्थाओं के अतिरिक्त व्यक्ति व्यवसाय समूह द्वारा द्वारा भी सीखता है। किसी अजनबी के संपर्क में आने पर भी उससे विशिष्ठ प्रकार के व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है इस प्रकार प्राथमिक व द्वितीयक संस्थाओं के माध्यम से व्यक्ति का समाज में समाजीकरण होता है जो आजन्म चलता रहता है।

5.7 सारांश

इस प्रकार समाजीकरण वह तरीका है जिसके द्वारा संस्कृति संचारित होती है और इससे व्यक्ति का जीवन संगठित रहता है। समाजीकरण जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया के द्वारा बच्चा समूह जीवन में भाग लेना सीखता है और अपने समाज के मूल्यों को ग्रहण करता है। समाजीकरण न केवल हमारे व्यवहार को नियमित करता है बल्कि व्यक्तित्व और आत्म जागरूकता के विकास के लिए भी अपरिहार्य शर्त है। इस प्रकार समाजीकरण के द्वारा जहां एक ओर संस्कृति का संचरण होता है वहीं व्यक्तित्व का विकास भी होता है।

बिना परिवार व समाज के समाजीकरण संभव नहीं। समाजीकरण के बिना मनुष्य पशुवत रहता है। डेविस ने अन्ना व इसाबिले नामक दो ऐसे समाज से विलग बालकों का उल्लेख किया है जो समाज से पृथक रहे। इसी कारण उनमें मानवोचित गुणों का विकास नहीं हो पाया। मानवोचित गुणों के विकास के लिए समाज से संपर्क जरूरी है। इस प्रकार समाज में रहते हुए ही समाजीकरण हो सकता है उसी के द्वारा व्यक्तित्व व संस्कृति का विकास संभव है।

5.8 बोध प्रश्न

1. ऑडियस व इलेक्ट्रा कॉम्पलैक्स क्या है?

2. समाजीकरण की प्रक्रिया जीवन पर्यंत चलती है, कैसे?

1. ऑडियस कॉम्पलैक्स लड़के की उस भावना को कहते हैं जिसके अनुसार वह अपनी मां से प्यार करता है। चाहता है कि उसके पिता उसकी मां को प्यार न करें। इलेक्ट्रा कॉम्पलैक्स लड़की की उस भावना को कहते हैं जिसके अनुसार वह यह चाहती है कि उनके पिता उनसे प्यार करेंण, न कि माता से।

2. समाजीकरण कुछ विषेश समय तक चलने वाली प्रक्रिया नहीं अपितु आजन्म चलती रहने वाली प्रक्रिया है क्योंकि मनुष्य को जीवन पर्यंत मनुष्य को नई-नई प्रस्थितियां मिलती रहती हैं। जिनके लिए वह पहले से तैयार नहीं होता उसे सीखना पड़ता है कि वह इन प्रस्थितियों में कैसा व्यवहार करे|

5.9 शब्दावली

1. **समाजीकरण** - समाज सम्मत मानदंडों को सीखने की प्रक्रिया ही समाजीकरण है।

2. **प्रस्थिति** - किसी विशिष्ट व्यवस्था में निर्दिष्ट समय में व्यक्ति को जो स्थान प्राप्त होता है, वह उनकी प्रस्थिति कहलाती है।

3. **भूमिका** - प्रस्थिति का गतिशील पहलू भूमिका है।

4. **मानदंड** - संस्कृति द्वारा अनुमोदित व्यवहार के तरीके मानदंड हैं।

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) सिंह, जे.पी., समाजशास्त्र: अवधारणाएं एवं सिद्धांत, प्रेंटिस - हाल इंडिया, नई दिल्ली, 2003।

(2) दोषी, एस.एल. एवं जैन पी.सी., समाजशास्त्र नई दिशाए, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 1998।

(4) सिंधी, एन.के. एवं गोस्वामी, वसुधाकर, समाजशास्त्र विवेचन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर: 2005

(5) अग्रवाल, जी. के., एस बी पी डी पब्लिकेशंस, आगरा 2009

इकाई 6. व्यक्तित्व का अर्थ एवं निर्धारक (Meaning and Determinants of Personality)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 व्यक्तित्व का स्वरूप
6.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं
6.4.1 सतही परिभाषाएं
6.4.2 तात्विक परिभाषाएं
6.4.3 समाकलित परिभाषाएं
6.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं
6.6 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक
6.6.1 व्यक्तित्व के जैविक निर्धारक
6.6.2 व्यक्तित्व के सामाजिक/वातावरणीय निर्धारक
6.6.3 सांस्कृतिक निर्धारक
6.7 सार संक्षेप
6.8 पारिभाषिक शब्दावली
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक जटिल विषय है। इसके अध्ययन की महत्ता इस बात से प्रमाणित हो जाती है कि जहां सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का स्वरूप व्यक्तित्व के स्वरूप से ही निर्धारित होता है, वहीं व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्धारण भी इन सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव से ही होता है; जहां बुद्धि से व्यक्ति की योग्यताओं के अन्तर की जानकारी मिलती है, वहीं व्यक्तित्व से व्यक्ति के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त होता है। ये लक्षण व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणों के रूप में उसके व्यवहार एवं अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो वास्तव में जीव विज्ञान, समाज विज्ञान एवं मनोविज्ञान का संगम स्थल है। यह एक ऐसा विषय है जिसमें केवल मनुष्यों की चर्चा की जाती है, पशुओं की नहीं। अतः व्यक्तित्व का अध्ययन मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान के इस अत्यन्त ही जटिल विषय ''व्यक्तित्व'' को समझने, उसे परिभाषित करने, उसकी विशेषताओं को जानने तथा उसके विभिन्न उपागमों की व्याख्या करने का प्रयास अत्यन्त ही सरल रूप में किया गया है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप

6. व्यक्तित्व के स्वरूप का खाका खींच सकें।
2. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर उत्तम परिभाषा दे सकें।
3. व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकें तथा
4. व्यक्तित्व के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कर सकें।

6.3 व्यक्तित्व का स्वरूप

''व्यक्तित्व'' अंग्रेजी के पर्सनॉलिटी शब्द का हिंदी रूपांतर है। पर्सनालिटी शब्द की उत्पत्ति लैटिन के परसोना से हुई है। परसोना एक प्रकार के नकाब या मुखावरण को कहते हैं, जिसका उपयोग यूनानी नाटकों में भाग लेने वाले पात्र करते थे। इन नकाबों को चेहरे पर लगा लेने से यह स्पष्ट पता चल जाता था कि नाटक में विभिन्न पात्रों के कार्य किस ढंग के होंगे। इस परसोना शब्द से पर्सनॉलिटी शब्द बना है, जिसका अर्थ बनावटी रूप होता है। इस शाब्दिक अर्थ में जिन लोगों ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने की चेष्टा की है, उन लोगों ने मनुष्य की बाह्य रूप-रेखा, वेश-भूषा को ही व्यक्तित्व कहा है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो देखने में सुंदर है, जिसकी पोशाक आकर्षक है, जो मधुरभाषी और फुर्तीला है- साधारण बोलचाल की भाषा में उसे अच्छे व्यक्तित्व का व्यक्ति कहा जाता है। ठीक इसके विपरीत, जब किसी बेडौल नाक-नक्शेवाले व्यक्ति को मैले कपड़ों में देखते हैं तब हम उसके व्यक्तित्व को बुरा कहते हैं।

व्यक्तित्व के स्वरूप को और अच्छी तरह स्पष्ट करने हेतु हम एक सामान्य उदाहरण का विश्लेषण करें। मान लें, आपके किसी मित्र ने नौकरी के लिए आवेदनपत्र देते समय अपने परिचितों में आपका नाम दे दिया है। अब नियुक्ति करनेवाला ऑफिसर आपको एक गुप्त पत्र भेजकर उस उम्मीदवार की योग्यता, चरित्र एवं व्यक्तित्व के संबंध में पूछता है। उत्तर में आप लिखते हैं- उम्मीदवार का व्यक्तित्व आकर्षक और दिलचस्प है, वह उत्साही, अध्यवसायी और ईमानदार होने के साथ-साथ प्रसन्नचित, सरल और

विश्वासपात्र है। वह अपने साथियों के साथ मिल-जुलकर काम करना जानता है, वह आत्मनिर्भर तथा अच्छे चरित्रवाला है। इसी तरह हजारों ऐसे विशेषण है जिनके उपयोग किसी के व्यक्तित्व को प्रकट करने हेतु किए जा सकते हैं।

यदि आप उपर्युक्त विशेषणों पर सोचें तो विदित होगा कि ये विशेषण सही अर्थ में क्रियाविशेषण है जिनसे व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों के बारे में जानकारी मिलती है। अर्थात् व्यक्ति के विशिष्ट गुण उसके व्यवहार के तरीके का ज्ञान कराते हैं। अतः व्यक्तित्व की विशेषता बताने वाले शब्द व्यक्ति के गुणों के नाम है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व एक छोटे-से काम को करने में भी प्रकट हो सकता है। उस कार्य को वह विशेष ढंग से करेगा और यही विशेष ढंग उसका व्यक्तित्व होगा। व्यक्तित्व के इस विश्लेषण के आलोक में ही वुडवर्थ एवं मार्क्रविस ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है- व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनके प्रकट करने के ढंग, उसकी मनोवृत्ति और अभिरूचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन के प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकट होती है

स्पष्ट है कि व्यक्तित्व में व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग, वेश-भूषा आदि के साथ-साथ किसी कार्य करने के विशेष ढंग (जो उसका स्थायी गुण होता है) को प्रकट करने वाले गुणों का समन्वय होता है तथा इसी समन्वय के फलस्वरूप उसका वातावरण के साथ अभियोजन अपूर्व ढंग का होता है।

6.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं

व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी है। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व को परिभाषित किया है।

अतः व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उपलब्ध परिभाषाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

6.4.1 **सतही परिभाषाएं**- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्ति के बाहरी पक्ष यानी शरीरिक रचना, रूप-रंग, शारीरिक बनावट आदि पर आधारित हैं। सुन्दर एवं संगठित शारीरिक रचना अथवा भव्य शारीरिक प्रतीति वाले व्यक्ति को देखकर हम अक्सर कह बैठते हैं कि उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। असल में व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमारी यह धारण व्यक्तित्व के शाब्दिक अर्थ से प्रभावित है।

सतही दृष्टिकोण को निम्नलिखित दो उप-वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(1) उत्तेजना दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व एक उत्तेजना के रूप में कार्यरत होता है। प्रत्येक व्यक्तित्व का एक उत्तेजना मान होता है, जिससे उसकी (व्यक्तित्व की) प्रभावशीलता निर्धारित होती है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह दूसरे व्यक्तियों को किस रूप में प्रभावित करता है। उसका यह प्रभाव सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी।

(2) प्रतिक्रिया दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार या प्रतिक्रिया करता है। किसी व्यक्ति को बार-बार आक्रमणकारी व्यवहार करते देखकर हम कह उठते हैं कि वह आक्रमणकारी व्यक्तित्व का व्यक्ति है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को बार-बार लजाते देखकर हम उसे लजालु व्यक्तित्व का आदमी समझने लगते हैं।

व्यवहारवाद के जन्मदाता वाटसन (1924) ने सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचना व्यवहारवाद में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा व्यक्तित्व का तात्पर्य विश्वसनीय सूचना हेतु एक लंबे समय तक निरीक्षण की जाने वाली क्रियाओं के योगफल से है। इसी प्रकार शर्मन (1925) ने व्यक्ति की शारीरिक प्रतीति (उत्तेजना मान) तथा उसके व्यवहार (प्रतिक्रिया-मान) को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि व्यक्ति के विशिष्ट व्यवहार को व्यक्तित्व कहते हैं। मैक कीनन (1944) ने भी सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित किया और कहा कि आदत-प्रणाली तथा क्रियाओं का परिणाम ही व्यक्तित्व है।

6.4.2 **तात्विक परिभाषाएं-** तात्विक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति का आंतरिक स्थाई स्वभाव ही व्यक्तित्व है। बुद्धि, स्वभाव, प्रवृत्ति, नैतिकता, संवेगशीलता आदि आन्तरिक शीलगुणों से संरचित मानव-स्वभाव ही वास्तविक अर्थ में व्यक्तित्व है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों का असल निर्धारक यही मानव स्वभाव है।

प्रिन्स (1974) ने व्यक्त्वि के तात्विक दृष्टिकोण पर बल दिया। उन्होंने अपनी रचना अचेतन में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा कि व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के सभी जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, आवेगों, झुकावों, अभिलाषाओं, मूल-प्रवृत्तियों तथा अर्जित प्रवृत्तियों एवं झुकावों के योगफल से है। स्पष्टतः इस परिभाषा में व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष पर बल दिया गया है। यही मानसिक संगठन मानव-स्वभाव है, जो एक स्वतंत्र चर के रूप में भिन्न-भिन्न व्यवहारों (आश्रित चरों) को नियन्त्रित तथा संचालित करता है। वारेन आदि ने भी इसी अर्थ में व्यक्तित्व की परिभाषा दी है और कहा है कि मानव का सम्पूर्ण मानसिक संगठन ही व्यक्तित्व हे।

6.4.3 समाकलनात्मक परिभाषाएं- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करने में काफी सफल है। इन परिभाषाओं में व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष तथा आन्तरिक पक्ष दोनों पर बल दिया गया है। हम देख चुके हैं कि सतही परिभाषाओं में व्यक्तित्व के केवल बाह्य पक्ष अर्थात् शारीरिक गठन

एवं व्यवहार पर बल दिया गया और तात्विक परिभाषाओं में केवल आन्तरिक पक्ष अर्थात् मानसिक गठन पर बल दिया गया। लेकिन, मनोवैज्ञानिकों की एक बड़ी संख्या ने व्यक्तित्व को दोनों पक्षों का समाकलित रूप माना है। इस दिशा में गार्डन ऑल्पोर्ट (1937) का प्रयास बहुत सराहनीय है। उन्होंने परसौना तथा पर्सनालिटी की छोटी-बड़ी 50 परिभाषाओं की एक सूची तैयार की और कहा कि व्यक्तित्व की केवल वही परिभाषा संतोषजनक हो सकती है, जो व्यक्तित्व के बाह्य तथा आंतरिक पक्षों की व्याख्या करने में सफल हो। अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि, ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।''

कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिक के अनुसार, व्यक्ति अपने समाज के दूसरे लोगों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है, वही उसके व्यक्तित्व का सूचक होता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि विभन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई परिभाषाओं में काफी भिन्नता है। यह विभिन्नता केवल शब्दों का ही नहीं, वरन् उनके दृष्टिकोणों का भी है। अतः, उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं में कौन परिभाषा सर्वोत्तम है यह निश्चित करना आसान नहीं प्रतीत होता।

व्यक्तित्व के इस स्वरूप को मद्दे नजर रखते हुए ऑलपोर्ट, द्वारा दी गई परिभाषा को एक उत्तम परिभाषा माना जा सकता है। उनहोंने **''व्यक्तित्व को व्यक्ति के मनःशारीरिक गुणों अथवा तंत्रों का गत्यात्मक संगठन बताया है तथा इसी संगठन पर व्यक्ति का वातावरण के साथ विशिष्ट या अपूर्व अभियोजन निर्भर करता है''** इस परिभाषा में अन्य सभी परिभाषाओं की बातें तो शामिल हैं ही, साथ-ही-साथ इसमें व्यक्तित्व को गत्यात्मक स्वरूप का संगठन बताया गया है। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न मनःशारीरिक गुण, जैसे- धातुस्वरूप, कौशल, मनोवृत्ति, विवेक आदि का संगठन लचीले स्वरूप का होता है। यही कारण है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति का व्यवहार भी अलग-अलग स्वरूप का होता है। साथ ही, इस परिभाषा में व्यक्तित्व की अपूर्वता पर भी जोर दिया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि ऑलपोर्ट की परिभाषा से व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप अच्छी तरह चित्रित होता है। अतः इसे व्यक्तित्व की एक उपयुक्त परिभाषा कह सकते हैं।

6.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं-

व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षण, विशेषता अथवा शीलगुण का तात्पर्य व्यक्ति के किसी खास गुण, विशेषता जैसे- हसमुख होना, आत्मविश्वासी होना, उत्साही होना, जिद्दी होना आदि से है जो व्यक्ति के कार्यों में अपने-आप (स्वतः) प्रकट होता है तथा जो कुछ समय के लिए उसके स्वभाव का अंग बनकर स्थिर रहता है। इन्हीं शीलगुणों की जटिल संरचना से व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व बनता है। यही कारण है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में स्थिरता एवं क्रमबद्धता पाई जाती है।

व्यक्तित्व के शीलगुण की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- किसी खास परिस्थिति में व्यक्ति की सामान्यीकृत एवं निर्भरतापूर्वक व्यवहार करने के ढंग को शीलगुण कहते हैं।

कुछ लोग शीलगुण या विशेषताओं के आधार पर व्यक्तित्व को अलग-अलग प्रकारों में बांटते है। जैसे हम कहते हैं- 'क' एक ईमानदार व्यक्ति है, 'ख' का व्यक्तित्व विनीत प्रकार का है, 'ग' का व्यक्तित्व सामाजिक है इत्यादि। इन कथनों में हम व्यक्ति के व्यवहार की विशिष्ट विशेषता या शीलगुण पर ही जोर देते हैं।

व्यक्ति के व्यवहार की विशेषताएं अनेक हैं। ऑलपोर्ट एवं ऑडबर्ट (1936) को वेब्स्टर की अंग्रेजी शब्दावली में लगभग 18,000 ऐसे विशेषण शब्द मिले, जो व्यक्ति की कार्यशैली, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण आदि व्यवहार की विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। लेकिन, इनमें अनेक विशेषण शब्द एक-दूसरे के समानार्थक हैं और कुछ दुर्लभ। इस तरह, समानार्थक एवं दुर्लभ शब्दों को छांटने पर लगभग 170 विशेषण शब्द प्रचलित प्रतीत होते हैं। अर्थात् उन्हें हम प्रचलित नामों से व्यक्त करते हैं। सधारणतः व्यक्तित्व के इन प्रचलित शीलगुणों में किसी शीलगुण को उसके विलोम शब्द के जोड़ा रूप में ही व्यक्त किया जाता है। जैसे-प्रसन्नचित-उदास, दयालु-क्रूर, ईमानदार-बेईमान, सच्चरित्र-दुश्चरित्र आदि। अर्थात, किसी व्यक्ति के शीलगुण को द्विध्रुवीय विमा में ही पहचानने की कोशिश की जाती है।

6.6 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक-

व्यक्तित्व के विकास के क्रम में अनेक जैविक एवं वातावरण से संबद्ध तत्वों का प्रभाव पड़ता है। इन दोनों प्रकार के विभिन्न कारक तत्वों को व्यक्तित्व का निर्धारक या प्रभावक भी कहते हैं।

6.6.1 व्यक्तित्व के जैविक निर्धारक-

व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों से तात्पर्य उन कारकों से है जो आनुवंशिक होते है। इनका निर्धारण वातावरण से नहीं, बल्कि माँ-बाप एवं पुरखों से प्राप्त वंशानुक्रम से होता है। हालाँकि, व्यक्तित्व प्रत्यक्षतः वंशगत नहीं होता। पर, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस ढंग का होगा, यह वंशानुक्रम द्वारा पूर्व-उद्यत होता है|

व्यक्तित्व विकास में वंशानुक्रम के पूर्व-उद्यत प्रभाव को हम छोटे-छोटे शिशुओं के व्यवहारों का निरीक्षण कर समझ सकते हैं। छोटे शिशुओं में अर्जित आदतों या शिक्षण का प्रभाव नहीं रहता। फिर भी, शिशुओं की विशेषताओं में महत्वपूर्ण भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ-एक शिशु अत्यंत सक्रिय रहता है तो दूसरा आलसी, एक जोर-जोर से रोता और चिल्लाता है तो दूसरा शांत रहता है। कभी-कभी हमें शिशुरोग विशेषज्ञों की सलाह भी लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। शिशुओं की प्रवृत्तियों में ये विभिन्नताएँ जन्मजात यानी वंशानुगत होती हैं, जिनके अनुरूप ही उनके व्यक्तित्व का विकास होता है।

मनुष्यों के व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम के प्रभावों का अध्ययन करने हेतु विद्वानों ने परिवार जीवनियों का सहारा लिया है। उनका विश्वास था कि कोई लक्षण यदि परिवार की पीढ़ी-दर-पीढ़ी में व्याप्त हो, तो उस लक्षण को वंशानुक्रम से प्राप्त माना जा सकता है। इस विश्वास की पुष्टि के लिए अनेक अध्ययन हुए हैं। गाल्टन ने 1869 ई0 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''हेरिडिटरी जीनियस'' एवं 1873 ई0 में प्रकाशित ''इंग्लिश मेन ऑफ साइंस'' में अपने इस विश्वास पर जोर देते हुए बताया है कि 'प्रतिष्ठा' और 'श्रेष्ठता' कुछ ही परिवारों में सीमित रहती है।

क. शारीरिक बनावट या गठन एवं धातुस्वभाव-

शारीरिक बनावट के अंतर्गत व्यक्ति का रूप-रंग, उसकी लम्बाई, स्वास्थ्य, वजन, विभिन्न अंगों का संतुलित अनुपात आदि विशेषताएँ शामिल हैं। इन विशेषताओं के विशेष प्रकार के संयोग से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व सुंदर और आकर्षक अथवा कुरूप और अनाकर्षक प्रतीत होता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि शारीरिक बनावट-संबंधी भिन्नता के कारण उसके प्रति लोगों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रियाओं की विभिन्नता पर ही व्यक्तित्व का निर्धारण निर्भर करता है। शारीरिक बनावट स्वयं में कोई महत्व नहीं रखता। उदाहरणार्थ-यदि कोई नाटा और काले रंग का हो अथवा किसी की एक आँख खराब हो तो बनावट-संबंधी इन विशेषताओं का उसके व्यक्तित्व पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि समाज के दूसरे लोग उसे बुरी दृष्टि से नहीं देखे। प्रायः ऐसे लोगों को देखकर दूसरे लोग उन्हें अपाहिज या विकृत कहकर उनका अपमान करते हैं अथवा चिढ़ाते हैं। इससे उनमें हीनता की भावना विकसित होती है, जिससे उनका व्यक्तित्व कुत्सित या कुंठित होता है। इस संबंध में एडलर का विचार है कि हीनता के भाव का अनुभव होने पर व्यक्ति में इस कमी की पूर्ति के लिए क्षतिपूर्त्यात्मक व्यवहार उत्पन्न होता है जो भला या बुरा दोनों हो सकता है। अतः स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट-संबंधी विकृति के कारण व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है।

ख. शरीर रसायन-

व्यक्तित्व के जैविक तत्वों में शरीर रसायन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन लोग चार द्रवों के प्रभाव से चार अलग-अलग स्वभावों की चर्चा करते थे। उनके विचारानुसार आदतन आशावादी व्यक्तियों में अत्यधिक रक्त रहता है, चिड़चिड़े व्यक्ति में पित्त की, शांत व्यक्ति में कफ की और उदास रहने वाले व्यक्ति में प्लीहा की अधिकता रहती है। कभी-कभी एक पाँचवाँ स्वभाव धैर्यहीन या चेतनामय भी माना जाता था जिसका संबंध स्नायुद्रव की अधिकता से बताया जाता था।

1. रक्त संचरण-

व्यक्ति के रासायनिक तत्व रक्तसंचार पर निर्भर करते हैं। स्नायुमंडल की तरह रक्तसंचार का भी शरीर के संयोजन में महत्वपूर्ण स्थान है, हालाँकि दोनों के ढंग अलग-अलग हैं। रासायनिक द्रव्यों को शरीर के

विभिन्न अंगों तक ले जाने में रक्तसंचार रेलगाड़ी की तरह कार्य करता है और संदेशों को ढोने में स्नायुमंडल टेलिफोन के तार की तरह। रासायनिक द्रव्यों का संवहन कुछ इस प्रकार होता है-शरीर का प्रत्येक अंग अपने उत्पादित द्रवों को रक्त में छोड़ देता है और वे रक्त के साथ हृदय के एक कोष्ठ में पहुँचते हैं, जहाँ से रक्त शुद्ध होकर शरीर के सभी अंगों में भ्रमण करता है। उस समय शरीर के सभी अंग रक्त में बहने वाले द्रवों को अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करते हैं रक्त संचरण-क्रिया अनवरत एक नित्य गति से हुआ करती है। लेकिन, जब इसकी गति किसी कारणवश कम या तेज होती है, तब रक्तचाप में परिवर्तन होता है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर भी पड़ता है। जैसे-उच्च रक्तचाप के रोगी में घबड़ाहट एवं अत्यधित क्रोध, आवेगात्मक व्यवहार आदि लक्षण उनके व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं।

2. रक्त में चीनी की मात्रा-

मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए लहू में चीनी की मात्रा उपयुक्त स्तर में रहना आवश्यक है। लेकिन, जब चीनी की मात्रा में कमी या बेशी होती है, तब व्यक्तित्व में कुछ खास परिवर्तन होते है; जैसे-व्यक्ति की मनोदशा या चित्त में परिवर्तन, चिड़चिड़ाहट में वृद्धि, भयभीत बना रहना, चेतना का लुप्त होना, वाक्-असंतुलन, स्मृति में ह्रास का होना, संवेगात्मक अस्थिरता आदि।

3. अंतःस्रावी ग्रंथियाँ-

अंतःस्रावी ग्रंथियाँ नलिकाविहीन होती हैं तथा इनसे उत्पन्न होने वाले द्रव्य या स्राव सीधे रक्त में मिल जाते है। इन ग्रंथियों द्वारा कुछ हार्मोन्स उत्पन्न होते हैं, जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखते हैं। देखा गया है कि जिन व्यक्तियों की इन ग्रंथियों में कोई दोष रहता है, उनके व्यक्तित्व में कुछ दोषपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। व्यक्तित्व पर अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथियों के उत्पादकों के प्रभावों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

1. गलग्रंथि-

यह ग्रंथि गर्दन की जड़ में श्वासनलिका के सामने रहती है। साधारणतः इसका वजन एक औंस होता है कभी-कभी इसका आकार असामान्य रूप से बढ़ जाता है, लेकिन इससे इसके कार्य में कोई खास चिंताजनक गड़बड़ी नहीं होती। जब किसी तरह से यह ग्रंथि रूग्ण होकर विनष्ट हो जाती है, तब इस अवस्था को माइक्सोडेमा कहते हैं और इससे स्रावित होने वाले हार्मोन, जिन्हें थाइरॉक्सिन कहते है मंद पड़ जाते है। इससे चमड़े अकड़ जाते है। फलतः मस्तिष्क और पे शियों की क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं। व्यक्ति में शिथिलता, मूर्खता, भुलड़पन आ जाते हैं। वह एकाग्रचित होकर न तो किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित कर सकता है और न सोच-विचार कर सकता है। बच्चों में तो थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण

बुद्धि का ह्रास भी हो जाता है। थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण व्यक्ति में सुस्ती और निष्क्रियता की स्थिति के अलावा उसका स्वभाव झगड़ालू हो जाता है। थाइरॉक्सिन का स्राव अधिक होने पर व्यक्ति में स्नायुमंडलीय तनाव बढ़ जाता है और व्यक्ति उत्तेजित, चिंतित और अशांत हो जाता है। स्वतःसंचालित स्नायुमंडल की कार्यशीलता भी बढ़ जाती है।

2. एड्रिनल ग्रंथि-

यह ग्रंथि दाहिने और बाँए दोनों गुर्दा के निकट स्थित है। गुर्दो के निकट रहने के कारण ही इन्हें उपवृक्क ग्रंथियाँ भी कहते हैं, हालाँकि गुर्दो के कार्य से इनका कार्य बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक एड्रिनल ग्रंथि के दो भाग होते हैं-बाह्रा एवं भीतरी। बाह्रा भाग को कॉर्टेक्स तथा भीतरी भाग को मेडुला कहते हैं। इन दोनों भागों में बनावट और काय्र की दृष्टि से अंतर होता है। बाह्रा भाग यानी कॉर्टेक्स से उत्पन्न हार्मोन को कॉर्टिन और भीतरी भाग मेडुला से उत्पन्न हार्मोन को एड्रेनलिन कहते हैं।

एड्रेनलिन अत्यंत शक्तिशाली हार्मोन है। इसमें दो प्रकार के रासायनिक तत्व रहते हैं, जिन्हें एपिनेफ्रीन एवं नॉर-एपिनेफ्रीन कहते हैं। रक्त में एड्रेनिन की थोड़ी-सी मात्रा भी अग्रलिखित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है-(1) तेज और जोरदार हृदय की धड़कन; (2) ऊँचा रक्तचाप जो रक्त को चर्म या शरीर के भीतरी अंग के रास्ते न धकेलकर मांसपेशियों और मस्तिष्क के रास्ते धकेलता है; (3) उदर और आँत की क्रियाओं का स्थगित होना; (4) फेफड़ों के वायुमार्गो का चौड़ा पड़ जाना; (5) लीवन से एकत्र चीनी का निकास; (6) मांसपेशियों में देर तक थकान का न आना; (7) बहुत अधिक पसीना आना; (8) आँख की पुतली का फैल जाना।

इन प्रभावों को उत्पन्न करने में स्वतःसंचालित स्नायुमंडल के सहानुभूतिक विभाग का हाथ रहता है। सहानुभूतिक मंडल द्वारा उपर्युक्त प्रभाव शीघ्रता से और थोड़े समय के लिए उत्पन्न होते है, जबकि रक्त में मिले हुए एड्रेनिन के कारण ये प्रभाव धीरे-धीरे एवं लंबे समय के लिए उत्पन्न होते है। इस प्रकार, एड्रिनल मेडुला सहानुभूतिक मंडल से जुड़ा हुआ है।

शरीर द्वारा सोडियम पोटाशियम और चीनी का उपयोग करने में कॉर्टिन से काम लिया जाता है और मांसपेशियों तथा यौन क्रियाओं पर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह शरीर को उपयुक्त स्थिति में रखता है। यह जीवन के लिए आवश्यक भी है। साधारणतः, यक्ष्मा की बीमारी के कारण पुरूषों में एड्रिनल कॉर्टेक्स का पूर्ण विनाश हो जाता है, जिसे 'एडीसन' की बीमारी कहते हैं। इस बीमारी का नामकरण एडीसन नाम के अनुसंधानकर्ता के नाम पर हुआ है। इस घातक रोग के उत्पन्न होने पर निर्बलता और शिथिलता में तेजी से वृद्धि, यौन क्रियाओं में अरूचि, मेटाबॉलिक क्रियाओं का मंद पड़ना, किसी संक्रामक रोग के प्रतिरोधक शक्ति का कम हो जाना, चर्म का काला पड़ जाना, गर्मी का ठंडक के प्रति असहनशीलता, नींद की कमी, चिड़चिड़ाहट आदि लक्षण उत्पन्न होते है। रोगी को बाहर से कार्टिन देने पर ये लक्षण दूर हो जाते है।

एड्रिनल कॉर्टेक्स की अत्यधिक कार्यशीलता के कारण पुरूषों और स्त्रियों में पुरूषोचित्त लक्षणों की अधिकता पाई जाती है। स्त्रियों के अंगों की गोलाई नष्ट हो जाती है, आवाज भारी हो जाती है और दाढ़ी उगने लगती है।

3. यौन ग्रंथि-

पुरूषों की यौनग्रंथि को अंडकोष और स्त्रियों की यौनग्रंथि को डिंब कहते हैं। इन ग्रंथियों से क्रमशः शुक्रकीट और रजकीट नाम के क्रोमोजोम प्राप्त होते हैं जिनके संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। साथ ही, इन ग्रंथियों से कुछ हॉर्मोन्स का भी स्राव होता है, जिनका व्यक्ति के विकास और उसके व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यह हॉर्मोन्स काफी संख्या में होते हैं और इनमें कुछ पुरूष और स्त्री दोनों में उपस्थित रहते हैं। पुरूष के हॉर्मोन्स का संतुलन पुरूष में पुरूषत्व तथा स्त्री के हॉर्मोन्स का संतुलन स्त्री में स्त्रीत्व का विकास करता है। वयःसंधि के समय ये हॉर्मोन्स जननेद्रियों, यौन लक्षणों, जैसे स्त्रियों में दुग्ध ग्रंथि तथा पुरूषों में भारी आवाज और दाढ़ी का विकास करते हैं।

यौनग्रंथि द्वारा उत्पादित हॉर्मोन्स काफी हद तक स्त्रियों में संतानोत्पत्ति-संबंधी प्रक्रियाओं-जिसके अंतर्गत मासिक धर्म गर्भाधान, शिशु को दूध पिलाना आदि क्रियाएँ शामिल हैं-को नियंत्रित करती हैं। शिशु के पालन-पोषण की प्रेरणा में भी इन हॉर्मोन्स का महत्वपूर्ण हाथ रहता है।

कुछ व्यक्तियों में कामवासना अधिक होती है तो कुछ में कम। इस विभिन्नता का कारण यौनग्रंथि के हॉर्मोन्स को ही माना जाता है। पर, इस बात के यथेष्ट प्रमाण अभी नहीं मिले हैं। कुछ लोग रतिक्रिया में कम अभिरूचि रखते है; जिससे वे अपने मित्रों की आलोचना का विषय बने रहते है। इन आलोचनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में ऐसे लोग कुछ विभिन्न प्रकार की यौन क्रियाओं में संलग्न हो जाते हैं। इस तरह, स्पष्ट है कि यौनग्रंथि का भी व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

4. पियूष ग्रंथि-

इसे ग्रंथिपति की संज्ञा दी जाती है; क्योंकि इस ग्रंथि के हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों पर नियंत्रण रखते है। यह मस्तिष्क की निचली सतह में स्थित एक छोटी-सी ग्रंथि है। इस ग्रंथि के दो भाग है-पीछे का भाग एवं आगे का भाग। पियूष ग्रंथि के पिछले भाग से उत्पादित होने वाले हॉर्मोन्स शारीरिक क्रियाओं, जैसे रक्तचाप और जल के मेटाबोलिक कार्यो को नियमित करते हैं तथा आगे के भाग से उत्पादित हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों, जैसे गलग्रंथि, यौनग्रंथि, एड्रिनल ग्रंथि आदि को उत्तेजित करते हैं। पियूष ग्रंथि के निष्क्रिय रहने पर ये ग्रंथियाँ या तो विकसित नहीं हो पाती अथवा सामान्य रूप से कार्य नहीं कर पातीं।

पियूष ग्रंथि के अगले भाग का शारीरिक विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में इस ग्रंथि की अतिकार्यशीलता के कारण हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ बड़ी तेजी से बढ़ती हैं और व्यक्ति की लंबाई

असामान्य रूप से दैत्य की तरह 7 से 9 फुट तक हो जा सकती है। बाद में चलकर यह ग्रंथि शक्तिहीन हो जा सकती है जिससे कम उम्र में ही उसकी मृत्यु हो जा सकती है। यदि प्रौढ़ जीवन में यह ग्रंथि अधिक कार्यशील होती है तो व्यक्ति का कद लंबा होने के बजाए हाथ, पैर, नाक, जबड़े इत्यादि की लंबाई में वृद्धि होने की संभावना रहती है। इस स्थिति को मिडगेट्स कहते हैं। शरीर के विकास की अवधि में इस ग्रंथि के कम क्रियाशील रहने पर व्यक्ति बौने कद का हो जाता है जिन्हें 'क्रेटिन्स' कहते हैं।

5. पीनियल ग्रंथि-

इसके हॉर्मोन का प्रभाव बाल्यकाल में अधिक देखा जाता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि यह ग्रंथि अपने स्राव के द्वारा बच्चों में यौन भाव के विकास के न होने में सहायक है।

6. पैक्रियाज-

इसका बहाव या स्राव मांसपेशियों की चीनी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। कभी-कभी देखा जाता है कि पैक्रियाज के अत्यधिक क्रियाशील होने के फलस्वरूप व्यक्ति और चिंतित रहने लगता है।

व्यक्तित्व और अंतःस्रावी ग्रंथियों के पारस्परिक संबंधों के बारे में इंगल (1935) ने यह निष्कर्ष निकाला है-''निष्कर्ष रूप में हम इतना ही कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के आधारभूत जैविक तत्वों में अंतःस्रावी ग्रंथियाँ भी है''

ग. स्नायुमण्डल-

व्यक्तित्व का सम्बन्ध व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों से है तथा इन व्यवहारों पर व्यक्ति के शीलगुणों एवं वातावरणीय कारकों के बीच उत्पन्न संघर्षो का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्नायुमण्डल की इस समायोजित व्यवहार की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्नायुमण्डल के केन्द्रीय एवं स्वतःचालित-दोनों ही तंत्रों का व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों के नियमन एवं नियंत्रण पर सार्थक प्रभाव देखा गया है।

6.6.2 व्यक्तित्व के सामाजिक/वातावरणीय निर्धारक-

सामाजिक निर्धारकों को निम्नलिखित मुख्य वर्गो में बांटा जा सकता है -

(क) जीवन के प्रारंभिक वर्षो का प्रभाव-

मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का बीजारोपण बचपन के प्रारंभिक 5 वर्षो में हो जाता है और उसी नींव पर संपूर्ण व्यक्तित्व-रूपी भवन खड़ा रहता है। चरित्रनिर्माण की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि बाल्यावस्था में किसी बच्चे को दूध पिलाना शीघ्र बंद कर दिया जाता है तो किसी को देर से। इन घटनाओं के फलस्वरूप बालकों को कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति बाद में चलकर संरक्षित या असंरक्षित होने की भावना के रूप में होती है। इसी तरह, बालक जब विकास के गुदावस्था में पहुँचता है, तब उस समय भी उसे कुछ नई अनुभूतियाँ प्राप्त होती है जिनका प्रभाव भी उसके भावी, व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। उक्त अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रहने अथवा जल्दी-

जल्दी निष्काषित करने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसकी छाप उसके व्यक्तित्व पर पड़ती है। गुदा धारण की अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रखने की प्रवृत्ति बहुत अधिक रहती है। कभी-कभी मल-मूत्र परित्याग-संबंधी प्रशिक्षण के अभाव में बालक इसी अवस्था में लंबे समय तक रहते हैं। इसी प्रकार बाल्यावस्था की शिक्षावस्था अथवा किशोरावस्था के अनुभवों की भी अमिट छाप वयस्क व्यक्तित्व पर पड़ती है।

(ख) परिवार का प्रभाव-

बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर उसके परिवार तथा घरेलू वातावरण का प्रभाव अत्यंत व्यापक रूप से पड़ता है। घरेलू वातावरण प्रमुख हैं-

1. पालन-पोषण की प्रणाली-

प्रत्येक परिवार में बालकों के पालन-पोषण की रीति भिन्न-भिन्न ढंग की होती है। कुछ माँ-बाप बच्चों को अति सुरक्षा प्रदान करते हैं तो कुछ उनके प्रति लापरवाह रहते हैं। किसी बच्चे को स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र प्रशिक्षण का पर्याप्त अवसर मिलता है तो किसी को ऐसा अवसर बिल्कुल नहीं मिलता। इन विभिन्नताओं का प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व के विकास और निर्माण पर पड़ता है। ब्रॉडी (1956) ने 32 माताओं के बच्चा पोसने के ढंग का अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि जो माताएँ अपनी संतानों की आवश्यकताओं के प्रति बहुत अधिक सजग रहती हैं उनका बच्चों के प्रति व्यवहार निश्चित और स्थिर ढंग का होता है तथा वे बच्चों पर पूरा ध्यान रखती है। लेकिन, जो माताएँ बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग नहीं रहतीं उनके व्यवहार अनिश्चित ढंग के होते हैं।

2. माता और पिता के आपसी संबंध-

माता और पिता के पारस्परिक संबंधों का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में सिरिल बर्ट का कहना है कि जिन बच्चों के माता-पिता के पारस्परिक संबंध अच्छे नहीं रहते, उनके बच्चों में संतुलित व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। ऐसे परिवारों में उचित अनुशासन का अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप वे बाल-अपराधी हो जाते हैं। ऐसे घरों को सिरिल बर्ट ने बिगड़े या टूटे हुए घर की संज्ञा दी है। बॉलकाइण्ड एवं रटर (1973) ने बिगड़े या टूटे हुए घरों के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला है कि विकासशील बालकों के लिए माता-पिता के पारस्परिक झगड़े, संघर्ष और उनके बीच की तनावपूर्ण स्थितियाँ घातक होती हैं, फलतः उन घरों में विकसित होने वाले बच्चे असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, तथा उनका व्यक्तित्व भी कुंठित हो जाता है। ऐसे घरों में बच्चों में बेईमानी की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं, बच्चे विश्वासघाती हो जाते हैं अथवा इस प्रकार के अन्यान्य अवांछित गुण विकसित होते है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे बच्चे घरों में अपने माता-पिता का उपयुक्त स्नेह और प्यार नहीं प्राप्त कर पाते और वे शीघ्र ही समाज के अवांछित तत्वों के संपर्क में आ जाते हैं अथवा अपने माता-पिता के अनाभियोजित व्यवहारों को ग्रहण करते हैं।

3. माता-पिता का बच्चों के साथ संबंध-

माता-पिता के पारस्परिक संबंध के अतिरिक्त बच्चों के साथ उनके संबंध भी व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कठोर अनुशासन, दंड या अति-सुरक्षा अस्वीकार करने आदि के फलस्वरूप व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है। कभी माता-पिता बच्चे के जन्म का स्वागत करते हैं तो कभी बच्चे अनावश्यक समझे जाते हैं। अनावश्यक समझे जाने वाले बच्चे हीनता ही भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है।

माता-पिता हैं अथवा नहीं, इस दृष्टि से बच्चों को अग्रलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है-(क) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों जीवित हैं, (ख) ऐसे बच्चे जिनके पिता हैं, माता नहीं, (ग) ऐसे बच्चे जिनकी माँ है; किंतु पिता नहीं, (घ) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों नहीं है; (च) ऐसे बच्चे जिन्हें सौतेली माँ या सौतेला बाप अथवा नर्स पालती-पोसती है। इन सभी अवस्थाओं में बच्चों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न ढंग से उत्पन्न होती हैं जिनका महत्वपूर्ण प्रभाव उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर पड़ता है।

4. परिवार के बच्चों का एक-दूसरे से संबंध-

परिवार में बच्चों को अपने भाई-बहनों या दूसरे बच्चों के साथ अंतःक्रिया का भी प्रभाव उनके व्यक्तित्व-विकास पर महत्वपूर्ण ढंग से पड़ता है। इस संबंध में एकलौता बच्चा, जन्मक्रम, बच्चों का यौन-वितरण, बच्चों का यौन संयोग, परिवार का आकार आदि परिवार-संरचना के महत्वपूर्ण तत्व है तथा इन संरचनात्मक तत्वों में भिन्नता का प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व-संबंधी गुणों के विकास पर अलग-अलग ढंग से पड़ता है। इन तत्वों द्वारा सामाजिक अभियोजन की प्रक्रिया निर्धारित होती है। एक घर में अगर एक से अधिक बच्चे होते है तो वह एक-दूसरे के विचारों, मनोवृत्तियों आदि से प्रभावित होते हैं तथा परस्पर अभियोजन का प्रयास करते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों में जन्मक्रम का भी महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इस संबंध में मैक्लीलैण्ड, विंटरबॉटम, सैम्पसन आदि ने विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जन्मक्रम में भिन्नता होने के फलस्वरूप एक ही परिवार के विभिन्न बच्चों के व्यक्तित्व-गुण भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। इस संदर्भ में एडलर का विचार है कि एकलौते बच्चों के आराम, अधिकार एवं माता-पिता के स्नेह का भागीदार दूसरा कोई नहीं होता, जिससे ऐसे बच्चों में एकाधिपत्य की भावना विकसित होती है और उनका व्यक्तित्व अधिकारप्रिय प्रकार का हो जाता है। मंझले बच्चों में स्पर्द्धायुक्त व्यक्तित्व और छोटे बच्चे में लाइम लाइट व्यक्तित्व पाया जाता है। इसका कारण यह है कि मंझले बच्चों की अपने से बड़े एवं छोटे दोनों छोरों पर के भाई तथा बहनों के साथ प्रतिस्पर्धा रहती है। सबसे छोटे बच्चों को परिवार का अंतिम बच्चा होने के कारण परिवार में सभी का भरपूर लाड़-प्यार मिलता है। इसी से ऐसे बच्चे अपने को सबसे प्रधान समझने लगते हैं। फलतः उनमें

संरक्षित होने का भाव सर्वाधिक मात्रा में रहता है जिससे उनका व्यक्तित्व लाइम लाइट प्रकार का हो जाता है।

(ग) पड़ोस का प्रभाव-

बच्चे जब कुछ बड़े होते हैं तब वे पड़ोसियों से वे सामाजिक रहन-सहन, तौर-तरीकों और अभियोजन-संबंधी गुणों को ग्रहण करते हैं। साथ ही, बच्चे अपने व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से दूसरों को और दूसरों के व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से स्वयं अपने को भी प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों के फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में सामाजिक अभियोजन संबंधी गुणों का विकास होता है।

पड़ोस दो तरह के हो सकते हैं- (क) तुरंत-तुरंत बदलने वाला पड़ोस और (ख) स्थिर एवं निश्चित पड़ोस। प्रायः यह देखा गया है कि जिनका पड़ोस तुरंत-तुरंत बदलता रहता है, उनके व्यक्तित्व में हिल-मिलकर रहने तथा सहयोग की भावना का विकास अपेक्षाकृत कम होता है बनिस्पत वैसे बालक के, जिनका पड़ोस स्थायी और निश्चित होता है।

(घ) स्कूल का प्रभाव-

लगभग 5 से 6 वर्ष की आयु में बच्चे स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रवेश लेते हैं और पूर्ण वयस्क होने के समय तक शैक्षणिक वातावरण द्वारा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। स्कूल में पहली बार बच्चों को संस्थानिक कायदे-कानून का अनुभव प्राप्त होता है|

स्कूल में बालकों को तीन प्रकार के लोगों के साथ संबंध स्थापित करना पड़ता है- (क) शिक्षक जो उसके लिए पितातुल्य होते हैं, (ख) वर्ग के सहपाठियों के साथ और (ग) अपने से ऊँचे और नीचे के वर्गों के विद्यार्थियों के साथ।

कभी-कभी पिता और शिक्षक के विचार, विश्वास एवं व्यवहार में विरोधाभास होता है; जैसे-पिता आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है तो शिक्षक का अध्यात्म में विश्वास नहीं है। इस तरह के विरोधाभास की स्थिति में बालक के व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप से नहीं हो पाता।

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर स्कूल के प्रशासक एवं प्रशासनिक व्यवस्था दोनों का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि मिशन द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों और राज्य सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। इस संबंध में लेमैन (1949) ने एक अध्ययन में पाया कि आस-पास के दो विद्यालयों में से एक के विद्यार्थियों ने उनके परीक्षण कार्यक्रम में काफी सहयोग दिया, जबकि दूसरे विद्यालय के विद्यार्थियों ने स्पष्ट असहयोग किया। जाँच करने पर पता चला कि पहले स्कूल के प्राचार्य का प्रशासन लोकतंत्री व्यवस्था पर आधृत था, जबकि दूसरे स्कूल के प्राचार्य सत्तवादी प्रशासक थे।

(ड़) समुदाय का प्रभाव-

व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समुदाय अथवा सामाजिक वातावरण के प्रभावों का संकेत हमें समुदाय की नियमावली और कार्यभाग अथवा भूमिका से प्राप्त होता है। व्यक्ति आचरण की एक नियमावली सीखता है। वह अपने समूह या समुदाय की नियमावली को अपना लेता है अथवा उस समूह में रहते हुए अपनी व्यक्तिगत नियमावली बना लेता है। इस तरह, समुदाय में या तो उसके लिए कोई कार्य रहता है अथवा वह अपने लिए कार्यभाग का चुनाव खुद कर लेता है।

सामुदायिक जीवन में ही वह अपने समाज के रीतिरिवाजों, परंपराओं, नैतिक आदर्शों इत्यादि को ग्रहण कर लेता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करता है। इसी क्रम में परस्पर सहयोग, मिल-जुलकर रहने, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्द्धा आदि व्यक्तित्व-गुणों को भी अर्जित करता है।

6.6.3 **सांस्कृतिक निर्धारक-**

संस्कृति के अंतर्गत रहन-सहन, वेश-भूषा, विचार, व्यवहारशैली, आदि शामिल हैं जिनका व्यक्तित्व पर दो तरह से प्रभाव पड़ता है-

1. विशिष्ट प्रकार की संस्कृति में जन्म लेने के कारण व्यक्ति उसी संस्कृति को अपना लेता है। अतः, व्यक्ति को सांस्कृतिक वातावरण से पृथक नहीं किया जा सकता।
7. संस्कृति की कुछ ऐसी भी बातें होती हैं जिन्हें व्यक्ति अपनाना नहीं चाहता, परंतु संस्कृति में अपनी पहचान बनाए रखने की इच्छा से अथवा सामाजिक दबाव के कारण वह उसे अपना लेता है।

मीड (1901, 1952, 1972) ने न्यूगिनी और उसके आसपास रहने वाली तीन संस्कृतियों का अध्ययन किया और बताया कि तीनों संस्कृतियों की मूल व्यक्तित्व-रचना एक दूसरे से भिन्न है। अरापेश संस्कृति जनाना स्वरूप की हैं अतः, इस संस्कृति के रहने वाले लोगों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने तथा अगुआ बनने की भावना का अभाव रहता है। इस संस्कृति के स्त्री-पुरूष अत्यधिक सहयोगपूर्ण, दयालु, विश्वासी, सुशील और नेक होते हैं। इसके विपरीत, मुंडुगुमोर संस्कृति मर्दाना स्वरूप की है। इस संस्कृति के लोग अक्खड़, उग्र, ईष्यालु, अविश्वासी, आक्रमणशील और व्यक्तिवादी होते हैं। इन दोनों से भिन्न शांबुली की संस्कृति है, जहाँ स्त्रियाँ घरों के बाहर जीविकोपार्जन के धंधों में लगती हैं तथा पुरूष बच्चों की देख-रेख, लालन-पालन करते हैं। वे अपने को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए श्रृंगार करते हैं, कलाप्रेमी होते हैं तथा आपस में मिलकर गप्पें मारते हैं। स्त्रियाँ पुरूषों की सजावट देखकर प्रसन्न और मुग्ध होती हैं तथा उनसे विवाह की याचना करती हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कुईनर (1951)ने लिखा है कि यदि समाज में स्त्रियों और पुरूषों के लिए अलग-अलग नियम निर्धारित न हों, तो उनकी भूमिकाओं में भी कोई अंतर नहीं होगा।

6.7 सार संक्षेप

1. जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष, जैसे रूप-रंग, वेश-भूषा, बनावट आदि के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए मनुष्य के स्वभाविक स्थायी गुणों, जैसे- बुद्धि, धातु-स्वभाव, कौशल, नैतिकता आदि के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा दी है।
2. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को कुल तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है- सतही परिभाषाएं, तात्विक परिभाषाएं तथा समाकलनात्मक परिभाषाएं।
3. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को मूलतः दो भागों में बाँटा गया है- जैविक एवं सामाजिक या वातावरण। इन्हें व्यक्तित्व का निर्धारक भी कहते हैं।
4. जैविक कारक के अन्तर्गत आने वाले कारक हैं- आनुवंशिकता, शारीरिक गठन व धातु स्वभाग, अन्तःस्रावी ग्रंथिया, स्नायुमण्डल आदि।
5. सामाजिक कारक के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक वर्षो का वातावरण, पारिवारिक वातारण, स्कूल, पड़ोस, खेल के साथी, समुदाय, संस्कृति आदि आते हैं।

6.8 पारिभाषिक शब्दावली:-

व्यक्तित्वः व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।

6.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना।
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality

6.10 स्व- मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों की विवेचना करें।
3. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों पर प्रकाश डालें।

इकाई 7. व्यक्तिव का विकास (Development of Personality)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय
7.4 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय
7.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियां
7.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया
7.6 सार संक्षेप
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.1 प्रस्तावना-

व्यक्तित्व जहाँ व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों, यानी बाहरी रूप-रंग, डील-डौल, आकर्षण तथा आन्तरिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, वहीं व्यक्तित्व विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व पैटर्न का विकास है, यानी उन सभी मनोदैहिक तंत्रों का विकास है जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है तथा जो आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।

व्यक्तित्व विकास के क्रम में मूलतः व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण में विकासात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं एवं इन्हें व्यक्ति के जैविक व सामाजिक सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं।

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व की परिभाषा, उसके स्वरूप, उसकी विशेषताएं एवं व्यक्तित्व निर्धारक के विभिन्न तत्वों की जानकारी प्राप्त की। आइए, अब इस इकाई के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास करें कि वास्तव में व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है, इसकी प्रक्रिया क्या है तथा इसके अध्ययन की कौन-कौन सी विधियां हैं?

7.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व विकास के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे
7. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन विधियों को उपयोग में ला सकेंगे
3. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को रेखांकित कर सकेंगे

7.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय-

व्यक्तित्व का संप्रत्यय यूनानी नाटकों में नायकों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले नकाब से सम्बद्ध है जिसे ''परसोना'' कहा जाता था। परसोना लैटिन शब्द है। इसी का अंग्रेजी अनुवाद है-''पर्सनालिटी'' तथा इसी को हिन्दी में ''व्यक्तित्व'' की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व अपने शाब्दिक अर्थ में बाहरी वेशभूषा तथा दिखावा है। जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा जितना ही भड़कीला होगा, उसका व्यक्तित्व उतना ही अच्छा व प्रभावशाली समझा जायेगा।

व्यक्तित्व का उसके शाब्दिक अर्थ से जुड़ा यह सम्प्रत्यय कालांतर में खारिज कर दिया गया और आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस काफी वैज्ञानिक रूप में परिभाषित करते हुए बताया कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्त प्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है (आइजेंक, 1952)''।

व्यक्तित्व की इस वैज्ञानिक परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुणों का समन्वय है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार ऑलपोर्ट (1937) ने प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक तंत्रों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऑलपोर्ट और आइजेंक की राय लगभग एक समान ही है। दोनों ने ही व्यक्तित्व के निर्धारण में उसके आन्तरिक पक्षों एवं बाह्य पक्षों के महत्व पर प्रकाश डाला है, परन्तु भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल दिया है। व्यवहार पक्ष पर उतना बल नहीं दिया है। मिशेल (1981) ने व्यक्तित्व को व्यवहारवादी दृष्टि कोण से परिभाषित करते हुए लिखा है- ''प्रायः' व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''

7.4 व्यक्तित्व विकास का सम्प्रत्यय-

व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय एक ऐसा संप्रत्यय है जो व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिकों को सर्वाधिक उलझा कर रखा है। इस संम्प्रत्यय को समझने के लिए विकास का अर्थ समझना आवश्यक है। विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ परिपक्वता तथा पर्यावरण के साथ होने वाली अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति की अभिवृद्धि तथा क्षमता में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता तथा अनुभूति के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। वॉन डेन डीले (1976) के अनुसार विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है। इसका मतलब यह हुआ कि विकास का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि व्यक्ति की लम्बाई दो इंच बढ़ गयी है या उसका वजन पाँच किलोग्राम पहले से अधिक हो गया है या उसकी क्षमता पहले से अधिक हो गयी है। बल्कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें बहुत सारी संरचनाएँ तथा क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

जहाँ तक व्यक्तित्व विकास का प्रश्न है, इससे तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्सम्बंधित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं-आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है। आइए, इन दोनों तत्वों पर स्वतंत्र रूप से विचार करें।

1. आत्म-संप्रत्यय-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का 'दर्पण बिम्ब' होता है जो व्यक्ति द्वारा की गईए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है।

प्रत्येक आत्म-संप्रत्यय के दो पहलू होते हैं- दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक। दैहिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपने रूप-रंग, यौन उपयुक्तता, किये जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में शरीर का महत्व तथा दूसरे लोगों से उनके शरीर को मिलने वाली प्रतिष्ठा आदि के सम्बन्ध में होते हैं। मनोवैज्ञानिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपनी क्षमता तथा अक्षमता, अपनी योग्यता तथा अन्य लोगों के साथ संबंध आदि के बारे में होते हैं। प्रारंभ में ये दोनों पहलुएँ अलग-अलग होते हैं परंतु जैसे व्यक्तित्व का विकास होते जाता है, वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं।

चूँकि आत्म-संप्रत्यय व्यक्तित्व पैटर्न का सारभाग होता है अतः इससे शीलगुणों का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे- यदि व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय धनात्मक होता है, तो व्यक्ति में आत्म-विश्वास, आत्म-सम्मान तथा अपने आप को यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है।

इससे उनमें उत्तम सामाजिक समायोजन का विकास होता है। दूसरे तरफ यदि आत्म-संप्रत्यय नकारात्मक होता है, तो व्यक्ति में हीनता तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उनमें आत्म-विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बुरा असर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि आत्म-संप्रत्यय के विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है तथा किशोरावस्था आते-आते आत्म-संप्रत्यय का विकास पूर्ण हो जाता है, हालांकि बाद में नये वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियों के होने से उसमें परिवर्तन भी आता है।

7. शीलगुण-

शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व, सहनशीलता, आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म-संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म-संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं परंतु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में संयोजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता। वैयक्तिकता से तात्पर्य यह होता है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है। संगतता से तात्पर्य यह होता है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।

व्यक्तियों में शीलगुण का विकास अंशतः अधिगम तथा अंशतः आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करता है। शीलगुणों में परिवर्तन घर तथा स्कूल में दिये गए बाल्यावस्था के प्रशिक्षण द्वारा तथा उस मॉडल व्यक्ति द्वारा होता है जिसका व्यक्ति अपनी जिंदगी में अनुकरण करता है। जैसे- जिस बच्चा का बाल्यावस्था में सख्त सत्तावादी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रायः आगे चलकर उसमें एक अनम्य समायोजी पैटर्न विकसित हो जाता है। अन्य बातों के अलावा वयस्कावस्था में ऐसे लोग अतिनियंत्रित, अंतर्मुखी, रूढ़िवादी, परम्परागत, अवरोधी आदि व्यवहार दिखाने वाले हो जाते हैं। इन सबों से मिलकर जिस व्यक्तित्व संलक्षण का विकास होता है, उसे सत्तवादी व्यक्तित्व संलक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास एक ऐसा संम्प्रत्यय है जिसमें न केवल आत्म संप्रत्यय बल्कि शीलगुणों का विकास भी सम्मिलित होता है तथा इसमें आनुवंशिकता एवं पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है।

7.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियाँ-

मनोवैज्ञानिकों ने इसके अध्ययन हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधियों को प्रकाश में लाया है-

(क) प्रयोगात्मक विधि

(ख) सहसंबंधात्मक विधि

(ग) केस-अध्ययन विधि

(घ) अनुदैर्ध्य विधि

(ड.) अनुप्रस्थकाट विधि

आइए, अब हम लोग इन विधियों पर चर्चा करें।

(क) प्रयोगात्मक विधि-

व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की यह विधि काफी लोकप्रिय है जिसमें प्रयोगात्मक प्राक्कल्पना की जाँच एक नियंत्रित परिस्थिति में की जाती है। इसमें कुछ चर ऐसे होते हैं जिनमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है। इसे स्वतंत्र चर कहा जाता है तथा कुछ चर ऐसे होते है जिसपर उस जोड़-तोड़ का प्रभाव पड़ते देखा जाता है। ऐसे चर को आश्रित चर कहा जाता है। इस विधि में सामान्यतः प्रयोज्यों को दो या दो से अधिक समूहों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक समूह को स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तर से अनावृत किया जाता है। सामान्यतः यादृच्छिक आवंटन की प्रक्रिया अपनाकर विभिन्न समूहों को स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने के पहले तुल्य किया जाता है। इस यादृच्छिक आवंटन के बाद स्वतंत्र चर में किये गए जोड़-तोड के कारण आश्रित चर में अंतर होते देखा जाता है तो प्रयोगकर्ता सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसा अंतर स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ के कारण हुआ है तथा आश्रित चर में होने वाले परिवर्तन का कारण स्वतंत्र चर ही है।

(ख) सहसंबंधात्मक विधि-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस विधि में दो व्यक्तित्व विकास चरों के बीच सहसंबंध ज्ञात करके उनके बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस विधि में चरों में कोई जोड़-तोड़ नहीं किया जाता है बल्कि व्यक्तियों का प्रेक्षण स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है। इस अध्ययन में मुख्य प्रश्न जिसका उत्तर शोधकर्ता जानना चाहता है, वह है- ''क्या चर '(क)' तथा '(ख)' साथ-साथ परिवर्तित होते हैं? क्या '(क)' चर में होने वाले परिवर्तन की दिशा '(ख)' चर में परिवर्तन की दिशा के अनुकूल है या प्रतिकूल है? इसके लिए दोनों चरों के बीच सहसंबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है जिसकी अनेक विधियाँ हैं जिनमें 'पियर्सन विधि'' सबसे प्रमुख विधि है। सहसंबंध गुणांक पूर्ण धनात्मक (+1.00) से पूर्ण ऋणात्मक (-1.00) तक होता है। शून्य सहसंबंध इस बात का द्योतक होता है कि दोनों चरों के बीच कोई सहसंबंध नहीं है। धनात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में समान परिवर्तन होने का संकेत मिलता है तथा ऋणात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में विपरीत परिवर्तन का संकेत मिलता है।

(ग) केस अध्ययन विधि-

इस विधि में व्यक्तित्व मनोविज्ञानी किसी व्यक्ति के व्यवहारों एवं उनके जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध रिकार्ड कुछ समय तक करते हैं, फिर उसका विश्लेषण करके कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अतः

यह विधि एक तरह से अनुदैर्ध्य उपागम पर आधृत है। इस विधि का उपयोग व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में सबसे अधिक जीन पियाजे द्वारा किया गया। इन्होंने अपने तीनों बेटियों में होने वाले संज्ञानात्मक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन किया।

सिगमंड फायड ने इस विधि का उपयोग सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों के व्यक्तित्व के अध्ययन में तथा मैसलों तथा रोजर्स ने इस विधि का अध्ययन सामान्य व्यक्तियों में व्यक्तित्व पैटर्न के अध्ययन में क्रमबद्ध रूप से किया है।

इस विधि के उपयोग में सबसे बड़ी कठिनाई जो आती है, वह यह है कि इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण व्यक्तियों के बड़े समूह के लिये संभव नहीं है, क्योंकि इसमें मात्र एक या दो व्यक्तियों का ही अध्ययन किया जाता है।

(घ) अनुदैर्ध्य विधि-

व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन करने की यह सबसे उत्तम विधि है। इस विधि में एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अंतरालों पर क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षण किया जाता है तथा उनका रिकार्ड तैयार करके विश्लेषण किया जाता है। इस तरह से इस विधि में व्यक्तियों की जिन्दगी के विभिन्न अंतरालों में हुए विकास की आपस में तुलना की जा सकती

(ड.) अनुप्रस्थ-काट विधि-

इस विधि में अध्ययनकर्ता विभिन्न उम्र के व्यक्तियों के विभिन्न समूहों की एक साथ तुलना करता है और एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। अतः यह अनुदैर्ध्य विधि से भिन्न तथा विपरीत है जहाँ एक समूह के व्यक्तियों को विभिन्न समय अंतरालों पर अध्ययन करके शोधकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। अनुप्रस्थ काट विधि व्यक्तित्व विकास के अध्ययन का एक स्नैपशॉट उपागम है।

व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में इस विधि का उपयोग टेम्पलिन (1957) द्वारा किया गया। इन्होंने अपने अध्ययन में विभिन्न उम्र समूहों के 60 बच्चों का चयन किया। इस अध्ययन में उन्होंने बच्चों में भाषा विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे शब्दकोष, आवाज, विभेद, व्याकरण तथा भाषण-आवाज चिंतन आदि का तुलनात्मक अध्ययन करके कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये।

इस विधि द्वारा व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करने में समय की काफी बचत होती है और अध्ययनकर्ता को अंतिम आँकड़े प्राप्त करने के लिये बहुत लम्बे समय का इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसके बावजूद इस विधि की परिसीमा यह है कि इसमें प्रयोज्यों के चयन की काफी वस्तुनिष्ठ एवं सख्त विधि की आवश्यकता पड़ती है ताकि उम्र समूहों का उचित प्रतिनिधित्व मिल सके।

7.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया-

व्यक्तित्व विकास की कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है। आइये,इन विशेषताओं पर नजर डालें।

1. व्यक्तित्व विकास में आरंभिक नींव महत्वपूर्ण होते हैं-

इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जो मनोवृत्ति, आदत तथा व्यवहार का पैटर्न स्थापित होता है, वह बहुत हद तक बाद के व्यक्तित्व विकास में होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करता है।

7. व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों की भूमिका प्रधान होती है-

व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता मौलिक संसाधनों को प्रदान करता है जिसके अनुसार व्यक्ति सीखकर व्यवहार के सामान्य क्रम एवं पैटर्न को दिखाता है।

3. विकास का एक निश्चित एवं पूर्वानुमेय पैटर्न होता है-

जब तक पर्यावरण या अन्य समान कारकों का हस्तक्षेप नहीं होता है व्यक्ति के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाला विकास एक निश्चत पैटर्न के अनुसार चलता रहता है जो पूर्वानुमेय होता है।

4. सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं-

व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यह विशेषता अभिन्न जुड़वों में भी पायी जाती है।

5. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है-

व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ खास ढंग का विशेष व्यवहार करता है। प्रत्येक अवस्था में कुछ अवधि संतुलन की होती है तो कुछ अवधि असंतुलन की होती है। संतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण की माँगों के साथ आसानी से समायोजन कर लेता है तथा उत्तम समायोजन करता है। असंतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण के माँगों के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है जिससे सामाजिक समायोजन में कठिनाइयाँ होती है।

6. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में कुछ जोखिम होते हैं-

विकास का प्रत्येक अवस्था में कुछ भौतिक, मनोवैज्ञानिक या पर्यावरणी जोखिम कारक होते हैं जिनसे व्यक्तित्व विकास थोड़ा अवस्द्ध होते हैं।

7. व्यक्तित्व विकास पर सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है-

प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार के सांस्कृतिक मानकों एवं मूल्यों से बँधा होता है। अतः वह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व विकास पर उन सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े।

8. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी सामाजिक प्रत्याशाएं होती हैं-

विकास की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ कौशलों को सीखता है तथा व्यवहार के विभिन्न अनुमोदित पैटर्न को सीखता है। इसे हैविंगहर्स्ट (1953) ने विकासात्मक कार्य कहा है।

स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। आइए, अब व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया पर चर्चा करें।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया निम्नांकित अवस्थाओं में संपन्न होती है-

1. पूर्वप्रसूत अवस्था में व्यक्तित्व विकास
7. शैश्वावस्था में व्यक्तित्व विकास
3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. पूर्वकिशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास
8. मध्यावस्था में व्यक्तिव विकास
9. वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास

इन सबों का वर्णन इस प्रकार हैं-

1. पूर्वप्रसूति अवस्था में व्यक्तिव विकास-

पूर्व प्रसूति काल गर्भधारण से लेकर जन्म तक की अवधि है जो सामान्यतः 280 दिनों तक विस्तरित रहता है। यह अवस्था तीन भागों में बँटी होती है- जायगोट की अवस्था (गर्भधारण से 14 दिनों की अवधि), भ्रूण की अवस्था (दूसरा सप्ताह से आठवें सप्ताह तक की अवधि) तथा फेटस की अवस्था (9वें सप्ताह से जन्म तक की अवधि)। अध्ययनों से पता चलता है कि इस अवधि में हुई घटनाओं का माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बोवेस एवं उनके सहयोगियों (1970) ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि यदि गर्भवती माता किसी कारण से कुनैन का उपयोग करती है, तो उनके बच्चे में बहरापन रोग हो जाता है। उसी तरह एसपिरीन तथा एण्टीबायटिक्स का उपयोग करने से बच्चे में हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। उसी तरह गर्भावस्था में जब माताएँ कुपोषण का शिकार हो जाती है, तो उनके बच्चों में मानसिक मंदता उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे बच्चों का शारीरिक विकास भी काफी मंदित हो जाता है तथा कई तरह के स्नायविक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे उनका व्यक्तिव विकास मंदित हो जाता है।

7. शैशवावस्था में व्यक्तिव विकास-

शैशवावस्था जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है तथा यह अवस्था सभी अवस्थाओं से छोटी होती है। इसे दो भागों में बाँटा गया है- प्रसव अवधि, जो जन्म से लगभग 30 मिनट तक का होता है तथा न्योनेट की अवधि, जो नाभि (नाड़ी) को काटकर बाँधने से दूसरे सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है। शैशवावस्था की क्रियाओं एवं घटनाओं से न केवल भविष्य में विकसित होने वाले व्यक्तित्व के पैटर्न का पता चलता है बल्कि इनका ऐसे व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव भी पड़ता है। इस अवधि में बच्चों में तरह-तरह की भिन्नता पायी जाती है। कुछ बच्चे अधिक रूदन करते हैं

तो कोई कम। कुछ बच्चों द्वारा पेशीय क्रियाएँ अधिक होती हैं तो कुछ बच्चों द्वारा ऐसी क्रियाएँ कम एवं अनियंत्रित होती हैं। कुछ बच्चों में अमुक तरह के प्रतिवर्त क्रियाएँ अधिक होते हैं। कुछ बच्चे बहुत सोते हैं तो इस अवधि में कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो तुलनात्मक रूप से कम सोते हैं। इन सभी तरह की क्रियाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ते देखा गया है।

3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बचपनावस्था की शुरूआत जन्म के दो सप्ताह बाद से प्रारंभ होकर अगले दो साल तक बनी होती है। बचपनावस्था को व्यक्तित्व विकास का विवेचित या क्रान्तिक अवस्था कहा जाता है। इसे विवेचित अवस्था इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसी अवधि में उन सारी चीजों की नींव पड़ती है जिस पर वयस्क व्यक्तित्व संरचना का आगे चलकर निर्माण होता है। निम्नांकित पाँच ऐसे सबूत प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क व्यक्तित्व संरचना की नींव इस अवधि में पड़ती है-

क. कोट्स एवं उनके सहयोगियों (1972) तथा रटर (1972) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि इस अवधि में बच्चों में सांवेगिक वंचन होने पर (जैसा कि घर में माँ द्वारा बच्चे के साथ अंतक्रिया करने के लिए समयाभाव के होने से या बच्चा को किसी संस्थान में रख देने से प्रायः होता है) आगे उनके व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी कमियाँ उत्पन्न होते पायी गयी है। प्रायः ऐसे वयस्क सांवेगिक रूप से अस्थिर प्रकृति के होते देखे गए हैं।

ख. चूँकि इस अवधि में बच्चे की अन्तःक्रिया माँ के साथ सबसे ज्यादा होती हैं| यदि माँ के साथ संबंध अनुकूल तथा स्नेहमयी होता है, तो बच्चों में धनात्मक आत्म-संप्रत्यय का विकास होता है।

ग. इस अवधि में जब कोई अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल घटना घटती है, तो उस समय बच्चों में विकसित हो रहे शीलगुण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे- स्टोन एवं चर्च (1973) ने अपने अध्ययन में पाया कि इस अवधि में जब बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण का निर्माण हो रहा होता है और यदि उस समय माता-पिता से उसे अतिसंरक्षण मिलता है, तो यह बच्चे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और उस शीलगुण का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

घ. जराई एवं स्कीनफिल्ड (1968) के अध्ययन के अनुसार इसी अवस्था में बच्चों में यौन अंतर की नींव भी पड़ जाती है जो बाद में पुरूष बच्चा को एक ढंग से तथा स्त्री बच्चा को दूसरे ढंग से व्यवहार करने एवं सोचने के लिए बाध्य करता है।

ड. इस अवस्था में व्यक्तित्व पैटर्न का सार अर्थात् आत्म-संप्रत्यय का जो जन्म होता है, वह बाद में करीब-करीब वैसा ही रह जाता है। विशेष पर्यावरणी परिस्थिति के होने पर उसमें हल्का-सा परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, व्यक्तित्व का यह सार कम-से-कम लचीला होता चला जाता है। वैसी परिस्थिति में व्यक्तित्व शीलगुणों में किसी तरह के परिवर्तन से व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है।

4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बाल्यावस्था 2 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक की होती है। इसमें 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक को आरंभिक बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष की आयु तक को उत्तर बाल्यावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था को प्राक्स्कूल अवस्था या प्राक् टोली अवस्था तथा उत्तर बाल्यावस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में बच्चों का शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। इस अवस्था में शरीर की मांशपेशियाँ अधिक गठीली और मजबूत हो जाती है जिससे बचपन वाली आकृति धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। यह अवस्था समाप्त होते-होते बालकों में 32 स्थायी दाँतों में से 28 स्थायी दाँत निकल आते हैं और बाकी चार स्थायी दाँत किशोरावस्था में निकलते हैं। इस अवस्था में बालकों में शब्दावली निर्माण में वृद्धि, उच्चारण में स्पष्टता तथा जटिल वाक्यों का प्रयोग आदि अधिक पाया जाता है। इनके संभाषण अब अधिक नियंत्रित एवं तथ्य पूर्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। इनका सांवेगिक पैटर्न भी अब पहले की तुलना में अधिक परिपक्व हो जाता है। बाल्यावस्था समाप्त होते-होते, सांवेगिक अभिव्यक्ति का ढंग अधिक परिपक्व हो जाता है। वे सामाजिक रूप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से उसे उन्हें दूसरों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नहीं हो सकेगा। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह संयुक्त रूप से स्पष्ट हुआ है कि बाल्यावस्था समाप्त होते ही बच्चों के व्यक्तित्व में कुछ खास प्रकार के सामाजिक व्यवहार विकसित होते हैं जिनमें प्रमुख हैं- सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता करना, उत्तरदायित्व लेना, सामाजिक सूझ, सामाजिक विभेद, पूर्वाग्रह तथा यौन प्रतिरोध आदि दिखाना। इस अवस्था तक व्यक्ति में 90 प्रतिशत मानसिक विकास पूरा हो जाता है तथा वह तरह-तरह के परिपक्व संज्ञानात्मक व्यवहार करने लगता है।

5. पूर्व किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था सामान्यतः 11-12 वर्ष से 13-14 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास संबंधी परिवर्तन काफी स्पष्ट होते हैं और लड़कों की तुलना लड़कियों का व्यक्तित्व विकास अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यह वह अवस्था होती है जहाँ लड़कियों पर सामाजिक प्रतिबंध लगना प्रारंभ हो जाते हैं। मोरे (1989) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इस अवस्था में व्यक्ति में चिंता, चिड़चिड़ापन तथा उदासी आदि अधिक बढ़ जाता है। इस अवधि में असहयोगिता, किसी बात को प्रायः नहीं मानना, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ झगड़ना आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं। लड़कों तथा लड़कियों दोनों में इस अवस्था में प्रायः सरदर्द, पीठ दर्द, तथा पूरे शरीर में सामान्य दर्द की शिकायत भी होती है जो स्पष्टतः उनके ग्रन्थीय विकास के कारण होते हैं।

6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 14-15 साल की आयु से लगभग 19-20 साल की आयु तक होती है। व्यक्तित्व विकास की यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसमें बहुत तरह के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, जिसका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है इसे 'तनाव एवं तूफान की अवस्था' भी कहा गया है क्योंकि इसमें बहुत तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे व्यक्तित्व पैटर्न का विकास प्रभावित होता है। लड़के एवं लड़कियों दोनों के शारीरिक ऊँचाई, भार, शरीर के अंगों का अनुपात, यौन अंगों एवं गौण यौन विशेषताओं में पर्याप्त परिवर्तन आते हैं जिनका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है। गैसेल तथा मोरे (1965) ने अपने अध्ययन में पाया कि 16-17 साल के बालक-बालिकाओं दोनों में ही क्रोध के संवेग की तीव्रता अधिक होती है और फिर धीरे-धीरे इसकी तीव्रता कम हो जाती है। इनमें विषमलैंगिकता का शीलगुण भी विकसित होने लगता है क्योंकि लड़के एवं लड़कियाँ अपने विपरीत यौन के व्यक्तियों के साथ मिलने-जुलने में काफी आनन्द उठाते हैं।

7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 21 वर्ष से लगभग 40 वर्ष की होती है। इस अवस्था में सामान्यतः व्यक्ति शादी करके अपना घर-परिवार बसाता है और किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है तथा अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ाता है। इन्हीं कारणों से इसे व्यवस्था या बसाने की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की अभिरूचियाँ थोड़ी सीमित हो जाती है। इनकी व्यक्तिगत अभिरूचियाँ, सामाजिक अभिरूचियाँ तथा मनोरंजन से संबद्ध अभिरूचियाँ किशोरावस्था के समान बहुत अधिक न होकर सीमित हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनमें कुछ नये-नये शीलगुणों का विकास होने लगता है। इस अवस्था में नयी-नयी जवाबदेहियाँ व्यक्ति के कंधे पर आ जाती है। व्यक्ति पर एक तरफ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होती हैं तो दूसरी तरफ अपने व्यवसाय या नौकरी से संबद्ध जिम्मेवारियाँ। इससे व्यक्ति की जिंदगी थोड़ा तनावयुक्त हो जाती है। प्रायः वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वतंत्र रूप से करना चाहता है। इस अभ्यास से उसमें सर्जनात्मकता का गुण भी विकसित होता है। चाहे इस अवस्था में वयस्क विवाहित या अविवाहित हो, अगर उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर अनुकूल होता है, तो उनकी सामाजिक क्रियाएँ अधिक बढ़ जाती है। परंतु यदि उनका सामाजिक आर्थिक स्तर प्रतिकूल होता है, तो ऐसी सामाजिक क्रियाएँ काफी कम एवं सीमित ही हो पाती हैं।

8. मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

मध्यावस्था या मध्यवयस्कावस्था की अवधि 40 से 60 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में कई कारणों से तनाव अधिक होता पाया गया है। मारमोर (1967) के अनुसार इस अवस्था में चार तरह के तनाव मुख्य रूप से होते हैं जिनका व्यक्तित्व पैटर्न के विकास पर सीधा असर पड़ता है।

क. दैहिक तनाव- उम्र के परिणामस्वरूप गिरते स्वास्थ्य के कारण इस तरह का तनाव उत्पन्न होता है।

ख. सांस्कृतिक तनाव- इस तरह के तनाव का मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में यौवन-शक्ति को उनके तुलना में अधिक महत्व दिया गया होता है।

ग. आर्थिक तनाव- इसका कारण सेवामुक्त होने पर आय में कमी तथा इस सीमित आय से परिवार के सदस्यों को शिक्षित करके स्तर संकेत प्रदान करने के प्रयास से होता है।

घ. मनोवैज्ञानिक तनाव- इस तरह के तनाव के कई कारण होते हैं जिनमें पति या पत्नी का देहांत, घर से बच्चों का व्यवसाय या नौकरी पर चला जाना, वैवाहिक जीवन का ऊब, मृत्यु के करीब होने का अनुमान आदि प्रमुख है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि इस अवस्था में दैहिक क्षमता में गिरावट आने के साथ-ही-साथ मानसिक क्षमता में भी गिरावट आती है। परंतु प्रयोगात्मक सबूत इसके विपरीत हैं। टरमेन एवं ओडेन (1959)ने पुरूषों तथा महिलाओं के समूह पर एक अनुदैर्ध्य अध्ययन किया और पाया कि उच्च बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों में इस मध्यावस्था में भी बौद्धिक तथा मानसिक ह्रास के कोई सबूत नहीं मिलते हैं।

9. वृद्धावस्था में व्यक्ति विकास-

जीवन अवधि की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था होती है जो सामान्यतः 60 वर्ष से प्रारंभ होकर मृत्यु तक विस्तरित होती है। 60 से 70 साल की अवधि को आरंभिक वृद्धावस्था तथा 70 से मृत्यु तक की अवधि को प्रगत वृद्धावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कुछ विशेष दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं जिनसे वृद्धों के समायोजन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनके खुशियों को कुप्रभावित करता है। हरलाँक (1989) के अध्ययनानुसार इस अवस्था में व्यक्ति के सामान्य रूप रंग एवं डील-डौल में स्पष्ट परिवर्तन आते हैं। इतना ही नहीं, उनमें आंतरिक परिवर्तन भी होते हैं जिनसे उनकी संवेदी एवं पेशीय क्षमताएँ काफी प्रभावित हो जाती हैं और व्यक्तित्व की सामान्य समयोजन क्षमता कम हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास जीवन अवधि के विभिन्न अवस्थाओं में चलने वाली एक निरंतर प्रक्रिया है जिसका इन सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. इनमें से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा दी हैं?

क. शेल्डन ख. कैटेल

ग. क्रेश्मर घ. ऑलपोर्ट

2. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की वह विधि जिसमें व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अन्तरालों पर क्रमबद्ध निरीक्षण कर उनका रेकार्ड तैयार किया जाता है, कहते हैं-

क. अनुप्रस्थ काट विधि ख. प्रयोगात्मक

ग. केस अध्ययन विधि घ. अनुदैर्ध्य विधि

7.6 सार संक्षेप-

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के बाहरी गुणों तथा भीतरी गुणों का एक समन्वय है। यह अपेक्षाकृत टिकाऊ प्रकृति का होता है तथा वातावरण में व्यक्ति के अपूर्व समायोजन का निर्धारक भी।
2. व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से है। इसके मुख्य दो तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण
3. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की निम्नलिखित विधियां हैं- प्रयोगात्मक विधि, सहसम्बन्धात्मक विधि, केस-अध्ययन विधि, अनुदैर्ध्य विधि तथा अनुप्रस्थ काट विधि।
5. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में सम्पन्न होती है तथा प्रत्येक अवस्था की अपने कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है।
6. व्यक्तित्व विकास की निम्नलिखित अवस्थाएं हैं- पूर्व प्रसूत अवस्था, शौशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, पूर्व किशोरावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली-

आत्म-संप्रत्यय: व्यक्ति के स्वयं से सम्बद्ध एक ऐसा तथ्य जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा क्या है? यह एक दर्पण-बिम्ब होता है जो व्यक्ति द्वारा सम्पन्न भूमिकाओं, दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है।

हार्मोन्स: शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला स्राव जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखता है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ऑलपोर्ट 2. अनुदैर्ध्य विधि

7.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
7. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.

6 Eysenck – The scientific study of personality

7.10 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न-

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विभिन्न विधियों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया किन-किन अवस्थाओं में सम्पन्न होती हैं? व्याख्या करें।

इकाई 8. व्यक्तित्व का मापन: वस्तुनिष्ट, आत्मनिष्ठ एवं प्रक्षेपी परीक्षण (Measurement of Personality: Objective, Subjective & projective tests)

इकाई संरचना

8.1. प्रस्तावना

8.2. उद्देश्य

8.3. व्यक्तित्व मापन

8.4. व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

8.5. अभ्यास प्रश्न

8.6. सारांश

8.7. शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना:

व्यक्तित्व मूल्यांकन उस व्यक्ति के व्यक्तित्व संगठन का अनुमान लगाने से संबंधित होता है, जो व्यक्ति के विशेष व्यवहार पैटर्न और स्थिर विशेषताओं का है। व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धांतों होने के कारण, और सवाल यह है कि लोग अपने व्यक्तित्व के प्रकार का पता कैसे लगाते हैं? व्यक्तित्व का मूल्यांकन या मापन या आकलन करने के तरीके भिन्न होते हैं व्यक्तित्व के मापन के लिए व्यक्तित्व मनोविज्ञान में अनेक विधियॉ प्रचलित हैं। प्रस्तुत इकाई में इन विधियों के बारे में आप जान सकेंगे।

8.2. उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

1. व्यक्तित्व मापन को भली-भाति समझ सकेंगे।

2. व्यक्तित्व मापन के विभिन्न तकनीकों से अवगत हो सकेंगे।

8.3. व्यक्तित्व मापन

व्यक्तित्व के मापन से तात्पर्य व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में पता लगाकर यह निश्चित करना होता है कि कहाँ तक वे संगठित है। किसी भी व्यक्ति के भिन्न-भिन्न शीलगुण जब आपस में संगठित होते है, तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्य होता है। परन्तु यदि उसके शीलगुण विसंगठित होते है तो व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। मापन द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन-कौन सी विशेषतायें होती है|

8.4. व्यक्तित्व मापन की विधियाँ:

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन की बहुत सी विधियों या परीक्षणों का प्रतिपादन किया है। ऐसी प्रमुख विधियों या परीक्षणों को निम्नांकित तीन भागों में बाटकर अध्ययन किया गया है-

1. आत्म रिर्पोट आविष्कारिका (Self-Report Inventory)
2. प्रक्षेपीय विधियाँ (Projective Techniques)
3. व्यवहारिक विधियाँ (Behavioral Techniques)

1. **आत्म रिपोर्ट अविष्कारिका** (Self-Report Inventory)- इस विधि में व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण शीलगुणों से संबंधित कुछ प्रश्न बने होते है जिनका उत्तर प्रायः 'हा-नहीं, सही-गलत' आदि में दिया रहता है। व्यक्ति इन प्रश्नों को एक-एक करके पढ़ता है और उनका उत्तर दिये गये विकल्पों में से चुनकर देता है। एक ही प्रश्न का सही एवं उचित उत्तर अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकता है। इस तरह की आवितकारिका को व्यक्ति स्वयं पढ़ता है एवं उसका उत्तर देता है। इस कारण इसे व्यक्तित्व अविष्कारिका अथवा मनोमिति विधियाँ या मनोमिति परीक्षण कहते हैं।

सर्वप्रथम फ्रान्सिस गाल्टन ने व्यक्तित्व मापने के लिए सन् 1880 में एक सूची तैयार की थी। इसके बाद वुडवर्थ (R. S. Woodworth, 1918) ने एक व्यक्तित्व अनुसूची बनाई जिसका नाम था वुडवर्थ पर्सनल डेटा इन्वेन्ट्री वुडवर्थ की इस व्यक्तित्व सूची में 116 प्रश्न जिनका उत्तर दो विकल्पों ' हाँ ' अथवा ' नहीं ' में देना था। इसके बाद अनेक व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण और मानकीकरण किया है। इनमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार से हैं - थर्स्टन और थर्स्टन (1930), रोजर्स (1931), बर्नीस्टर

(1933) आदि ने भी व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण किया है। हाथवे और मैककिन्ले (1940) ने मिनिसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची की रचना की है। कुछ प्रमुख व्यक्तित्व सूचियों का विवरण निम्न प्रकार से है -

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची (Minesota Multiphasic Personality Inventory, MMPI) का निर्माण मूलतः हाथावें एवं मैककिनले (1940) में किया गया जिसमें 550 एकांश थे और प्रत्येक एकांश के तीन उत्तर थे – (True), (False) तथा (Can't say)| इस मौलिक प्रा६प के दो प्रतिरूप हैं - वैयक्तिक कार्ड उद्देश्य व्यक्तित्व के रोगात्मक शीलगुणों को मापना है। इस सूची में दस नैदानिक मापनियाँ और चार वैधता मापनियाँ है। नैदानिक मापनी द्वारा 10 रोगात्मक शीलगुणों का मापन होता है, तथा वैधता मापनी पर के प्राप्तांकों द्वारा व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों की विश्वसनियता तथा वैधता का पता चलता है।

MMPI के कई संशोधित प्रारूप तैयार किए गए है जिसमें सबसे नवीनतम संशोधन को MMPI- 2 के नाम से जाना जाता है। यह संशोधन वुचर, डाहस्ट्रोम, ग्राहम, टेलेगन तथा केमर (1989) द्वारा किया गया। MMPI- 2 में 10 नैदानिक मापनी तथा तीन मुख्य वैधता मापनी है। इन तीन वैधता मापनी के अतिरिक्त एक और वैधता मापनी है जिसे ‘?”(Can't Say) से संकेतिक किया जाता है तथा इसमें उन एकांशो को रखा जाता है जिसका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है। इन वैधता मापीनयों का सम्बन्ध अविष्कारिका के वैधता से कुछ भी नहीं है बल्कि इनके द्वारा विभिन्न तरह के वैसे मनोवृत्तियों का पता चलता है जिससे परीक्षण पर की अनुक्रियाएँ विकृत हो जाती हैं। इन सभी मापनी में कुल मिलाकर 641 एकांश हैं परन्तु 74 एकांश एक मापनी से दूसरे में सामान्य होने से MMPI- 2 के कुल 567 एकांश बच जाते हैं। इन सभी 10 नैदानिक मापनी एवं वैधता मापनी का वर्णन इस प्रकार से हैं -

नैदानिक मापनी (Clinical Scale)-

1. **रोगभ्रम (Hypochondriasis or HS)**- इस मापनी के कुल 32 एकांश है और इसके द्वारा उस प्रवृत्ति की माप होती है जिसमें व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्य के बारे में जरूरत से ज्यादा चिंता दिखलाता है।

2. **विषाद (Depression)**- इस मापनी में 57 प्रश्न या पद है जो उदासी क्षमता में हास, ऊर्जा में कमी, अभिरुचि में कमी आदि से सम्बन्धित है।

3. **रूपान्तर हिस्ट्रीया** (**Conversion Hysteria or Hy**)- इस मापनी के 60 एकांश है। इसके द्वारा ऐसे स्नायुविकृत प्रवृत्ति का मापन होता है जिसमें रोगी मानसिक संघर्ष एवं चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है।

8. **मनोविकृत विचलन** (**Psychopathic Deviate or Pd**)- इस मापनी में 50 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यक्ति में सामाजिक एवं नैतिक मानकों को अवहेलना करने वाली प्रवृतियों तथा दडात्मक अनुभूतियों से भी कुछ न सीखने की प्रवृति का मापन होता है।

5. **पुरूषत्व नारीत्व** (**Masculinity – Feminity M-F**) - इस मापनी में 56 एकांश हैं तथा इसके द्वारा व्यक्ति के सीमांतीय यौन भूमिका (Extreme sex role) की प्रवृत्ति का माप होती है।

6. **स्थिर व्यामोह (Paranoia or Pa**) - इस मापनी में 40 एकांश है जिनके द्वारा व्यक्ति में असामान्य शक करने की प्रवृत्ति तथा दंडात्मक एवं उत्कृष्ठता से संबंध गलत विश्वास या भ्रान्ति का मापन होता है।

7. **मनोदौर्वल्यता** (**Psychethrnia or Pt**) - इस मापनी में कुल 48 एकांश हैं जिसके द्वारा व्यक्ति में मनोग्रस्ति (Obsession), बाध्यता (Compulsion), असामान्य डर आदि का मापन होता है।

8. **मनोविदलता** (**Schizophrenia or Sc**)- इस मापनी से 78 एकांश हैं इसके द्वारा व्यक्ति में असामान्य चिन्तन या व्यवहार करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

9. **अल्पोन्मान** (**Hypomania or Ma**) - इस मापनी में 46 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यक्ति के सांवेगिक उत्तेजन, अतिक्रिया तथा विचारों का विखराव का मापन होता है।

10. **सामाजिक अन्तर्मुखता** (**Social Introversion or SI**) - इस मापनी में 69 पद या प्रश्न है यह सभी प्रश्न सामाजिक अन्तर्मुखता से सम्बन्धित है।

वैधता मापनियॉं (Validity Scales)-

L (Lie) - इस मापनी में 15 प्रश्न हैं, जिनकी सहायता से झूठ बोलने से सम्बन्धित प्रश्न हैं ।

F (Frequency or Infrequency)- इस मापनी में 60 पद हैं । इन सभी पदों से प्रयोज्य की लापरवाही का मापन होता है इस मापन से यह मालूम हो जाता है कि एक व्यक्ति अपने रोगात्मक लक्षणों को कैसे बढ़ा कर व्यक्त करता है।

K (Correction)-इस मापनी में 30 प्रश्न हैं। इस मापनी व्यक्ति की अत्यधिक सुरक्षात्मक दृष्टिकोण का मापन होता है।

? (Can't Say) - इस प्रश्न में वह प्रश्न या पद सम्मिलित किये जाते हैं, जिनका प्रयोज्य उत्तर नहीं दे पता है।

इस तरह से यह स्पष्ट हुआ है कि MMPI.2 में मैलिक MMPI के सभी मापनियों को बरकरार रखते हुए उनके एकांशों को संशोधित किया गया है। MMPI.2 की फिर भी कुछ अपनी और विशेषताएं है जो इस प्रकार हैं -

1. MMPI.2 के एकांशो को समूहन करके 15 नये अन्तर्वस्तु मापनी (Content Scale) बनाए गए हैं जिसके द्वारा व्यक्तित्व के 15 ऐसे कारक (डर, क्रोध, टाईप ए व्यक्तिव इत्यादि) को मापना संभव हो पाया है जिसे पहले के 10 नैदानिक मापनियों द्वारा मापना संभव नही था।

2. MMPI.2 में दो और नये वैधता मापनियों को जोड़ा गया है जिसका उपयोग उपर्युक्त चार वैधता मापनी के साथ-साथ करना होता है। ये दो वैधता मापनी है - भ्रिन (Vrin) तथा ट्रिन (Trin) इन दोनों मापनियों द्वारा पराक्षण एकाशों के प्रति असंगत (Inconsistent) ढंग से उत्तर देने की प्रवृति का मापन होता है।

MMPI की उपयोगिता बहुत अधिक है।

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची के लाभ –

(1) MMPI से यह मालूम पड़ जाता है कि प्रयोज्य उत्तर देने के कितनी लापरवाही बरत रहा है अथवा तथ्यों को कितना बढ़ा कर बोल रहा है।

(2) इस मापन में मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठता की विशेषता है।

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची के प्रमुख दोष-

(1) MMPI की सहायता से व्यक्तित्व विकृति और मनस्थिति विकृति के कुछ प्रकारों का मापन नहीं होता है।

(2) MMPI के सभी पद शब्दिक है इसलिये इसके द्वारा कम पढ़े-लिखे लोगों और बुद्धि की दृष्टि से दुर्बल लोगों का मापन सही ढंग से नहीं किया जा सकता है।

सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (**sixteen Personality Factor Inventory**)- इस व्यक्तित्व सूची का निर्माण और मानकीकरण कैटेल एवं इबर (R. B. Cattell & H. W. Eber 1950, 1956, 1970) ने किया, इस प्रश्नावली के । A, B, C, D, E तथा F प्रारूप उपलब्ध है। प्रारूप A और Bकॉलेज पढने वाले छात्रों के लिए है, तथा E और Fकम पढे लिखे व्यस्कों के लिए है जिनके द्वारा 17 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों के 16 शीलगुणों को मापा जाता है। इस प्रश्नावली में सम्मिलित किये गये सभी 16 शीलगुण द्धिध्रवीय है। 16 शीलगुणों को मापने के लिये बिने 16 यापनी पर उच्च प्राप्तांक तथा कम प्राप्त के कुछ खास अर्थ होते है, जो इस प्रकार से है-

उच्च प्राप्तांक	अक्षर चिन्ह	निम्न प्राप्तांक
Outgoing	A	Reserved
More Intelligent	B	Less Intelligent
Stable	C	Emotional
Assertive	E	Humble
Happy- go Lucky	F	Sober
Conspicuous	G	Expedient
Bold	H	Shy
Thunder minded	I	Though mined
Suspicious	L	Trusting
Imaginative	M	Practical
Shrewd	N	Forthright
Apprehensive	O	Placid
Experimenting	Q_1	Traditional
Self- Sufficient	Q_2	Group - Tied
Controlled	Q_3	Casual
Tense	Q_4	Relaxed

वर्तमान में 16 PF के सिर्फ (Q) कारक के पूरक के ६प में इसके सात नये कारकों को जोड़ा गया है जिनके संकेत D, J, K, P तथा Q_5, Q_6 तथा Q_7 है। जिसमें उत्तेजनशीलता के लिए D, उत्साहपूर्णता बनाम वैयक्तित्वता के लिए J अशिष्टता बनाम परिपक्व समाजीकरण के लिए K प्रसन्नचित आकस्मिकता के लिए P सामूहिक समर्पक के लिए Q_5, सामाजिक कलगी के लिए Q_6 तथा स्पष्ट आत्म अभिव्यक्ति के लिए Q_7 का उपयोग किया गया। मैलिक 16 कारकों के आधार पर कैटेल द्वितीय क्रम के कारक तथा 23 शीलगुणों के विस्तरित सेट से 12 द्वितीय के क्रम के कारकों की पहचान किया है। ड्रेगर (1977) के अनुसार 16 PF के कुछ ऐसे प्रारूप भी तैयार किये गये है जिसके द्वारा प्राक सकूली बच्चों से लेकर किशोरों तक के व्यक्तित्व संरचनाओं का भी मापन सम्भव है।

कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण (**California Psychological Inventory, CPI**) - इस परीक्षण का निर्माण और मानकीकरण गफ (Gough 1957 and 1987) द्वारा किया गया। इस परीक्षण के निर्माण कर्त्ता चूँकि कैलीफोर्निया विश्वविदयालय से सम्बद्ध थे अतः यह कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण के नाम से जाना जाता है। यह परीक्षण 5 प्रकार के लोगों के लिए है- प्राइमरी के बच्चों के लिए, एलीमेन्ट्री के बच्चों के लिए, सैकेण्ड्री के बालकों के लिए, इण्टरमीडिट के किशोरों के लिए एवं व्यस्को के लिए प्रत्येक पॉचों स्तरों के लिए अलग-अलग प्रारूप है।

इस परीक्षण की सहायता से आत्म समायोजन से सम्बन्धित (1) आत्म निर्भरता (2) व्यक्तिगत कार्य (3) व्यक्तित्व स्वतंत्र ता (4) सम्बन्ध रखने की भावना (5) हटने की प्रवृत्ति की स्वतंत्रता (6) नर्वसनेस से स्वतंत्रता एवं सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित (1) सामाजिक मानक (2) सामाजिक कौशल (3) समाज विरोधी प्रवृत्तियों से स्वतंत्रता (4) पारिवारिक (5) विदयालय सम्बन्धी एवं (6) सम्प्रदायिक सम्बन्ध से सम्बन्धित प्रश्न है।

इस व्यक्तित्व परीक्षण के पदों का उत्तर देने के लिए' हॉ' और' नहीं' दो विकल्प है। इस परीक्षण की विश्वसनीयता और वैधता उच्च है और इसके मानक भी उपलब्ध है। इस परीक्षण से व्यक्तित्व मापन के बाद प्राप्त प्राप्तांक से यक्तित्व आंकलन की सरलता के लिए पार्श्वचित्र बनाया जाता है। जिससे आसानी से यह मालूम हो जाता है कि किस क्षेत्र में व्यक्ति मानकों से विचलित है अर्थात असमायोजित है ताकि उसके उपचार की व्यवस्था की जा सके।

माडसेल व्यक्तित्व अनुसूची. (**Maudsley Personality Inventory- MPI**) - इस अनुसूची की रचना आइजेन्क (H. J. Eysenk 1940) ने की है। इस मापनी में मनोस्नायु दौर्बल्य स्थिरता एवं अर्न्तमुखता बहिर्मुखता एवं अर्न्तमुखता बहिर्मुखता दो मापनियाँ है। प्रत्येक मापनी में 24 पद है अर्थात पूरी मापनी में 48 पद है। इस मापनी के मनोस्नायु दौर्बस्य स्थिरता विमा के मापन से यह ज्ञात होता है कि

एक व्यक्ति में मनोस्नायु दुर्बलता है या स्थिरता है। सभी प्रकार से दूसरी विमा अन्तर्मुखता बहिर्मुखता के मापन से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तर्मुखता का गुण है या बहिर्मुखता का गुण है।

इस मापनी का एक छोटा प्रारुप भी है जिसमें प्रत्येक विमा में 12-12 पद है अर्थात कुल 24 पद है। छोटी मापनी से व्यक्तित्व का मापन शीघ्र हो जाता है किन्तु गहन मापन के लिए 48 प्रश्नों वाली मापनी ही अधिक उपयुक्त है। इस पूरी मापनी को भरने में लगभग 20 मिनट का समय लगता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए तीन विकल्प 'हा', '?' (ज्ञात नहीं) तथा 'नहीं' है।

इस मापनी की अर्द्ध-विच्छेद विधि से प्राप्त विश्वसनीयता उच्च है एवं परीक्षण निर्मित वैधता भी उच्च है। इस सूची का उपयोग 15 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों पर किया जाता है। भारत में जलोटा और कपूर ने इस सूची हिन्दी और पंजाबी भाषा में अनुकूलन किया है।

बेल समायोजन अविष्कारिका (Bell Adjustment Inventory) - इस आविष्कारिका का निर्माण बेल (Bell) ने 1934 में किया इस आविष्कारिका का उद्देश्य व्यक्ति में समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाना होता है। इस आविष्कारिका के दो फार्म है- विद्य्नार्थी फार्म तथा व्यवसायिक फार्म विद्यार्थी फार्म में कुल 140 एकांश है जो चार भिन्न-भिन्न क्षेत्र जैसे- गृह, स्वास्थ , सामाजिक तथा सांवेगिक अवस्था से सम्बन्धित समायोजन समस्याओं का पता लगाता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'हा', 'नहीं' एवं '?' में से किसी एक चिन्ह खीचकर दिया जाता है। व्यावसायिक फार्म में इन 140 एकांशों में 20 एकांश और जोड़ दिया गया है कि इस फार्म के कुल पॉच क्षेत्र हो जाते है जो व्यस्कों के समायोजन की ओर इंगित करते है। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 0.75 से 0.89 तक है, वैधता गुणांक .58 से .89 तक पाया गया।

1. **आत्म रिर्पोट अविष्कारिका के लाभ** - आत्म रिपोर्ट आविष्कारिका में प्रमुख लाभ निम्न प्रकार से है-
2. व्यक्तित्व सूचियों की सहायता से व्यक्तित्व शीलगुणों का मापन बहुत सरलता से किया जा सकता है।
3. व्यक्तित्व आविष्कारिका का प्रयोग नैदानिक परिस्थिति तथा सामान्य परिस्थिति दोनों में ही होता है।
4. व्यक्तित्व मापन की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन सरलता से किया जा सकता है।
5. आत्मरिपोर्ट आविष्कारिका के कुछ प्रमुख दोष निम्न प्रकार से है-

6. फ्रीमैन (1962) का विचार है कि व्यक्तित्व सूचियों द्वारा व्यक्तित्व की अलग-अलग विशेषताओं का मापन होता है। अतः व्यक्तित्व का मापन सम्पूर्ण में नहीं होता है।
7. व्यक्तित्व सूचियों में व्यक्तित्व का मापन एकांशों या पदो या प्रश्नों की सहायता से किया जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय यह देखा गया है कि प्रयोज्य प्रश्नों का उत्तर कई बार सही न देकर बनावटी या नकली उत्तर देते है।
8. इन आलोचनाओं के बावजूद भी व्यक्तित्व आविष्कारिका का प्रयोग व्यक्तित्व के मापन तथा उससे सम्बन्धित शोधों में काफी किया जा रहा है।

2. प्रक्षेपीय विधियॉ (Projective Method)-

प्रक्षेपीय विधि द्वारा व्यक्ति के माप परोक्ष रूप से होती है। इस परीक्षण में व्यक्ति के कुछ अस्पष्ट असंगठित उद्दीपक या परिस्थिति दिया जाता है। ऐसे उद्दीपकों एवं परिस्थितियों के प्रति कुछ अनुक्रिया करता है। इन अनुक्रियाओं के सहारे व्यक्ति अचेतन रूप् से अपनी इच्छाओं, त्रुटियों एवं मानसिक संघर्षों को प्रक्षेपित करता है।

प्रक्षेपण प्रविधियों में सामग्री असंरचित (**Unstructured**)या अर्द्धसंरचित (**Semi-Structured**) होती है। इस प्रकार की परीक्षण सामग्री कुछ चित्र, स्याही धब्बे, अधूरे वाक्य आदि के प्रति प्रयोज्य को अपना प्रत्युत्तर देना होता है। प्रत्युत्तर स्वरूप् प्रयोज्य अपनी इच्छाएँ , भवनाएँ , संवेग, आवश्यकताएँ आदि को प्रक्षेपित करता है।

प्रक्षेपण प्रविधियों की विशेषताएँ-

1. इन विधियों में प्रयुक्त परीक्षण सामग्री पूर्णतः असंरचित या अर्द्धसंरचित होती है। यह सामग्री व्यक्ति की चेतन और अचेतन इच्छाओं को अभिव्यक्त कराने में पूर्ण रूप से सक्षम होती है।

2. प्रक्षेपण प्रविधियों की सामग्री अनेक अर्थ वाली होती है, इसलिए प्रयोज्य यह समझ नहीं पाता है कि उसका कौन-सा प्रत्युत्तर सही है और कौन-सा प्रत्युत्तर गलत है।

3. इन प्रविधियों का प्रशासन प्रयोज्य पर व्यक्तिगत रूप से होता है फिर भी परीक्षणकर्त्ता का प्रभाव प्रयोज्य पर नहीं के बराबर पड़ता है।

4. इन अध्ययन विधियों के द्वारा व्यक्ति के संवेगों, अभिप्ररणाओं, अनुभवों, विचारों और अभिवृत्तियों का अध्ययन विश्वसनीय ढंग से किया जा सकता है।

5. इन विधियों द्वारा प्राप्त परिणाम और निष्कर्ष विश्वसनीय और वैध होते है।

प्रक्षेपण प्रविधियों की सीमाएँ और दोष -

1. इन विधियों की रचना तथा मानकीकरण एक कठिन कार्य है।

2. इन विधियों के प्रशासन, गणना तथा विवेचना के लिए परीक्षणकर्ता का प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

3. परीक्षार्थी और प्रशिक्षणकर्ता में जब तक रेपापोर्ट फॉरमेशन (**Rapport formation**) ठीक प्रकार से स्थापित नहीं होता है तब तक विश्वसनीय ऑंकड़ों के प्राप्त होने की सम्भावना कम रहती है।

4 . इन विधियों द्वारा प्राप्त ऑंकड़ों की विश्वसनीयता एवं वैधता बहुत अधिक नहीं होती है।

6. इन विधियों का उपयोग अन्य अनुसंधानों की अपेक्षा चिकित्सा के क्षेत्र में अधिक होता है।

7. बहुधा इनका उपयोग सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा असामान्य और असमायोजित व्यक्तियों पर किया जाता है।

प्रक्षेपीय परीक्षण प्रकार - लिण्डजे (Lindzey 1961) द्वारा प्रक्षेपीय परीक्षण को निम्नाकिंत पॉच भाग में बॉटा गया है-

1. साहचर्य परीक्षण (Association Test)

2. संरचना परीक्षण (Constrution Test)

3. पूत्ति परीक्षण (Complition Test)

8. चयन या क्रम परीक्षण (Choice or Orderning Test)

5. अभिव्यंजक परीक्षण (Experssive Test)

1. साहचर्य परीक्षण- रोर्शाक परीक्षण (Rorschach Test) तथा शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test) श्रेणी के दो प्रमुख प्रकार है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

8.5.1.1. शब्द साहचर्य परीक्षण -इस परीक्षण में कुछ पूर्व निश्चित उद्दीपक शब्दों को एक-एक करके व्यक्ति के सामने उपस्थित किया जाता है। और व्यक्ति को शब्द सुनने के बाद उसके मन में जो सबसे पहला शब्द आता है, उसे बतलाना होता है। सबसे पुरानी प्रक्षेपण प्रविधि शब्द साहचर्य विधि है।

सर्वप्रथम गाल्टन 1879 ने शब्द साहचर्य सूची का उपयोग किया, उसने 75 शब्दों की एक सूची का निर्माण एवं प्रकाशन करवाया। विलियम वुण्ट (Wilhelm Wundt 1879) ने भी शब्द साहचर्य विधि का उपयोग किया, वुण्ट ने गाल्टन की शब्द साहचर्य सूची के असम्बद्ध शब्दों को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया गया। इस सूची के उद्दीपक शब्दों को प्रयोज्य के सामने एक-एक करके प्रस्तत किया गया। प्रयोज्य किसी भी उद्दीपकशब्द को सूनते ही अपना प्रति उत्तर देता था। फ्रायड ने स्वप्नों की व्याख्या के लिए और मनोविश्लेषण के लिए शब्द साहचर्य विधि का उपयोग किया।

व्यक्ति मापन के रूप में इस परीक्षण का उपयोग फ्रायड तथा शिष्य विशेषकर युंग द्वारा प्रारंभ किया गया। युंग ने 1904 में 100 शब्दों की एक मानक सूची तैयार की और उपयुक्त विधि द्वारा व्यक्ति की अनुक्रियाओं को प्राप्त किया। उसके बाद उसका विश्लेषण करके विशेषकर प्रत्येक अनुक्रिया शब्द का सांकेतिक अर्थ (Symbolic Meaning) ज्ञात करके तथा प्रतिक्रिया समय (Reaction Time) के आधार पर व्यक्ति के सांवेगिक संघर्षों का पता युंग ने सफलतापूर्वक लगाया। इसकी सफलता देखकर अमेरिका में केन्ट तथा रोजेन्फ ने 1910 में तथा रैपापोर्ट ने 1946 में अन्य शब्द साहचर्य परीक्षण का निमार्ण किया जिसका प्रयोग व्यक्तित्व मापन में विशेषकर साधारण मानसिक रोग (mild mental disease) से ग्रसित व्यक्तियों के व्यक्तित्व के मापन में सुचारु रूप से किया गया।

मरे एवं मार्गन (Murray , Morgan 1935) ने शब्द साहचर्य परीक्षण का उपयोग व्यक्तित्व अध्ययनों में किया है। इसी प्रकार से रसेल जेनकिन्स (Rusel and Jenakins 1954) ने निदान के क्षेत्र में शब्द साहचर्य परीक्षणों का सफल उपयोग किया है।

रोशार्क परीक्षण (Rorschach Test)-

रोशोर्क परीक्षण का प्रतिपादन स्विटजरलैंड के मनोरोगविज्ञानी हरमान रोशार्क (Herman Rorschach) ने 1921 में किया। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते है जिस पर स्याही के धब्बे के समान चित्र बने होते (चित्र-1) है। इसमें 5 कार्ड पर स्याही के धब्बे जैसी आकृति पूर्णतः काला-उजला (black and white) में छपे होते है और 5 कार्ड पर स्याही के धब्बे जैसी आकृति रंगों में होती है। प्रत्येक कार्ड एक-एक करके उस व्यक्ति का दे दिया जाता है जिसका व्यक्तित्व मापना होता है। कार्ड को वह जैसे चाहे घुमा फिरा सकता है और ऐसा करके उसे बताना होता है कि उसे उस कार्ड में क्या दिखलाई दे रहा है या धब्बे का कोई अंश या पूरा भाग उसे किसी चीज के समान दिखलाई पड़ रहा है। व्यक्ति द्वारा दी गयी अनुक्रियाओं को लिख लिया जाता है और बाद में उसका विश्लेषण कुछ खास-खास अक्षर संकेतों (letter symbol) के सहारे निन्नांकित चार भागों में बॉट कर किया जाता है-

चित्र-1

(a) **स्थल-निरूपण** (**Location**)- इन श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जाता है कि व्यक्ति की अनुक्रिया का संबंध स्याही के पूरे धब्बे से है या उसके कुछ अंश से। अगर अनुक्रिया का आधार पूरा धब्बा होता है, तो उसे एक खास अक्षर संकेत, यानी W से अंकित करते है। यदि अनुक्रिया का आधार धब्बे का बड़ा एवं सामान्य अंश (common detail) होता है तो उसके लिये D तथा असामान्य एंव छोटे अंश के आधार पर अनुक्रिया होने से उसके लिए Dd का प्रयोग किया जाता है। सिर्फ उजले स्थानों या जगहों के आधार पर अनुक्रिया देने से उसके लिए S का प्रयोग किया जाता है।

(b) **निर्धारक (Determinants)**-. इस श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जाता है कि धब्बे के किस गुण ;मिंजनतमद्ध के कारण व्यक्ति ने अमुक अनुक्रिया की है। इस अनुक्रिया के निर्धारण श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जायेगा कि व्यक्ति ने धब्बे के किस गुण अर्थात आकार, रंग, गति आदि में से किसके आधार पर ऐसी अनुक्रिया की है। इस श्रेणी के लिए लगभग 24 अक्षर संकेतों का प्रतिपादन किया गया जिसमें कुछ इस प्रकार है- आकार (form) के लिए f . रंग (colour)के लिए c, मानव गति अनुक्रिया (human movement response) के लिए FM, पशु गति अनुक्रिया (animal movement response)के लिए m आदि।

(c) विषय-वस्तु (Content). इस श्रेणी में यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा दी गयी अनुक्रिया की विषय-वस्तु क्या है। विषय-वस्तु मनुष्य होने पर उसके लिए भ् तथा पशु होने पर उसके लिए । के संकेत का प्रयोग किया जाता है। मानव के किसी अंग के विवरण (human detail) होन पर hd तथा पशु के किसी अंग के विवरण (animal detail)के लिए d,आग के लिए Fi तथा घरेलू वस्तुओं के लिए Hh का प्रयोग किया जाता है।

(d) मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन (Original response and Organization). मौलिक अनुक्रिया से तात्पर्य उस अनुक्रिया से होता है जो अनेकों व्यक्तियों द्वारा किसी कार्ड के प्रति अक्सर दिये जाते है। इसलिए इसे लोकप्रिय अनुक्रिया भी कहा जाता है जिसका संकेत च् है। जैसे, प्रथम कार्ड में पूरे धब्बे को चमगादड़ या 'तितली' के रूप में देखना एक लोकप्रिय अनुक्रिया का उदाहरण है। इसी तरह से प्रत्येक कार्ड के लिए कुछ अनुक्रियाओं को लोकप्रिय अनुक्रिया की श्रेणी में रखा गया है। कभी-कभी वह कुछ अनुक्रियाओं को एक साथ संगठित कर लेता है जिसका संकेत Z है।

रोशार्क परीक्षण पर दिये गये अनुक्रियाओं को उपर्युक्त चार भागों में विश्लेषण करने के बाद उसकी व्याख्या की जाती है। उदाहणार्थ, यदि किसी व्यक्ति द्वारा अधिक संख्या में W की अनुक्रिया की गयी है, तो इससे तीव्र बुद्धि तथा अमूर्त चिन्तन (abstract reasoning) की क्षमता का बोध होता है। D अनुक्रियाओं से व्यक्ति में किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से देखने तथा समझने की क्षमता का बोध होता है। Dd अनुक्रिया जो एक सामानय व्यस्क द्धारा दी गयी कुल अनुक्रियाओं का 5: से अधिक नहीं होता है, द्वारा व्यक्ति के चिन्तन में अस्पष्टता को दिखलाता है। परन्तु यदि ऐसी अनुक्रिया 5: से अधिक हो जाती है, तो इससे व्यक्ति में मनोविदालिता (Schizophrenia) जो एक प्रकार का मानसिक रोग है, का संकेत मिलता है। S अनुक्रिया की अधिकता से व्यक्ति में नकारात्मक प्रवृति (negativistic tendency) तथा आत्म-हठधर्मी (self – assertive) होने का संकेत मिलता है। Fअनुक्रिया की अधिकता से चिन्तन करते समय एकाग्रता (concentration) की क्षमता का बोध होता है। रंग-संबंधी अनुक्रिया की अधिकता से व्यक्ति की संवेगशीलता या व्यक्तित्व के भावात्मक शीलगुणों का पता चलता है। रंग-संबंधी अनुक्रिया का बहुत ही कम होना या न होने पर व्यक्ति में मनोविदलता के लक्षण, जैसे- सामान्य वातावरण से अपने आपको अलग करके रखना, भ्रम तथा विभ्रम अिधक होना आदि गुण पाये जाते है। गति अनुक्रियाओं (F, FM, m) की अधिकता से व्यक्ति में काल्पनिक क्रियाओं तथा उसकी कल्पना शक्ति का बोध होता है। A तथा Ad अनुक्रियाओं को मिलाकर A प्रतिशत तथा H और Hd अनुक्रियाओं को मिलाकर H प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। । प्रतिशत अधिक होने से बौद्धिक संकीर्णता (Intellectual constriction) तथा सांवेगिक असंतुलन (Emotional disturbance) ज्ञात होता है तथा H प्रतिशत अधिक होने से उपयुक्त संज्ञानात्मक विकास होने का संकेत मिलता है। P अनुक्रिया की अधिकता से रूढ़िगत चिन्तन (conventional thinking) तथा इसकी कमी से व्यक्ति में सामाजिक अनुरूपता (social conformity) के शीलगुण की कमी होने का अंदाज मिलता है। एक्सनर (Exner 1974) के अनुसार P अनुक्रियाओं से व्यक्ति में सर्जानात्मक का भी बोध होता है। अनुक्रियाओं से व्यक्ति में उच्च बुद्धिए सर्जनात्मक तथा निपूणता आदि का बोध होता है।

संरचना परीक्षण (**Construction test**)-. इस श्रेणी में वैसे प्रक्षेपीय परीक्षणों को रखा जाता है जिसमें परीक्षण उद्दीपकों के आधार पर व्यक्ति को एक कहानी या अन्य समान चीजों की संरचना करनी होती है।

विषय आत्मबोध परीक्षण (**Thematic Appercepcotion Test or TAT**). इस श्रेणी का सबसे प्रमुख परीक्षण विषय आत्मबोध परीक्षण है। इस परीक्षण का निर्माण मरे ; (Murray 1935) ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय में किया। बाद में यानी, 1938 में मार्गन Morgan) के साथ मिलकर इन्होंने इस परीक्षण का संशोधन किया। इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड होते है जिसमें से 30 कार्ड पर चित्र बने होते है तथा 1 कार्ड सादा होता है। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व को मापना होता है, उसके यौन (sex) एवं उम्र के अनुसार इस 31 कार्ड में से 20 कार्ड का चयन कर लिया जाता है। इस 20 कार्ड में 19 कार्ड पर चित्र अंकित होते है और एक कार्ड सादा होता है। किसी एक व्यक्ति पर 20 कार्ड से अधिक नहीं दिया जाता है। प्रत्येक कार्ड के चित्र के आधार पर व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व मापन किया जाता है, एक कहानी तैयार करता है जिसमें चित्र से संबंधित घटना के भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का वर्णन होता है। इस परीक्षण का क्रियान्वयन दो सत्रों (session)में होता है- पहले सत्र मे 10 कार्ड फिर दूसरे सत्र में अन्तिम 10 कार्ड व्यक्ति को देकर उसके आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है। सबसे अन्त में सादा कार्ड दिया जाता है। जिसपर अपने मन से किसी चित्र को मानकर उसके आधार पर कहानी लिखने के लिए कहा जाता है। मर्रे ने उपर्युक्त दो सत्रों के बीच कम-से- कम 24 घंटों का अन्तर देने की सिफारिश की है। सभी कार्ड के आधार पर कहानी-लेखन का कार्य समाप्त होने पर एक साक्षात्कार किया जाता है जिसका उद्देश्य यह जानना होता है कि कहानी लिखने में व्यक्ति की कल्पना-शक्ति का स्त्रोत मात्र चित्र या चित्र से बाहर की कोई घटना भी रही है।

कहानी-लेखन का कार्य समाप्त होने पर उसका विश्लेषण कर व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं (dominant needs) का पता लगाया जाता है मर्रे के अनुसार इस परीक्षण का विश्लेषण निम्नांकित प्रसंगों में किया जाता है।

1. नायक (**Hero**)- प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका का पता लगाया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति इस नायक या नायिका के साथ आत्मीकरण (identification) स्थापित कर अपने व्यक्तित्व के शीलगुणों विशेषकर अपनी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को दिखलाता है।

2. आवश्यकता (**Needs**) **-** प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका की मुख्य आवश्यकताएँ क्या-क्या है, इसका पता लगाया जाता है। मर्रे के अनुसार TAT द्वारा 28 मानव आवश्यकताओं का मापन होता

है। कुछ ऐसी आवश्यकताएँ है- उपलब्धि आवश्यकता (need for achievement), संबंध आवश्यकता (need for affiliation), प्रभुत्व आवश्यता (need for domains) आदि।

3. प्रेस (Press) - प्रेस से तात्पर्य कहानी के उस वातावरण संबंधी बलों से होता है जिनसे कहानी के नायक की आवश्यकता या तो पूरी होती है या पूरी होने से वंचित रह जाती है। मर्रे के अनुसार इस तरह के वातावरण संबंधी बल (environment force) 30 से अधिक है। आक्रामकता या आक्रमण तथा शारीरिक खतरा दो महत्वपूर्ण प्रेस है जिनका वर्णन अधिकांश कहानियों में मिलता है।

8. थीमा Thema)-. प्रत्येक कहानी में थीमा का निर्धारण किया जाता है। थीमा से तात्पर्य नायक की आवश्यकता तथा प्रेस अर्थात वातावरण संबंधी बल में हुई अन्तः क्रिया (interaction) से उन्पन्न घटना से होता है। थीमा द्वारा व्यक्तित्व में निरन्तरता (continuity) का ज्ञान होता है।

5. परिणाम (Outcome)-. परिणाम से तात्पर्य इस बात से होता है कि कहानी को किस तरह से समाप्त किया गया है। कहानी का निष्कर्ष निश्चित है या अनिश्चित है। निश्चित एवं स्पष्ट निष्कर्ष होने से व्यक्ति में परिपक्ता (Maturity), वास्तविकता (reality) का ज्ञान होने का बोध होता है।

TAT का भारतीय अनुकूलन कलकत्ता के प्रो. उमा चौधरी ने किया है जिसका उपयोग भारतीय संदर्भ में अधिक किया जा रहा है।

इस श्रेणी में TAT के समान अन्य कुछ परीक्षणों का भी निर्माण किया गया है जिसका संक्षिप्त वर्णन यहॉं अपेक्षित है जो इस प्रकार है-

रोजेनविग तस्वीर-कुंठा अध्ययन (Rosenwig Picture Frustration Study)-.
बाल आत्मबोधन परीक्षण (Children's Apperception Test or CAT)-.
रोवर्टस आत्मबोधन परीक्षण: (Roberts Apperception Test for children or RATC

पूर्त्ति परीक्षण (Completion Test)- पूर्ति परीक्षणों या वाक्यपूर्ति परीक्षणों की सहायता से भी व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इन वाक्यपूर्ति परीक्षणों में चित्रों और शब्दों के रूप् में उद्दीपक नहीं होते है बल्कि उद्दीपक अपूर्ण वाक्यों के रूप् में होते है। परीक्षण के सभी अपूर्ण वाक्य व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते है। प्रयोज्य को इन अपूर्ण वाक्यों को पूरा करना होता है। इस परीक्षण विधि में यह माना जाता है कि जब एक प्रयोज्य अपूर्ण वाक्यों को पूर्ण करता है तो वह इस प्रकार वाक्यों को पूरा करने में अपनी इच्छाओं, भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्वों, मनोवृत्तियों और ग्रन्थियों आदि का प्रक्षेपण करता है । प्रयोज्य को अपूर्ण वाक्यों को देखकर अथवा सुनकर पूर्ण करना होता है। इन वाक्यपूर्ति परीक्षणों के द्वारा व्यक्ति

के अन्तर्द्वन्द्वों और साहचर्यत्मक विकारों (associative disorder)का अध्ययन किया जाता है| वाक्यपूर्ति परीक्षण के कुछ नमूने के पद या प्रश्न निम्न प्रकार से है-

1. मेरे पिता ने .....

2. असफलता से मुझे .....

3. पत्नी के साथ मुझे .....

8. सामाजिक कार्यक्रम मुझे .....

5. अच्छी वेशभूषा मुझे .....

वाक्यपूर्ति परीक्षणों में 30 अपूर्ण वाक्यों से लेकर 100 अपूर्ण वाक्यों तक आवश्यकतानुसार कितने भी अपूर्ण वाक्य हो सकते है। रोटर्स वाक्यपूर्ति परीक्षण में 40 अपूर्ण वाक्य थे। एल. एन. दुबे और अर्चना देबे 1987 द्वारा निर्मित वाक्य पूर्ति परीक्षण में 50 अपूर्ण वाक्य है। व्यक्तित्व का मापन करने के लिए परीक्षणकर्त्ता या अनुसन्धानकर्त्ता को आवश्यकतानुसार एक अलग वाक्यपूर्ति परीक्षण का निर्माण और मानवीकरण करना होता है। ऐसा करने से परीक्षणकर्त्ता को व्यक्तित्व मापन के लिए एक विश्वसनीय परीक्षण मिल जाता है और व्यक्तित्व के उन शीलगुणों का मापन हो जाता है जिनका वह मापन करना चाहता है। इन परीक्षण का उपयोग करते समय प्रयोज्य को सोच-विचार का अधिक समय नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से प्रयोज्यों की चेतन भावनाओं के साथ-साथ अचेतन भावनाओं की पूर्ति भी वाक्य पूर्ति में हो जाती है। इस प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग वैयक्तिक व सामूहिक दोनों स्तरों पर किया जाता है।

वाक्यपूर्ति परीक्षण के वाक्य 'मैं', 'मुझे' अथवा 'वह' 'उसे' से प्रारम्भ होते है। इस दिशा में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि 'मैं', 'मुझे' से प्रारम्भ होने वाले अपूर्ण वाक्य अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होते है क्योंकि इन अपूर्ण वाक्यों से आन्तरिक भावनाओं की संलग्ता का अधिक करता है। इस प्रकार के वाक्यपूर्ति परीक्षणों की एक मुख्य सीमा यह है कि इनका उपयोग शिक्षित वर्ग तक ही सीमित है। जब व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्राप्त निष्कर्ष सन्देहपूर्ण होते है।

चयन या क्रम परीक्षण (**Choice and Ordering Test**). इस श्रेणी के परीक्षण में व्यक्ति परीक्षण उद्दीपकों को एक विशेष क्रम में सुव्यवस्थित करता है या अपनी पसंद या आकर्षकता या अन्य कोई बिमा के आधार दिए गए परीक्षण उद्दीपकों में से कुछ को चुनना होता है। पूर्वकल्पना यहॉ यह होती है कि व्यक्ति द्वारा चुने गए उद्दीपकों या उनके एक खास व्यवस्थित क्रम से उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों

का अंदाज होता है। जोन्डी परीक्षण (Szondi Test)जिसका निर्माण जोन्डी (Szondi 1947) द्वारा किया गया था, इस श्रेणी का एक प्रमुख परीक्षण है। इस परीक्षण में व्यक्ति को कोई फोटोग्राफ के छह समूहों को एक-एक करके दिखलाया जाता है जिसमें से उसे दो ऐसे तस्वीर को चुनना होता है जिसे वह अधिक पंसद करता है तथा दो ऐसे तस्वीर भी चुनना होता है जिसे वह सबसे अधिक नापसंद करता है। ऐसे चयन से व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में अनुमान लगाया जाता है।

इस श्रेणी का दूसरा महत्वपूर्ण परीक्षण 'काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल ऐरेजमेन्ट (Kahn Test of Symbol Arrangement)है जिसका निर्माण काहन (Kahn 1955) द्वारा किया गया। इसमें व्यक्ति को प्लासटिक के बने 16 विभिन्न आकारी वस्तुओं जैसे, पशु, तारा, क्रास आदि को दिखलाया जाता है। और उन्हें विभिन्न श्रेणियों जैसे 'घृणा', 'प्यार', 'बुरा', 'अच्छा', 'जीवित', 'मृत' आदि छॉंटना होता है। इसके बाद व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु को देखकर मन में आए साहचर्यों को बिना हिचक के बताना होता है ताकि उसके सांकेतिक अर्थ को समझा जा सके। इसके बाद छाँटे गए वस्तुओं की व्याख्या प्रत्येक संकेत के अर्थ के संदर्भ में लगाया जाता है और उसके आधार पर व्यक्ति के अचेतन प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान लगा पाना संभव हो पाता है।

अभिव्यंजक परीक्षण (Expressive Test)- इस श्रेणी के प्रक्षेपीय परीक्षण में व्यक्ति को अपने आप को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। प्रायः यह अभिव्यक्ति उसे एक तस्वीर का आरेखण (drawing) करके करना होता है। किए गए आरेखण के विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व के शीलगुणों का अनुमान लगाया जाता है। इस श्रेणी के मुख्य दो परीक्षण है- ड्रा-ए-परसन परीक्षण (Draw- a- Person Test or DAP) तथा घर पेड़ व्यक्ति परीक्षण (House Tree Person Test or H-T-P)। DAP का निर्माण मैकोवर (Machovar 1949)द्वारा किया गया जिसमें व्यक्ति को एक व्यक्ति के चित्र का आरेखण करना होता है। कभी-कभी इसके बाद उसके विपरित लिंग के व्यक्ति, आत्मन, मॉं, परिवार के चित्र का भी आरेखण करने के लिए कहा जाता है। मैकोवर का मत है कि शरीर के प्रत्येक अंग के आरेखण में दिखाए गए अंतर्वेशन (inclusion), बहिष्करण (exclusion), आकार, संगठन, सममिति (symmetry) आदि से व्यक्ति की आत्म-प्रतिमा (self-image) मानसिक संघर्ष, प्रत्यक्षण, चिंतन आदि के बारे में एक स्पष्ट अंदाज लगाना संभव हो पाता है।

घर-पेड़-व्यक्ति परीक्षण(H-T-P Test) का निर्माण बक (Buck 1948) द्वारा किया गया। व्यक्ति को इससे एक पेड़ तथा एक व्यक्ति के चित्र का आरेखण करना होता है और फिर उसकी विवेचना एक साक्षात्कार में करनी होती है। इस विवेचन के आधार पर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है।

8.5. **अभ्यास प्रश्न-**

1. रोशार्क परीक्षण की ..... अनुक्रिया वर्ग से बुद्धि परावर्तित होती है।
2. एम.एम.पी.आई. का निर्माण ..... द्वारा किया गया था।
3. शब्द साहचर्य परीक्षण एक तरह का ..... है।
8. 16 पीएफ व्यक्तित्व प्रश्नावली में Bold-Shy का ..... संकेत है।
5. टीएटी का किसी भी एक व्यक्ति पर उसके उम्र तथा यौन के आधार पर अधिक ..... कार्ड का क्रियान्वयन किया जा सकता है।
6. बेल समायोजन आविष्कारिका में दो फार्म ..... तथा ..... है।

8.6. सारांश

1. व्यक्ति मापन के लिए तीन तरह की प्रविधियों व्यक्तित्व आविष्कारिका, प्रक्षेपी विधि तथा व्यवहारिक विधिवर्णन किया गया है।
2. व्यक्तित्व आविष्कारिका में व्यक्ति के खास-खास शीलगुणों को मापन के लिए शाब्दिक एकांश होते है जिन्हें व्यक्ति स्वयं पढ़ते है तथा उसका उत्तर दिए उत्तरों के सेट में से चुनकर करता है। एक ऐसा महत्वपूर्ण परीक्षण है। इसके अलावा भी कई व्यक्तित्व आविष्कारिकाओं का वर्णन किया गया है।
3. सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व अविष्कारिका का निर्माण 1943 में एस.आर. हाथवे जो मनोवैज्ञानिक थे तथा जे.सी. मैककिनली जो एक मेडिकल डॉक्टर थे द्वारा किया गया।
4. व्यक्तित्व परीक्षण को मापने के लिये दूसरा महत्वपूर्ण परीक्षण प्रक्षेपीय परीक्षण है । इसमें व्यक्ति के सामने असंरचित कार्य दिया जाता है जिसे देख कर व्यक्ति असीमित प्रकार की अनुक्रियाएँ कर सकता है । इसे व्यक्तित्व का छिपा हुआ एवं अचेतन पहलू को मापने के लिये महत्वपूर्ण माना जाता है।
5. प्रक्षेपीय परीक्षण कई प्रकार के हैं जैसे- स्याही धब्बा परीक्षण, चित्रिय परीक्षण, शाब्दिक परीक्षण, क्रियात्मक परीक्षण तथा आत्मचरितात्मक स्मृतियों का परीक्षण जिसमें रोशार्क परीक्षण, विषय-आत्मबोध परीक्षण, झ-ए-पटसन परीक्षण आदि प्रक्षेपीय विधि के प्रमुख उदाहरण है। इसके अतिरिक्त प्रक्षेपीय परीक्षण के कुछ शाब्दिक प्रविधियाँ भी हैं। जिनमें शब्द साहचर्य परीक्षण तथा वाक्यपूर्ति परीक्षण प्रमुख है।

8.7. शब्दावली-

व्यक्तित्व आविष्कारिका- व्यक्तित्व आविष्कारिका में खास-खास शील गुणों से सम्बन्धित कुछ प्रश्न बने होते हैं जिनका उत्तर हॉ-नहीं, सही-गलत आदि में दिया रहता है।

प्रक्षेपीय विधि- इस विधि द्वारा व्यक्तित्व की माप परोक्ष रूप से होती है।

साहचर्य परीक्षण- ऐसे परीक्षण में व्यक्ति अस्पष्ट उद्दीपकों को देखता है और यह बतलाता है कि उसमें वह क्या देख रहा है या फिर उससे वह किस चीज को साहचर्यित कर रहा है।

8.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. W 2. हाथवे एवं मैक्कीनले 3. प्रक्षेपीय विधि 8. H 5. 20 6. विद्यार्थी फार्म, व्यावसायिक फार्म।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल - बनारसी दास
2. व्यक्तित्व मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास
3. प्रतियोगिता मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास
4. व्यक्तित्व मनोविज्ञान - मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा - मोतीलाल बनारसी दास
5. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान - डी.एन. श्रीवास्तव - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2

8.10. निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व मापन में व्यवहत प्रमुख आविष्कारिकाओं का वर्णन करते हुए उसके गुण एवं दोषों पर प्रकाश डालें।

2. प्रक्षेपी तकनीकों के गुण-दोष का वर्णन कीजिए।

3. रोशार्क ब्लाट टेस्ट द्वारा व्यक्तित्व मापन किस प्रकार किया जाता है?

4. व्यक्तित्व मापने में एम.एम.पी.आई. के उपयोग का वर्णन करें तथा उसके लाभ एवं दोषों पर प्रकाश डालें।

इकाई – 9 निर्देशन कार्यक्रम: संगठन एवं विकास (Guidance Programme: organization & Development)

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 निर्देशन कार्यक्रम

9.4 निर्देशन कार्यक्रमों को संगठित करने के सिद्धांत

9.5 निर्देशन कार्यक्रमों का रूप

9.6 निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ-

9.7 अच्छे निर्देशन के आयोजन की मुख्य विशेषताएं

9.8 निर्देशन कार्यक्रम को आयोजित करने के उद्देश्य

9.9 विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन

9.10 सारांश

9.11 कठिन शब्दार्थ

9.12 अभ्यास प्रश्न

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.14 संदर्भ ग्रन्थ

9.1 प्रस्तावना:

निर्देशन सेवा व्यक्ति को उनके शैक्षणिक, सामाजिक, भावनात्मक और व्यक्तिगत कौशल विकसित करने में मदद करता है, जो उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों, व्यक्तिगत विकास और समग्र कल्याण को बढ़ाता है| भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। इसलिए, यह आम तौर पर सहमति है कि एक नागरिक को इस तरह से शिक्षित किया जाना चाहिए कि वह अपने स्वयं के साथ-साथ राष्ट्र की प्रगति के लिए कुछ वांछनीय जीवन कौशल, दृष्टिकोण और मूल्यों को विकसित करे।

यह एक उद्देश्यपूर्ण और सफल जीवन जीने के लिए सहायक उनके बौद्धिक और सामाजिक कौशल को समृद्ध कर सकता है। जीवन कौशल आधारित शिक्षा बच्चों को स्वयं, उनके दोस्तों और उनकी दुनिया को समझने में मदद करती है। प्रभावी परामर्श सेवाओं को छात्रों के अनुभवों (मटी और नदबुकी, 2004) की पूरी समझ और स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए। इसलिए, सभी छात्रों को उनकी शैक्षणिक, सामाजिक और व्यक्तिगत दक्षताओं को विकसित करने के लिए परामर्श सेवाएँ की आवश्यकता होगी । प्रभावी परामर्श उन्हें उन मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निपटने में सक्षम करेगा जो और अकादमिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चुनौतियों का समाधान या सामना करने के तरीके पर तर्कसंगत निर्णय ले सकते हैं।

यह एक व्यक्ति को कौशल और दृष्टिकोण प्राप्त करने में मदद करता है, जो उसे या उसे जीवन स्थितियों में ठीक से समायोजित व्यक्ति बनाते हैं। स्कूल के छात्रों के बीच शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, मानसिक भावनात्मक और अन्य समान समस्याओं को रोकने में मार्गदर्शन और परामर्श एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निर्देशन सेवाओं का क्षेत्र एवं कार्य विद्यार्थियो को शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन (choices) में सहायता तक ही सीमित नहीं है अपितु कहीं अधिक व्यापक हैं| निर्देशन का लक्ष्य समायोजन (Adjustment) एवं विकास (Development) दोनों में सहायता पहुँचाना है| निर्देशन जहाँ बालक को स्कूल एवं घर की परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभावित समायोजन प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है, वहां बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास भी उसका लक्ष्य है | इसलिए निर्देशन को शिक्षा का संघटक अंग माना जाना चाहिए| केवल शैक्षिक उद्देश्यों से प्रदान की जाने वाली मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सेवा तक ही वह सीमित नहीं है अपितु सभी विद्यार्थियो के लिए अपरिहार्य है, यह एक

निरंतर चलने वाला प्रक्रम (Continuous Process) है जो व्यक्ति को समय- समय पर निर्णय करने एवं समायोजन में सहायता करता है |

यह कार्य न तो किसी एक विशिष्ट क्षेत्र तक सीमित है और न ही कुछ विशिष्ट मानवीय एवं भौतिक साधनों तक। प्राय: प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित समस्याओं के समाधान में यह प्रक्रिया सहायक सिद्ध हो सकती है तथा अनेक व्यक्तियों के इस प्रक्रिया में निरितर अपनी भूमिका निर्वाह करना पड़ता हैं।

निर्देशन कार्यक्रमों को समुचित रूप में सुसंगठित करने के संबंधमें क्रो एवं क्रो ने अपनी पुस्तक, निर्देशन एक परिचय, में व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार प्रभावशाली निर्देशन कार्यक्रम लचीला होना चाहिए, जिससे उस कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सके। साथ ही यह भी आवश्यक है कि निर्देशन प्रक्रिया से संबंद्ध समस्त व्यक्तियों का सहयोग समन्वित रूप से प्राप्त हो सकें। इस समस्त के अतिरिक्त अनेक अन्य बातों का भी निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में ध्यान रखना आवश्यक है जिसे इस इकाई में पढ़ेगें।

9.2 उद्देश्य (Aim)-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- निर्देशन कार्यक्रम के स्वरूप को समझ सकेगे,
- निर्देशन कार्यक्रमों के अच्छे संगठनको समझ सकेंगे।
- विभिन प्रकार के निर्देशन कार्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।
- निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार को जान सकेंगे।
- निर्देशन कार्यक्रमों की व्यवस्था समझ सकेंगे।

निर्देशन कार्यक्रमों का आयोजन का उद्देश्य जान सकेंगे।

9.3 निर्देशन कार्यक्रम का परिचय (Introduction)-

शिक्षा संस्थाओं को प्रमुख रूप से तीन कार्य करने होते है, शिक्षण, प्रबंध एवं निर्देशन। शिक्षण संस्थाओं में केवल ज्ञान प्रदान करने का कार्य ही नहीं चलता है अपितु यहाँ शिक्षार्थी को जीवन के लिए तैयारी करने का अवसर मिलता हैं। निर्देशन का प्राथमिक परिचय तथा विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते समय

हम देखते हैं कि कई वर्तमान विकासमान विषय क्षेत्रों की सैद्धान्तिक मान्यताओं को एक व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु निर्देशन का नवीन विज्ञान आधुनिक युग में अवर्तीर्ण हुआ हैं। किसी भी क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य करने के कतिपय मूल अधिग्रहण होते हैं। निर्देशन कार्यक्रमों में इनके कार्य का मूल आधार है व्यक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की बहुपक्षीयता के कारण मानव से संबंधित आज कोई भी विषय क्षेत्र नहीं होगा जिसके विशेषज्ञ एकांकी रूप से अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को निभा सकें। विविध विषय क्षेत्रों की सीमाओं मे निर्देशन के आधारों का निहित होना इस तथ्य की पुष्टि करता हैं। आज वर्तमान में व्यक्ति की वैयक्तित्व अपेक्षाएं है और कुछ समाज के स्वीकृत शिक्षा दर्शन के अनुसार आज के विद्यार्थी से समाज वैयक्तित गुणों की अपेक्षा करता है जिससे सफल वह संतोषप्रद एवं प्रभावपूर्ण जीवनयापन कर सके। निर्देशन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थी कई क्षेत्र एवं उद्देश्य से अवगत होता हैं।

निर्देशन कार्यक्रम बालकों की रूचि विकसित एवं सामाजिक संबंध स्थापित करने में मदद करता हैं।

9.4 निर्देशन कार्यक्रमों को संगठित करने के सिद्धांत (Theories of organization of Guidance and Counselling Programme)-

निर्देशन कार्यक्रमों को संगठति करते समय कतिपय सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए समस्त प्रकार के निर्देशन संगठन हेतु यह सिद्धान्त उपयोगी होते हैं।

1. **कार्यक्रम के उद्देश्य (Goals of Programme)-** कार्यक्रम बनाने से पूर्व यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि कार्यक्रम का उद्देश्य क्या होगा? अथवा कार्यक्रम का आयोजन किन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जा सकता हैं। क्योंकि उद्देश्यों से के अभाव में कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता? निर्देशन कार्यक्रमों का गठन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझने तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता हैं। परिवार एवं पड़ोस के परिवेश का प्रभाव विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर पड़ता हैं। अत: निर्देशन कार्यक्रम विद्यार्थियों को प्रभावित करने वाले, विभिन्न तत्वों की खोजने का प्रयास करती हैं।

2. कार्यक्रम का निष्पादन (Performance of Programme) - कार्यक्रम के उद्देश्य निर्धारित के पश्चात निर्देशन कार्यक्रम के कार्यों को निश्चित किया जाना चाहिए, इन कार्यक्रम के कार्यों का लक्ष्य होगा – निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति। निर्देशन कार्यक्रम, परिस्थिति एवं समयानुसार बदलता रहा हैं। सन् 1947 उपरान्त भारत मे विभिन्न परिवर्तन हुए है तथा 21 सीबीटी शताब्दी में तो जबरदस्त बदलाव आ रहा हैं। देश के विभिन्न नवीन उद्योग धंधों को स्थापित किया जा रहा हैं गांव एवं शहर में कोई ज्यादा अंतर नहीं

रहा हैं। शिक्षण संस्थानों म निर्देशन के लक्ष्य एवं कार्यों में भी उनके अनुसार ही परिवर्तन हो रहा हैं। अत: निर्देशन के कार्यक्रमों में नमनीयता होना अत्यंत आवश्यक हैं।

3. उत्तरदायित्वों का निर्धारण (Deciding Responsibilities) - शिक्षा संस्थाओं में समस्त शिक्षकों का सहयोग प्राप्त होने पर ही, निर्देशन कार्यक्रम सफल हो सकता हैं। अत: निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समस्त शिक्षकों को निर्देशन में रूचि एवं योग्यता के संबंधमे जानकारी प्राप्त करनी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षकों की रूचियों तथा योग्यताआं के आधार पर ही उनको उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों को सोंपा जा सकता हैंप्रत्येक अध्यापक को अपने निर्देशन संबंधीकार्य से परिचित होना। ये कार्य अध्यापकों की क्षमताओं के आधार पर होने चाहिए।

4**. कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluation of Programme)** - निर्देशन कार्यक्रम प्रारंभ करने के बाद उसकी प्रगति तथा उपयुक्तता का मूल्यांकन करना होता हैं। इस मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम आयोजित किया गया है उसमें कहां तक सफलता प्राप्त हुई। मूल्यांकन का दूसरा उद्देश्य यह देखना है कि कार्यक्रम वर्तमान समय के अनुकूल है या नही। सामाजिक अवस्था छात्रों की आवश्यकताओं एवं निर्देशन विधियों में निरन्तर परिवर्तन होने से निर्देशन भी सदैव परिवर्तित होता रहता हैं। निर्देशन कार्यकर्ताओं को इन परिवर्तनों के प्रति सजग रहना चाहिए जिससे कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार नवीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर सकें।

5. निश्चित अधिकार क्षेत्र - जिस प्रकार अध्यापकों को उनके कार्य सौपें जाये उसी प्रकार उन्हें उनके अधिकार क्षेत्रों से परिचित करवाना आवश्यक हैं।

6 संबंधों को परिभाषित करना (Defining Relationship) - निर्देशन कार्यक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों, चाहे वे अंशकालिक कर्मचारी हो या फिर पूर्णकालिक कर्मचारी हो, उनके संबंधोंकी स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसी संस्था के अन्य कर्मचारियों के साथ उनके निर्देशन उत्तदायित्वों के अनुरूप निश्चित हो।

9. निर्देशन कार्यक्रम का स्वरूप (Nature of Guidance Programme)- संस्थओं में निर्देशन कार्यक्रम को आयोजित करने से पहले इसके स्वरूप को भी निश्चित कर लेना सही रहता हैं। जैसे कर्मचारियों की संख्या, आकार, धन की व्यवस्था आदि इसके स्वरूप का आधार संस्था के उद्देश्यों तथा आर्थिक साधन और विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या आदि हो।

8. सरलता (Simplicity)– संस्था निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन बहुत जटिल प्रकृति का नहीं होना चाहिए। इसके आयोजन की रूपरेखा जहां तक सं भवहो सके, सरल ही रहनी चाहिए। क्योंकि सरल रूपरेखा वाले कार्यक्रम में ही व्यक्ति रूचि लेने लगेगा।

क्रो एवं क्रो ने अपनी पुस्तक में निर्देशन कार्यक्रम की योजना शुरू करने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखने का सुझाव दिया हैं।

1- सबसे पहले से तय कर लेना चाहिए कि इस निर्देशन कार्यक्रम को शुरू करने में कितने व्यक्तियों तथा कितने समय की आवश्यकता होगी।

2- कर्मचारियों में कितनी वृद्धि करने की आवश्यकता है?

3- क्या निर्देशन की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने के लिए स्थान तथा भवन पर्याप्त है?

4- विभिन प्रस्तावित कार्यक्रमों को प्रदान करने के लिए कौन कौन से अध्यापक उपलब्ध हैं।

5- विद्यालय में उपलब्ध अध्यापक एवं अन्य कर्मचारी निर्देशन कार्यक्रम में अपेक्षित समय और शक्ति लगाने के योग्य और सक्षम हैं।

6- क्या कर्मचारी कार्यक्रम में रूचि का प्रदर्शन करते है? यदि करते है तो किस सीमा तक।

7- क्या निर्देशन संबंधी नियोजित कार्यक्रम में माता-पिता भी रूचि रखते है तथा क्या वे इस कार्यक्रम में अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

8- निर्देशन कार्यक्रम के विस्तार संबंधी विद्यालय तथा समाज का दृष्टिकोण क्या है?

9- विद्यार्थियों को कौन कौन से अनुभव क्षेत्रों में सेवा करने की आवश्यकता है?

10-निर्देशन कार्यक्रम के लिए क्या संस्था बजट में धन की व्यवस्था हो पायेगी

11-विद्यार्थियो को स्वयं के लिए निर्देशन कार्यक्रम का मूल्य समझने की अवस्था में किस प्रकार प्रेरित किया जा सकता हैं।

9.5 निर्देशन कार्यक्रमों का रूप (Form/Structure of Guidance Programme)-

1- केन्द्रिय रूप (Centralized) - इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम में सहायता देना विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों का कार्य होता हैं। निर्देशन कार्यक्रम के केन्द्रिय रूप में अधिकांश निर्देशन क्रियाएं

केन्द्रित कार्यलय से नियंत्रित होती है, अध्यापक भी निर्देशन मण्डल के निरीक्षण तथा आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं।

2- विकेन्द्रीय रूप (Decentralized)- विकेन्द्रीय रूप में निर्देशन सहायता देना अध्यापको का उत्तरदायित्वों माना जाता हैं। अध्यापक अपनी कक्षा के छात्रों के घनिष्ठ सम्पर्क में रहता हैं। यह उनकी आवश्यकताओं तथा समस्याओं का अच्छी प्रकार से समझ सकता हैं। अत: अध्यापक छात्रों की अधिक सहायता कर सकता हैं। कुछ लोगों को यह भय भी है कि विद्यालय में निर्देशन का पृथक विभाग स्थापित करने से अध्यापक निर्देशन कार्य को अपना उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करेगें। अत: निर्देशन देना अध्यापक का ही कार्य होना चाहिए।

उपरोक्त दोनों प्रकार के रूपों में कुछ गुण है तो उनमें कुछ दोष भी हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि निर्देशन कार्यक्रम का रूप इन दोनों का मिश्रित रूप होना चाहिए।

3-मिश्रित रूप (Mixed) - अध्यापकों और विशेषज्ञों को सामूहिक रूप से निर्देशन कार्यक्रम में प्रशासक, अध्यापक, निर्देशन आजीविका में संलग्न कर्मचारी, सामाजिक संस्थायें आदि सभी की समन्वित सेवाएं निहित होती हैं।

कुछ कार्य अध्यापक कर सकते हैं। उदाहरण के लिए छात्रों से संबंधित सूचनाएं एकत्रित करना। कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सहायता आवश्यक हो जाती हैं। यह निश्चित करना कठिन है कि अध्यापक तथा विशेषज्ञ किन किन क्षेत्रों में कार्य करेंगे।

9.6 निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताएँ (Characteristics of Guidance Programme)-

निर्देशन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए यह आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम को व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाये अनेक व्यक्तियों को इस प्रक्रिया में निरन्तर अपनी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता। निर्देशन कार्यक्रम की विशेषताओं को ध्यान मे रखना चाहिए। जो निम्नलिखित है -

- निर्देशन कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होना चाहिए प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को, व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम को नेतृत्व करना चाहिए। निर्देशन कार्यक्रम किस प्रकार का हो? यह शिक्षालयों के रूप पर निर्भर करता हैं। छोटे विद्यालयों में एक ही प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति निर्देशन एवं शिक्षण दोनों कार्यों को कर सकता है, जबकि बड़े शिक्षालयों में निर्देशन प्रदान करने के लिए निर्देशन प्रदाता अलग अलग से होता हैं। इसका कार्य मात्र निर्देशन क्रियाओं तक ही होता हैं।

- निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त कार्य संबंधितरूप में किए जाने चाहिये। कार्यक्रम में सभी शिक्षकों को अपनी अपनी क्षमता के अनुसार सहयोग प्रदान करना चाहिये। निर्देशन प्रदाता का यह कार्य है कि वह कार्यक्रम का सफलतापूर्वक संचालन करने हेतु अन्य शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने हेतु प्रयास करें इसके अतिरिक्त अध्यापकों को उनकी रूचि के अनुसार ही निर्देशन कार्य प्रदान किया जाये।
- सभी के समन्वित प्रयास एवं सहयोग से ही निर्देशन कार्यक्रम सफल हो सकता हैं। छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने हेतु नैदानिक सेवाएं स्वास्थ्य सेवा, परिवार कल्याण इत्यादि की सहायता ली जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त नियोक्ता एवं अभिभावकों को भी, निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने में सहयोग प्रदान करना चाहिए।
- निर्देशन कार्यक्रम निवास्क होनी आवश्यक हैं। आरंभ में विद्यार्थी के समुचित समायोजन हेतु प्रयास किया जाये। निर्देशन प्रदात्ता की इस प्रतिक्षा में नही रहना चाहिये कि विद्यार्थी के कुसामयोजित होने पर भी सहायता प्रदान की जाये।
- निर्देशन क्रियायें सतत् रूप से चलती रहनी चाहिये अर्थात् विद्यार्थी के विद्यालयी जीवन में प्रविष्ट होने के समय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक उसको निर्देशन सेवाएं प्राप्त होनी चाहिए। मात्र विद्यालयों तक ही निर्देशन सेवाओं का काल सीमित नही होता वरन् शिक्षण की समाप्ति पर व्यवसायों में नियुक्त अथवा सामाजिक सेवाओं में लगे, व्यक्तियों को भी निर्देशन सेवाएं प्राप्त होती हैं।
- निर्देशन कार्यक्रम शिक्षकों की रूचियों, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के ज्ञान पर ही आधारित होनी चाहिये।
- निर्देशन का कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करना हैं। शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षार्थी के विकास एवं समायोजन में सहायता करना होता हैं। शिक्षा प्रक्रिया का शिक्षण एवं निर्देशन क्रियाएं, अन्तरंग भाग होती हैं। लेकिन इन दोनों की पद्धतियां भिन्न भिन्न होती हैं। निर्देशन की परामर्श प्रक्रिया व्यक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित होती है तथा इसमें एक व्यक्ति का एक व्यक्ति से ही संबंध होता हैं।
- निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन हेतु प्रथम महत्वपूर्ण कार्य है - कार्यक्रम के उद्देश्य को निर्धारित करना, क्योंकि निर्देशन कार्यक्रम असफल भी होता हैं। निर्देशन सेवाओं का गठन छात्रों की आवश्यकता को समझने एवं उनकी संतुष्टि में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता हैं। अतः निर्देशन सेवाओं के कार्यक्षेत्र को भी निर्धारित किया जाना आवश्यक हैं।

9.7 अच्छे निर्देशन के आयोजन की मुख्य विशेषताएं-

- हमारा देश प्रजातंत्रात्मक देश हैं। अत: इस देश में प्रत्येक छात्र के निर्देशन प्राप्त करने का अधिकार हैं। साधारणत: आजकल विद्यालयों में शिक्षक शान्त अथवा विचारों में लीन रहने वाले विद्यार्थियों पर कोई ध्यान नहीं देते। बरन् शिक्षकों का ध्यान, अनुशासनहीन बालकों अथवा ऐसे बालक जो विद्यालय छोड़कर चले जाते है उन पर ही अधिक रहता है, जो कि अनुचित हैं। अतः निर्देशन प्रदाताओं को प्रत्येक बालक पर ध्यान देना चाहिये।
- निर्देशन कार्यक्रम का सेवार्थों केन्द्रित होना चाहिए। यही निर्देशन कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य हैं। सेवार्थों को अन्तिम निर्णय लेने हेतु स्वतंत्र छोड दिया जाना चाहिए।
- निर्देशन कार्यक्रताओं को अपनी योग्यता एवं ज्ञान में वृद्धि करने हेतु अवसर खोजने चाहिए निर्देशन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है - संचयी आलेख पत्र की समुचित व्यवस्था करना। निर्देशन प्रदाता को चिकित्सक के समान ही प्रत्येक सेवार्थों का संचयी आलेख पत्र रखना चाहिये। विद्यार्थी के विद्यालय में प्रविष्टि होने के समय से ही, आलेख को लिखना प्रारंभ कर देना चाहिये न कि उसे अपनी स्मृति पर निर्भर रहना चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशन कार्यकर्ता को निर्देशन देते समय विभिन्न विधियों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि एक विधि की सहायता से वह छात्रों के संबंधमें विश्वसनीय सूचनायें ज्ञात नहीं कर सकता हैं।
- परामर्शदाता को सूचनाएं गुप्त रखनी चाहिए ऐसा विश्वास होने पर ही छात्र सही जानकारी देगा।
- विद्यालय के बजट में ही निर्देशन कार्यक्रम को स्थान मिलना चाहिये।
- कार्यक्रम को अधिक उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक है कि कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों के ही अनुकूल हो।
- निर्देशन कार्यक्रम मे परामर्श प्रक्रिया एवं परीक्षण के लिए तथा आलेख पत्र रखने के लिए प्रर्याप्त स्थान भी होना चाहिए।
- निर्देशन कार्यकर्ताओं को परामर्श सहायता देने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए।
- उचित निर्देशक - सामग्री भी निर्देशन कार्यकर्ताओं को प्राप्त होनी चाहिये। निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए समाज की अन्य निर्देशन एजेन्सियों का यहयोग प्राप्त करना चाहिए।

9.8 निर्देशन कार्यक्रम को आयोजित करने के उद्देश्य (Goals of Conducting Guidance & Counselling Programme)-

भारत में निर्देशन कार्यक्रम विद्यालय स्तर पर जिस गति के साथ आयोजित हो रहा है वह अधिक संतोषप्रद नहीं हैं। किसी विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम आयाजित करने से पूर्व प्रश्नों पर विचार करना चाहिए -

- विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों की कौन-कौन सी और किस प्रकार की आवश्यकताएँ हैं जिनकी संतुष्टि के लिए उसी प्रकार के संगठन का रूप हो।
- निर्देशन कार्यक्रम में कार्य भार एवं कार्य क्षेत्रो के आधार पर कितने कर्मचारी योग्य हैं।
- विविध सेवाओं को प्रारं भकरने के लिए विद्यालय में कौन-कौन से अध्यापक आवश्यक हैं।
- कया विद्यालय के अध्यापकों के पास शिक्षण कार्य के अतिरिक्त निर्देशन के कार्य भार सम्भालने के लिए समय बचता हैं।
- निर्देशन कार्य के विभिन प्रकार की परीक्षाओं एवं सामग्री की आवश्यकता पड़ती हैं। क्या विद्यालय के बजट में से इनको खरीदा जा सकता हैं।
- क्या कार्यक्रम का आयोजन करने के लिए विद्यालय में उचित स्थान की व्यवस्था हो सकेगी?
- माता पिता तथा अन्य संस्थायें इस प्रकार के कार्यक्रम में रूचि रखते हैं या नहीं?

9.9 विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन -

कोठारी आयोग ने निर्देशन संबंधी अपनी सिफारिशों में लिखा है कि निर्देशन को शिक्षा का अभिन्न अंग माना जाये और इसे प्राथमिक स्तर से ही शुरू किया जाये। इसी सिफारिश के अनुरूप ही विद्यालय की क्रियाओं को बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के विभिन्न चरणों के अनुसार हो। निर्देशन कार्यकम नियोजित किये जाने चाहिए, ताकि वे बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक क्षेत्रों में सुसमायोजित हो सकें। इस दृष्टि से बालकों के विकास की अवस्था के अनुरूप तथा विभिन्न विद्यालय स्तरों के अनुरूप ही निर्देशन कार्यक्रमों के उद्देश्य तय किये जाते है, एक बात ध्यान देने योग्य है कि कोई निर्देशन व्यवस्था सभी विद्यालय में उपयोगी नहीं हो सकती हैं। अत: इसमें लचीलापन होना आवश्यक है जिसमें विद्यालय की आवश्यकताओं तथा आर्थिक साधनों के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकें।

प्रारंभिक विद्यालयों की निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन -

प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों की समस्यायें कम होती है एवं अधिक गंभीर भी नहीं होती हैं। अत: इस स्तर निर्देशन कार्य अध्यापक ही सम्पन्न करता हैं। किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं होती हैं। प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का निम्नांकित चित्र हो सकता हैं।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का प्रशासन विद्यालय के हाथों में होता हैं कक्षा अध्यापक छात्रों के अधिक संपर्क में रहता है अत: वह उनकी समस्यायें भली भांति समझता हैं निर्देशन कार्य को पूर्ण करने के लिए अध्यापक एवं प्रधानाचार्य समाजिक संस्थाओं एवं विद्यालय के बाहर की संस्थाओं की सहायता भी लेते हैं माता पिता, चिकित्सक, उपस्थिति अधिकारी आदि सभी का सहयोग प्रदान करना होता हैं।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य -

इस स्तर में 5 से 11 वर्ष की आयु के बालक अर्थात् कक्षा एक से पांच तक के छात्र शामिल होते हैं इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्य होते है -

1- घर से विद्यालय में विद्यालयों का संतोषजनक परिवर्तन करवाने में सहायता करवाना।

2- मूलभूत शैक्षिक कौशलों को सीखने में आ रही कठिनाइयों के निदान में सहायता करना।

3- विद्यार्थियों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए जरूरतमंद विद्यार्थियों की पहचान करने में सहायता जैसे प्रतिभाशाली, पिछड़े, तथा विकलांग बालक।

4- संभावितविद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को स्कूल ठहराये रखना।

5- विद्यार्थियों को उनकी आगामी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजना बनाने में सहायता करना।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ - उपरोक्त विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए प्राथमिक स्तर पर क्रियायें करनी होती हैं इस स्तर पर अध्यापक की केन्दिय भूमिका होती है, क्योंकि अध्यापक बालकों की रूचियां, योग्यताओं और आवश्यकताओं तथा प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उत्तम स्थिति में होता हैं प्राथमिक स्तर पर यह गतिविधियाँ की जाती हैं

विद्यार्थियों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम - इसमें विद्यालय वातावरण के बरे में बच्चों को तथा उनके माता पिता को बताया जाता है कि उनको विद्यालय तथा निर्देशन कार्यक्रम में उनकी भूमिका आदि से परिचित कराया जाता हैं

- निदानात्मक और मूलभूत कौशलों का परीक्षणों का प्रयोग प्राथमिक कक्षाओं में खूब किया जाना चाहिए। क्योंकि दोषपूर्ण पठन से बहुत ही अवांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।
- प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज - विभिन्न विधियों और प्रविधियों की सहायता से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज की जाती हैं। इन प्रतिभाओं के वैज्ञानिक योग्यता, सर्जनात्मक योग्यता, नेतृत्व की योग्यता, संगीत की योग्यता आदि शामिल होती हैं।
- कुसमायोजित और विभिनन दोषमुक्त विद्यार्थियों की खोज- ऐसे विभिन्न दोषों से युक्त और कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज करना अति आवश्यक है इसके लिए निरीक्षण परीक्षणों एवं अन्य विधियो का प्रयोग किया जाता हैं।

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर निर्देशन की बाधाएं

- यद्यपि भारत में निर्देशन कार्य का श्रीगणेश हो चुका है, किन्तु इसकी प्रगति अत्यंत अपर्याप्त एवं धीमी है | निर्देशन का जो थोडा बहुत कार्य हो रहा है उसे भी दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता | इसका कारण निर्देशन के मार्ग में आनेवाली अनेक बाधाएं हैं–
- **शिक्षकों का रुढ़िवादी रुख-** भारत देश में शिक्षा के क्षेत्र में जो लोग प्रवेश करते है उनमें से अधिकांश जीवन के अन्य क्षेत्रों के अवसर से वंचित लोग होते है | बहुत कम लोग इस प्रकार के होते है, जिनकी शिक्षण के क्षेत्र में रूचि होती है | परिणामत: कोई भी नवीन य रचनात्मक कार्य सौपें जाने पर वे उसमे अपना उत्साह प्रदर्शित नहीं करते | उनके अध्यापन का ढंग भी (बावजूद प्रशिक्षण के) प्राय: परम्परागत ही रहता है | शिक्षको के इस रुढ़िवादी रुख के कारण निर्देशन कार्य गतिशील नहीं हो पाता|
- **संसाधनों का अभाव-** इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देश में विकसित देशों जैसी आर्थिक समृद्धि नहीं है किन्तु जो भी संसाधन उपलब्ध है उनका उचित उपयोग न किये जाने के कारण शिक्षा और निर्देशन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र पिछड़ जाते है और तत्संबंधी अधिकांश योजनायें कागजी रिपोर्ट रह जाती है|
- **शिक्षक छात्र अनुपात-** देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बावजूद भी शिक्षक छात्र अनुपात निर्धारित मानक स्तर तक नहीं पहुँच पा रहा है और एक कक्षा में इतने अधिक छात्र होते है

कि अध्यापक को छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने में कठिनाई होती है और ऐसी स्थिति में वैयक्तिक परामर्श या निर्देशन कार्य कठिन हो जाता है |

- **शिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता**- निर्देशन का प्रारंभिक दायित्व शिक्षकों पर होता है, किन्तु हमारे देश में रजिस्टर अभिलेख, कापियों को जांचने सम्बन्धी कार्य, जनगणना, मतदान सम्बन्धी कार्य एवं अनेक गौण कार्यो की अधिकता के कारण शिक्षक अपने मूल कार्य शिक्षण व निर्देशन सम्बन्धी दायित्वों का पूर्णत: निर्वहन करने में कठिनाई महसूस करता है |
- **निर्देशन के विभिन्न अभिकरणों के बीच सामंजस्य का अभाव-** निर्देशन की जो थोड़ी बहुत सुविधाएँ उपलब्ध है, सामंजस्य के अभाव में उनका उपयोग नहीं हो पाता | घर, विद्यालय, मनोचिकित्सा एवं राज्य निर्देशन ब्यूरो आदि अनेक निर्देशन अभिकरणों के कार्यो में परस्पर सहयोग एवं आदान-प्रदान के अभाव में निर्देशन कार्यो की समुचित प्रगति संभव नहीं है |**निर्देशन के प्रति जागरूकता एवं संसाधनों के उपलब्धता द्वारा इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है|**

माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन -

प्राथमिक विद्यालय की अपेक्षा माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम व्यवस्था निश्चित रूप धारण कर लेती हैं। इस स्तर पर संगठन कुछ जटिल हो जाता हैं।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य –

कक्षा 6 से 8 तक माध्यमिक स्तर होता हैं। इन कक्षाओं में 11 से 14 वर्ष की आयु समूह शामिल होता है, इन वर्षों में बच्चे किशोर अवस्था में प्रवेश कर लेते हैं। यह अवधि कई बालकों के लिए कठिन होती हैं। इस अवस्था में परिवार, विद्यालय तथा समाज में समायोजन समस्यायें प्रकट होनी शुरू हो जाती है, इस स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य है -

1- विद्यार्थियों को परिवार, विद्यालय और समाज में समायोजन में सहायता करना,

2- विद्यार्थियों की योग्यताओं, अभिरूचियों और रूचियों को खोजना और उनका विकास करना

3- विद्यार्थियों को विभिन्न शैक्षिक और व्यवसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचनायें प्राप्त करने योग्य बनाना।

4- मुख्याध्यापक और अध्यापकों को उनके विद्यार्थियों को समझने तथा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।

5- विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यवसायिक योजनाएं बनाने में सहायता करना।

6- इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम किये जा सकते है।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ -

1- विद्यालय में मुख्याध्यापक के साथ निर्देशन कार्यक्रम पर विचार विमर्श करना।

2- विद्यालय संकायको परिचित करना,

3- विद्यालय के मुख्याध्यापक द्वारा विद्यालय निर्देशन समिति बनाना जिसमें कैरियर अध्यापक, शारीरिक शिक्षा अध्यापक और अध्यापक अभिभावक ऐसोसिएशन का एक प्रतिनिधि शामिल हो।

4- विद्यार्थियों के तथ्यों को इकट्ठा करना।

अभिविन्यास कार्यक्रम - जैसे विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम विद्यालयों मे सुविधाओं के बारे मे परिचय, नियमित अध्ययन आदतों का परिचय तथा खाली समय के सदुप्योग के बारे में अभिविन्यास

3- अधिगम वातावरण में सुधार करना।

4- के लिए उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।

सैकेण्डरी स्तर एवं सीनियर सैकण्डरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन – इन उच्चतर कक्षाओं में छात्राओं को मुख्यतः निर्देशन की सहायता की आवश्यकता होती है इसी समय छात्र विभिन्न व्यवसायों के बे में ज्ञात प्राप्त करना चाहते है या विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त करने के लिए सूचना प्राप्त करना चाहते हैं। सीनियर सैकेण्डरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम व्यवस्था का निम्न रूप हो सकता है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्रधानाचार्य पर कार्यभार अधिक होने से वह निर्देशन विभाग पर विशेष ध्यान नही दे पाता है अत: निर्देशन कार्य के संगठन का काम निर्देशन - संचालन का सौंप देता हैं। निर्देशन कार्य के कक्षाध्यापक, कक्षा - परामर्शदाता आदि सभी सहयोग देते हैं। इस स्तर पर विशेषज्ञों की विशेषरूप से आवश्यकता होती हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य -

1- विद्यार्थियों को उनकी दुर्बलताओं और शक्तियों को समझने के योग्य बनाना।

2- शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरो और आवश्यकताओं के बारे में सूचना इकट्ठी करने के योग्य बनाना।

3- विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक चयन करने मे सहायता देना।

4- व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन के क्षेत्र में सहायता करना।

क्रियाएँ या गतिविधियाँ -

- योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों, उपलब्धियो और अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के बारे मे आंकड़े एकत्रित करना
- क्षेत्र भ्रणो का आयोजन करना।
- कैरियर कान्फ्रेसिंस और कैरियर प्रदर्शनी का आयोजन
- कोर्स का चयन करने में सहायता करना,
- माता पिता को निर्देशन प्रदान करना।
- अल्प उपलब्धियों और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहिचान करना
- इस स्तर पर स्थानीय व्यावसायिक अवसरों और स्वयं रोजगार अवसरों के बारे में सूचनायें प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता हैं।
- परामर्श सेवा व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिए उपलब्ध कराई जाती हैं।
- निर्देशन कार्य की सफलता निर्देशन प्रदात्ताओं एवं कर्मचारियों पर निर्भर करती हैं। समाजिक संस्थाओं का भी निर्देशन व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य होता हैं।

9.10 सारांश

निर्देशन कार्यक्रम को विद्यालयों में सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक है कि यह संगठित तथा व्यवस्थित रूप में हो निर्देशन को विद्यालय के सामान्य जीवन से पृथक नही किया जा सकता है, न इसको विद्यालय के किसी एक विशेष भाग मे केन्द्रित किया जा सकता है, न इसको परामर्शदाता या प्रधानाचार्य के कार्यालय तक सीमित किया जा सकता है क्योकि निर्देशन सहायता देना विद्यालय के

प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व हैं। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सभी का सहयोग होना चाहिए। जिससे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकें।

9.11 कठिन शब्दार्थ

- निष्पादन - क्रियान्वित कार्य को पूर्ण करना ।
- मुख्याध्यापक- प्रधानाध्यापक

9.12 अभ्यास प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य है उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है, उनके आगे क्रास का निशान लगाये।

1- निर्देशन कार्यक्रम में केन्द्रित रूप से निर्देशन सहायता देना प्रशिक्षित व्यक्तियों का कार्य होता हैं।

2- कार्यक्रम के उद्देश्य निश्चित करना प्रथम कार्य हैं।

3- निर्देशन कार्यक्रम में सभी स्तर पर एक ही विधि प्रयोग करनी चाहिये।

4- प्राथमिक स्तर पर पढ़ने वाले छात्रों की समस्यायें कम होती हैं।

5- निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में विद्यालय बजट की जरूरत नहीं पडती है|

उत्तर (1) सही (2) सही (1) गलत (4) सही (5) गलत

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1- निर्देशन कार्यक्रम के अच्छे संगठन से आप क्या समझते हैं?

2- निर्देशन सेवाओं के संगठन के मुख्य सिद्धान्तों के बारे में लिखिए?

3- विद्यालय में निर्देशन सेवाओं का आयोजन के बारे में बताये?

4- निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य बताइये?

9.14 संदर्भ ग्रन्थ

- Bhatnagar A.B. (2004) "Educational and mental measurement, R. lall, Book Depot, Meerut
- Bhatnagar R.P (1977) "Guidance and counselling in Education and psychology R. Lall Book Depot, Meerut
- शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन स्व' परामर्श - डॉ. एस.सी. ओबराय लायल बुक डिपो मेरठ
- भार्गव, महेश (2007) - आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच.पी. भार्गव, बुक हाऊस, आगरा
- दुबे, एल.एन. (2009) - परामर्श मनोविज्ञान शिक्षा प्रकाशन जयपुर
- राय अमरनाथ एवं अस्थाना मधु (2014) निर्देशन एवं परामर्श, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली

इकाई 10. निर्देशन में आकड़ों का संकलन एवं महत्त्व (Data collection and its importance in Guidance)

इकाई का स्वरुप

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 आंकड़ों के संकलन का महत्व

10.3.1 आंकड़ों का अर्थ

10.3.2 आंकड़ों के संकलन का महत्व

10.3.3 आंकड़ों के क्षेत्र

10.4 आंकड़ों के संकलन के उपकरण

10.4.1 प्रश्नावली

10.4.2 साक्षात्कार

10.4.3 व्यक्ति इतिहास

10.4.4 संचयी अभिलेख

10.4.5 निर्धारण मापनी

10.4.6 अनुसूची

10.4.7 पर्यवेक्षण

10.4.8 समाजमिति

10.4.9 मनौवेज्ञानिक परीक्षण

10.4.9.1 बुद्धि परीक्षण

10.4.9.2 अभिक्षमता परीक्षण

10.4.9.3 रूचि मापनी

10.4.9.4 व्यक्तित्व परीक्षण

10.4.10 शिक्षक निर्मित और मानकीकृत परीक्षण

10.5 सारांश

10.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

विद्यालय में परामर्श का केन्द्र बिन्दु छात्र होता है। छात्र को बिना समझे उसकी समस्याओं का समाधान करने के लिये सहायता प्रदान करना असम्भव है। छात्र की व्यक्तिगत विशेषताओं, योग्यताओं तथा रूचियों को समझकर ही प्रभावशाली ढंग से सहायता प्रदान की जाती है। इसके लिये छात्र से सम्बन्धित अनेक प्रकार की सूचनायें एकत्रित की जाती हैं। सूचनायें ऐसी होनी चाहिए जो छात्र के व्यवहार के बारे में सटीक जानकारी दें। परामर्शदाता द्वारा सूचनाओं अथवा आंकडों के संग्रह करने के लिये कई प्रकार की विधियों और परीक्षण उपकरणों का उपयोग किया जाता है।

इस इकाई में आप परामर्श के लिये छात्र से सम्बन्धित सूचनाओं तथा तथ्यों का संग्रह करने के विभिन्न सो्रत कौन से हैं। प्राप्त आंकड़े परामर्श की प्रक्रिया में क्यों महत्वपूर्ण है तथा इनको प्राप्त करने की कौन सी महत्वपूर्ण विधियां है। इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. सूचनाओं अथवा आंकड़ों के संकलन के महत्व को समझ सकेंगे।
2. सूचनाओं की प्राप्ति के स्रोतों से अवगत हो सकेंगे।
3. सूचनाओं के संग्रहण हेतु विभिन्न विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।

10.3 आंकड़ों के संकलन का महत्व

10.3.1 आकड़ों का अर्थ

परामर्श की प्रक्रिया में आंकड़े वे तथ्य एवं सूचनाये होती हैं जिनका सम्बन्ध परामर्शी और उसके परिवेश से होता है।

10.3.2 आकड़ों के संकलन का महत्व

परामर्शी और उसके परिवेश से सम्बन्धित आंकड़ों या सूचनाओं का परामर्श सेवा में महत्वपूर्ण स्थान है। जिनके अभाव में परामर्शदाता कभी भी छात्र को समस्या समाधान के लिये उचित दिशा प्रदान नहीं कर सकता है। प्राप्त सूचनायें ही समस्या समाधान का मार्ग तैयार करती हैं। इनका महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट है।

यथार्थ का बोध- आकड़ों अथवा सूचनाओं के द्वारा परामर्शदाता को परामर्शी के जीवन की साधारण तथा विशेष दशाओं की वास्तविकता से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता है।

परिवर्तन के अध्ययन में सहायक- आकड़ें परामर्शी के परिवेश तथा उसकी स्वयं की दशाओं में होने वाले परिवर्तन के बारे में अध्ययन करने में सहायक होते हैं।

योजना निर्माण में सहायक- प्राप्त आंकड़ों अथवा सूचनाओं के आधार पर परामर्श की कार्य योजना का निर्माण किया जाता है तथा उसको फलीभूत करने का प्रयास परामर्शदाता करता है।

कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज- प्राप्त सूचनाएं परामर्शी की दशा तथा घटना के कारणों और उसके परिणामों से अवगत कराती हैं।

समस्या के समाधान में सहायक- समस्या के कारणों का पता करने के बाद समाधान का आधार ज्ञात किया जा सकता है।

10.3.3 आंकड़ों के क्षेत्र

परामर्श कार्यक्रम के लिये दो प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती हैः-

1. परामर्शी के बारे में
2. परामर्शी के परिवेश के बारे में।

परामर्शी से सम्बन्धित दोनों प्रकार की सूचनाओं के संकलन के लिये निम्न क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है।

1. पारिवारिक पृष्ठभूमि
2. विद्यालीय अभिलेख
3. शैक्षिक उपलब्धि एंव प्रगति
4. मानसिक क्षमताएं
5. रूचियां
6. व्यक्तित्व
7. स्वास्थ्य सम्बन्धी

10.4 आंकड़ों के संकलन के उपकरण

परामर्श की प्रक्रिया में सूचनाओं को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

1.प्रश्नावली

2.साक्षात्कार

3.व्यक्ति इतिहास

4.संचयी अभिलेख

5.निर्धारण मापनी

6.अनुसूची

7.पर्यवेक्षण

8.सामाजिकता मापन

9.मनौवेज्ञानिक परीक्षण

(क) अभिरूचि परीक्षण

(ख) बुद्धि परीक्षण

(ग) रूचि मापन

(घ) व्यक्तित्व मापन

10.शिक्षक निर्मित और मानकीकृत परीक्षण

10.4.1 प्रश्नावली

प्रश्नावली में प्रश्नों की एक व्यवस्थित श्रंखला होती है जिसमें एक प्रपत्र में परामर्शी अथवा छात्र स्वंय उत्तर देता है। परामर्शदाता आवश्यकतानुसार स्वंय प्रश्नावली निर्मित कर उपयोगी सूचनायें प्राप्त करता है। प्रश्नावली को एक साथ बड़े समूह तथा दूरस्थ लोगों से सूचनायें प्राप्त करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

प्रश्नावली की दो मुख्य भागों में रचना की जाती है। पहला भाग परामर्शी के बारे में सामान्य जानकारी से सम्बन्धित होता है।

नमूना (प्रथम भाग)

छात्र का नाम -----

कक्षा तथा वर्ग -----

आयु -----

लिंग -----

निवास क्षेत्र-(ग्रामीण अथवा शहरी) -----

जाति (सामान्य/अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति/अ0पि0 वर्ग) -----

वैवाहिक स्थिति ------

माता-पिता की आय ------

दूसरे भाग में प्रश्नों की श्रृंखला निहित होती है जो छात्र के व्यवहार अथवा समस्या के आकलन करने के लिये आवश्यक होते हैं।

प्रश्नों के आधार पर प्रश्नावली तीन प्रकार की होती है।

(1) खुली प्रश्नावली

(2) प्रतिबन्धित/बन्द प्रश्नावली

(3) मिश्रित प्रश्नावली

खुली प्रश्नावली- इस प्रकार की प्रश्नावली में छात्र प्रश्नों का उत्तर अपने शब्दों में देते हैं।

उदाहरण-

प्रश्न- आप अपने सबसे प्रिय मित्र की दो आदतों के बारे में लिखिए।

बन्द प्रश्नावली- इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के सम्भावित उत्तर प्रश्नावली में निहित होते हैं।

उदाहरण-

प्रश्न- गणित विषय का शिक्षक आपके गृहकार्य की जांच करते हैं। (सही उत्तर के सामने सही(√) का चिह्न लगायें)

उत्तर -हमेशा/कभी-कभी/बिल्कुल भी नही

मिश्रित प्रश्नावली-मिश्रित प्रश्नावली के अन्तर्गत खुली तथा बन्द दोनो प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है।

10.4.2 साक्षात्कार

व्यक्ति के बारे में सूचनाओं के संकलन के लिए साक्षात्कार किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु वार्तालाप करना है। साक्षात्कार परामर्शी और परामर्शदाता के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित अन्तःक्रिया की प्रविधि है। साक्षात्कार प्रविधि की मुख्य विशेषता इसका लचीलापन है अतः इसके कारण परामर्शदाता आवश्यकतानुसार प्रश्नों को परिवर्तित या उनमें सुधार कर सकता है। जिससे परामर्शी अपनी दिनचर्या, रूचियों अनुभवों, उपलब्धियों और योजनाओं के बारे में सहज रूप से भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सके।

10.4.3 व्यक्ति इतिहास

जटिल शैक्षिक तथ्यों के कार्य-कारण सम्बन्धों से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति इतिहास विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का उपयोग कुसमायोजित विद्यार्थियों और उनकी अध्ययन सम्बन्धी कठिनाईयों का अध्ययन करने के लिये किया जाता है। इसके लिये परामर्शदाता को विद्यार्थियों के भूतकालीन अनुभव और वर्तमान समस्याओं के बारे में गहन एवं विस्तृत सूचना प्राप्त करनी होती हैं।

इस विधि में विद्यार्थी अथवा परामर्शी के बारे प्राथमिक सूचनाओं जैसेः नाम, आयु, यौन, माता-पिता के बारे में जानकारी, शिक्षा, व्यवसाय, आय, सामाजिक स्तर, परिवार में सदस्यों की संख्या आदि एकत्रित की जाती है। जिसके बाद विद्यार्थी के गत इतिहास जिसमें गृहकार्य से लेकर वर्तमान दशाओं, बौद्धिक स्तर, रूचि, शौक, शैक्षिक उपलब्धि आदि सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है। व्यक्ति अध्ययन विधि में सामान्य की अपेक्षा असामान्य व्यवहार करने वाले विद्यार्थियों के अध्ययन पर बल दिया जाता है।

व्यक्ति अध्ययन विधि - नमूना पत्रः

नाम क ख ग
आयु .....
भाषा हिन्दी/.....
पिता का नाम .....
पिता का व्यवसाय .....
माता का नाम .....
माता का व्यवसाय .....
परिवार की मासिक आय .....
पता .....

वर्तमान समस्या

(1) पढ़ाई में कमजोर
(2) विद्यालय से अनुपस्थित रहना
(3) .....

जन्म इतिहास-

जन्म के समय वजन .....

जन्म के समय लम्बाई .....

जन्म प्रक्रिया (सामान्य अथवा ऑपरेशन द्वारा) .....

परिवार की स्थिति- संयुक्त परिवार/एकल परिवार

व्यवहारिक समस्या- नाखून चबाना,

अकेले बैठना,.....

शैक्षिक इतिहास- पिछले वर्षों का रिकार्ड तथा छात्र के विषय में शिक्षकों की राय।

निदान .....

10.4.4 संचयी अभिलेख

संचयी अभिलेख, किसी छात्र के शारीरिक, शैक्षिक तथा सामाजिक विकास से सम्बन्धित सूचनाओं का एक संग्रह होता है। परामर्शदाता, विद्यालयों में निहित अभिलेखों के माध्यम से सूचना प्राप्त कर छात्रों की समस्याओं का समाधान करते हैं।

संचयी अभिलेखों में निहित सूचनाएं-

1.परामर्शी (छात्र) का परिचय एंव फोटो
2.परिवारिक पृष्ठभूमि
3.छात्र का स्वास्थ्य अभिलेख
4.शैक्षिक अभिलेख
5.अतिरिक्त क्रिया-कलापों का अभिलेख
6.चारित्रिक अभिलेख
7.विशिष्ट घटनाओं का अभिलेख
8.छात्र के शौक से सम्बन्धित अभिलेख
9.विशिष्ट उपलब्धियों से सम्बन्धित अभिलेख

10.4.5 निर्धारण मापनी

निर्धारण मापनी में व्यक्ति द्वारा किसी परिस्थिति, संस्था, वस्तु तथा किसी अन्य व्यक्ति के बारे में दी गयी अनुमति या निर्णय का मापन किया जाता है। इसमें व्यक्ति अथवा छात्र की उपलब्धियों के विभिन्न पक्षों का रेटिंग कर प्राप्त निर्णयों को अंकों में बदला जाता है।

निर्धारण मापनी को मुख्यतः पांच प्रकारों में बांटा गया है।

1.अंकीय मापनी
2.रेखीय मापनी
3.प्रमाणित मापनी
4.संचयी अंक मापनी
5.बलात् विकल्प मापनी

निर्धारण मापनी में प्राप्त निर्णयों अथवा अनुमति को तीन, पांच, सात तथा नौ बिन्दुओ में वर्गीकरण किया जाता है।

अतिउत्तम उत्तम औसत औसत से निम्न स्तर हेय

उदाहरण- पांच बिन्दुओं की मापनी-

उदाहरणः- अंग्रेजी के अध्यापक के कक्षा शिक्षण कार्य की प्रभावीकता के बारे में आपकी क्या राय है। (सही विकल्प पर सही (√) का निशान लगायें)

बहुत अधिक प्रभावी बहुत प्रभावी प्रभावी कम प्रभावी बहुत कम प्रभावी

10.4.6 अनुसूची

अनुसूची उन प्रश्नों के समूह को कहते हैं जो कि परामर्शदाता द्वारा स्वयं छात्र के सामने बैठकर पूछे तथा लिखे जाते हैं। अनुसूची तथा प्रश्नावली में प्रमुख अन्तर यह कि प्रश्नावली डाक द्वारा भेजी जाती है जबकि अनुसूची का प्रशासन परामर्शदाता व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित करके करता है।

10.4.7 पर्यवेक्षण

पर्यवेक्षण उपकरण का प्रयोग किसी व्यक्ति के बाह्य व्यवहार के अध्ययन में किया जाता है। परामर्शदाता, छात्र के कक्षा व्यवहार और उससे सम्बन्धित विभिन्न भौतिक पहलुओं जैसे-विद्यालय भवन, घर, अध्यापक, रहन-सहन, खेल, व्यायाम की सुविधायें आदि का अवलोकन कर अभिलेख तैयार करता है।

पर्यवेक्षण दो प्रकार का होता है।

1. सहभागी

2. असहभागी

सहभागी पर्यवेक्षण में पर्यवेक्षणकर्ता (परामर्शदाता) स्वयं उस समूह का सदस्य बन जाता है, जिसका कि उसे निरीक्षण करना होता है जबकि असहभागी पर्यवेक्षण में परामर्शदाता समूह या परामर्शी से कुछ दूरी बनाकर बिना किसी बाधा के सूचनाओं को प्राप्त करता है।

पर्यवेक्षण अथवा अवलोकन करने के लिये विभिन्न उपकरणों जैसे-विडियो कैमरा, टेपरिकॉडर, क्लोज सर्किट कैमरा का प्रयोग किया जाता है। इनके उपयोग से छात्र के व्यवहार का सही आकलन करने में सहायता मिलती है।

10.4.8 समाजमिति

समाजमिति उपकरण के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों एंव अभिवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है। समाजमिति में छात्रों से सूचनाये प्राप्त करने के लिये प्रश्नावली, अनुसूची, निरीक्षण, वर्गक्रम मापन का उपयोग किया जाता है। इन उपकरणों में कुछ वर्गीकृत स्थितियां हाती है जिनका विस्तार स्वीकृत से लेकर अस्वीकृत (नकारात्मक) तक होता है।

उदाहरण-

आप कक्षा में शीला के साथ बैठना पसंद नहीं करते हो। (सहमत/अनिश्चित/असहमत)

आप किसके साथ खेलना पंसंद करोगे? (छात्रों के नाम अपनी पसंद के अनुसार क्रमानुसार लिखें जिसे आप सबसे ज्यादा पसंद करते हो उसका नाम पहले क्रमांक में, दूसरे को क्रमांक 2 पर, तीसरे को क्रमांक 3, चौथे को..... पर लिखें)।

1.....

2.....

3.....

4.....

5.....

10.4.9 मनौवैज्ञानिक परीक्षण

छात्र की वर्तमान योग्यताओं, विशेषताओं और व्यवहारों के बारे में विश्वनीय एवं वैध सूचनायें मनौवेज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से प्राप्त की जाती हैं। यहां पर हम कुछ महत्वपूर्ण मनौवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्णन करेंगे।

10.4.9.1 बुद्धि परीक्षण

बुद्धि परीक्षण के द्वारा परामर्शी की बुद्धि लब्धि को ज्ञात किया जाता है।

बुद्धि लब्धि को ज्ञात करने के लिये सूत्र-

बुद्धि लब्धि = मानसिक आयु /वास्तविक x100

बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्तियों को निम्न श्रेणियों में बांटा गया है

बुद्धि लब्धि	श्रैणी
140 से अधिक	प्रतिभाशाली
120-140	प्रखर बुद्धि
110-120	तीव्र बुद्धि
100-110	सामान्य बुद्धि
80-100	बुद्धि दौर्बल्य
70-80	बुद्धू
50-70	मूर्ख
25-50	मूढ़
0-25	जड़

बुद्धि परीक्षणों को प्रशासन, विषयवस्तु तथा स्वरूप के आधार पर निम्न वर्गों मे विभक्त किया जाता है।

विषयवस्तु के आधार पर-

1.शाब्दिक परीक्षण- इन परीक्षणों में मात्रा का उपयोग किया जाता है।

2.अशाब्दिक परीक्षण- इनमें चित्रों, चिन्हों, आकृतियों आदि संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

मापन के आधार पर-

1. पेपर पेंसिल परीक्षण - यह शिक्षित लोगों के लिये बनाया गया है।
2. निष्पादन परीक्षण- इन परीक्षण में शब्दों के स्थान अमूर्त वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है।

प्रशासन के आधार पर-

1.व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

2.सामूहिक बुद्धि परीक्षण

व्यक्तिगत परीक्षण में एक समय में एक व्यक्ति की परीक्षा ली जाती है तथा सामूहिक परीक्षण में एक समय में कई व्यक्तियों की परीक्षा ली जाती है।

स्वरूप के आधार पर-

1.गति परीक्षण

2.शक्ति परीक्षण

गति परीक्षण में एक निर्धारित समय में निश्चित प्रश्नों को हल करना पड़ता है तथा शक्ति परीक्षण में सरल से कठिन क्रम में प्रश्नों को प्रस्तुत किया जाता है जिससे यह ज्ञात किया जाता है कि, विद्यार्थी किस स्तर तक के कठिन प्रश्नों को हल कर सकता है।

कुछ महत्वपूर्ण बुद्धि परीक्षण-

1.स्टैनफॉर्ड-बिने बुद्धि परीक्षण

2.वेश्लर वयस्क बुद्धिमापनी

3.भाटिया निष्पादन बुद्धि परीक्षण माला

4.कैटेल का संस्कृत मुक्त बुद्धि परीक्षण।

10.4.9.2 अभिक्षमता परीक्षण

किसी व्यक्ति की अभिक्षमता किसी कार्य या व्यवसाय हेतु उसकी योग्यता है। व्यवसाय के चयन में परामर्शी को सहायता प्रदान करने के लिए परामर्शदाता अभिक्षमता का निर्धारण करता है।

कुछ प्रमुख अभिक्षमता परीक्षण निम्न हैं।

1.सामान्य अभिक्षमता परीक्षण माला

2.विभेदक अभिक्षमता परीक्षण माला

3.यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण माला

10.4.9.3 रूचि मापनी

रूचि किसी वस्तु, व्यक्ति या तथ्य को पसन्द करने, उस के प्रति ध्यान केन्द्रित करने तथा उससे संतुष्ट पाने की प्रवृति है। रूचि ही वह कारण है जिसकी आवश्यकता किसी कार्य को पूर्ण क्षमता से करने की दिशा में प्रेरित करती है।

प्रमुख रूचि परीक्षण-
1.स्ट्रांग का व्यावसायिक रूचि प्रपत्र
2.कुलश्रैष्ठ का शैक्षिक रूचि प्रपत्र
3.जीस्ट चित्र रूचि सूची

10.4.9.4 व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व व्यक्ति के मनौदैहिक पक्षों का एक गत्यात्मक स्परूप होता है। जिसके अंतर्गत उसके स्वभाव, चरित्र, बुद्धि, शारीरिक गठन आदि से सम्बन्धित विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है। परामर्शदाता व्यक्तित्व परीक्षण के द्वारा छात्रों के मूलभूत गुणों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के पश्चात आवश्यक परामर्श कार्य करता है।

प्रमुख व्यक्तित्व परीक्षण
1.आर. वी. कैटल. का सोलह व्यक्तित्व कारक परीक्षण
2.मिनसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची
3.प्रसंगात्मक बोध परीक्षण
4.रोर्शा इंक ब्लाट परीक्षण

10.4.10 शिक्षक निर्मित और मानकीकृत परीक्षण

शिक्षक छात्रों के विभिन्न गुणों को मापने के लिये उपलब्धि परीक्षणों की रचना करता है। इन परीक्षणों के माध्यम से छात्रों द्वारा कक्षा में पढ़े गये विषयों के ज्ञान का मापन किया जाता है। शिक्षक कक्षा, खेल के मैदान और अन्य क्रियाकलापों में छात्रों के व्यवहार का अवलोकन करके उनके गुणों का मापन करता है। शिक्षक मापन हेतु मानकीकृत और अमानकीकृत परीक्षणों का उपयोग करता है।

मानकीकृत परीक्षणों को स्वीकार्य उद्देश्यों के आधार पर योजनाबद्ध ढ़ंग से बनाया जाता है। इन परीक्षणों के निर्देश, प्रशासन विधि, समय सीमा, फंलाकन विधि और विवेचना निश्चित होती है।

मानकीकृत परीक्षण का प्रयोग

1.विभिन्न क्षेत्रों में अर्जित कौशलों के तुलनात्मक अध्ययन में।
2.विभिन्न विद्यालयों और कक्षाओं की तुलना करने में करने किया जाता है।
शिक्षक निर्मित परीक्षणों का प्रयोग
1.छात्रों की विशिष्ट इकाईयों में अर्जित ज्ञान का,
2.शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति सीमा की जानकारी के लिये किया जाता है।
शिक्षक निर्मित परीक्षणों को निम्न प्रकार से बांटा गया है।
1.मौखिक , 2.लिखित तथा 3.प्रयोगात्मक

मानकीकृत परीक्षणों की रचना करने हेतु निम्न पदों का अनुसरण किया जाता है।

नियोजन
परीक्षण पदों की रचना
परीक्षा का प्रशासन
मानकों का निर्माण करना
मैन्युअल का निर्माण करना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रश्नावली में प्रश्नों की एक …… श्रंखला होती है जिसमें एक प्रपत्र में परामर्शी अथवा छात्र स्वंय उत्तर देता है।
2. संचयी अभिलेख, किसी छात्र के शारीरिक, शैक्षिक तथा सामाजिक विकास से सम्बन्धित सूचनाओं का एक …… होता है।
3. …….. उपकरण के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों एंव अभिवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है।
4. व्यक्तित्व व्यक्ति के मनौदैहिक पक्षों का एक …….. स्परूप होता है। जिसके अंतर्गत उसके स्वभाव, चरित्र, बुद्धि, शारीरिक गठन आदि से सम्बन्धित विशेषताओं को …….. किया जाता है।

5. मानकीकृत परीक्षणों को स्वीकार्य उद्देश्यों के आधार पर ……. ढ़ंग से बनाया जाता है।

10.5 सारांश

परामर्श की प्रक्रिया में परामर्शी और उसके परिवेश से सम्बन्धित आंकड़ों अथवा सूचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। ये सभी आंकड़ें परामर्शदाता को परामर्शी की वास्तविक स्थिति से अवगत कराने में सहायक होते हैं।परामर्शी से सम्बन्धित दोनों प्रकार की सूचनाओं के संकलन के लिये निम्न क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है। उचित परामर्श हेतु परामर्शी की पारिवारिक पृष्ठभूमि, विद्यालीय अभिलेख, शैक्षिक उपलब्धि एंव प्रगति, मानसिक क्षमताएं, रूचियां, व्यक्तित्व तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित की जाती हैं।

सूचनायें प्रश्नावली, साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास, संचयी अभिलेख, निर्धारण मापनी, अनुसूची, पर्यवेक्षण, सामाजिकता मापन, मनौवेज्ञानिक परीक्षण तथा शिक्षक निर्मित और मानकीकृत परीक्षण आदि विधियों एवं उपकरणों के माध्यम से संकलित की जाती हैं। मानकीकृत परीक्षणों की रचना करने हेतु पद-नियोजन, परीक्षण पदों की रचना, परीक्षा का प्रशासन, मानकों का निर्माण करना तथा मैन्युअल का निर्माण करना हैं।

10.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - व्यवस्थित
प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - संग्रह
प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - समाजमिति
प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - गत्यात्मक, सम्मिलित
प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - योजनाबद्ध

10.7 संदर्भ ग्रंथसूची

एनेस्टेसी, एन0,(1958) साइकोलॉजिकल टैस्टिंग, दी मैकमिलन क0, न्यूयार्क।

क्रोनबैक,एल0जे0,(1970) ऐसेन्सियल्स ऑफ साइकोलॉजिकल टैस्टिंग, थर्ड एडिसन, न्यूयार्क हारपर एण्ड रॉ।

चौबे, एस0 पी0, एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल एडुकेशनल पब्लिसर, आगरा।

टेलर, आर एल0 (1993) ऐसेसमेन्ट ऑफ एक्सेप्सलन स्टूडेन्ट्स, बोस्टन: ऐलन एण्ड बैकन।

गेलडार्ड, के0 एण्ड गेलडार्ड, डी0 (1997) कॉन्सिलिंग चिल्ड्रन-अ0 प्रेक्टिकल इन्ट्रोडक्सन, सेज पब्लिकेसन, न्यू देहली।

ली एण्ड पलौन (लेटेस्ट एडीसन) गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग इन स्कूल्स: फाउडेन्स एण्ड प्रोसस, मैकग्रेव-हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. किसी एक छात्र की शैक्षिक और शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के कारणों का अध्ययन कर उनके निवारण के उपायों का वर्णन करे?
2. परामर्श हेतु छात्र के बारे में सूचनाओं के संकलन की विधियां कौन-कौन सी हैं। आप के दृष्टिकोण में कौन सी विधि उत्तम है, उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई. 11 निर्देशन के उपकरण, निर्देशन की प्रविधियां: व्यैक्तिक एवं सामूहिक (Tools of Guidance & Techniques of Guidance: Individual and group)

ईकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ
11.3.1 प्रमापीकृत प्रविधियाँ
11.3.2 अप्रमापीकृत प्रविधियाँ
11.4 सारांश
11.5 शब्दावली
11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.8 निबंधात्मक प्रश्न

11. 1 प्रस्तावना

आधुनिक समय में माता-पिता अपने संतान की आवश्यकताओं तथा उनके गुणों, रूचियों, योग्यताओं आदि का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उनका भविष्य निश्चित करते हैं। व्यक्तियों की वृत्तियां बदलती पायी गयी है। इस प्रकार के व्यक्तियों में किसी एक वृत्ति की कुशलता हासिल नहीं हो पाती। इस प्रकार के व्यक्ति को उचित मार्गदर्शन एवं परामर्श देने हेतु व्यक्ति विशेष का ज्ञान आवश्यक है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के विषय में विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का उपयोग करते हैं। इन प्रविधियों में हम प्रमापीकृत तथा अप्रमापीकृत परिक्षणों की सहायता से व्यक्ति के विषय में अध्ययन करते हैं तथा उनका मार्गदर्शन करते हैं। अतः इन सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों के अन्तर्गत हम विभिन्न प्रकार के परिक्षणों को सभी व्यक्तियों पर करते हैं तथा इन परिक्षणों से प्राप्त सूचनाओं के उपयोग के आधार पर हम प्रत्येक व्यक्ति के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करके उन्हें निर्देशन तथा परामर्श दे सकते हैं।

11. 2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1. सभी प्रकार के उपकरण एवं प्रविधियों के विषय में जो कि, मार्गदर्शन अथवा निर्देशन में उपयोग में आता है जान सकेंगे।
2. इन उपकरण तथा प्रविधियों के उपयोग के विषय एवं उनकी क्रिया-विधि को बता सकेंगे ।
3. आप प्रत्येक परीक्षण को व्यक्तियों के समूह पर आयोजित करके महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित कर सकेंगे।
4. इन उपकरण एवं प्रविधियों के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करके इनके गुण तथा दोषों के विषय में बता सकेंगे।

11. 3 मार्गदर्शन अथवा निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ

आप जानते होंगे कि मार्गदर्शन अथवा निर्देशन में बहुत प्रकार के उपकरण तथा प्रविधियों का प्रयोग करके हम बालक के विषय में सूचनाएँ एकत्रित करते हैं अब आप विभिन्न प्रकार के उपकरण एवं प्रविधि के कितने प्रकार हैं तथा इनमे क्या-क्या विशेषताएँ हैं इसका अध्ययन करेंगे।
सूचनाएँ एकत्रित करने की प्रविधियों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं।

i. प्रमापीकृत प्रविधियाँ
ii. अप्रमापीकृत प्रविधियाँ

11. 3.1 प्रमापीकृत प्रविधियाँ (Standardized Techniques)

प्रमापीकृत प्रविधियों में वे प्रविधियाँ शामिल हैं जिनकी रचना करते समय वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया हो तथा जिनकी वैधता और विश्वसनीयता का पता वैज्ञानिक ढंग से ज्ञात किया गया हो। प्रमापीकृत प्रविधियां निम्नलिखित हैं-

i. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)
ii. व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Test)
iii. अभिक्षमता परीक्षण (Aptitude Test)
iv. उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test)

v. रूचि परीक्षण (Interest Test)

बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)

सन् 1905 में बिने के प्रथम सफल बुद्धि परीक्षण के निर्माण से लेकर अब तक बुद्धि की प्रकृति के सम्बन्ध में विशेषज्ञों ने भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किये जा चुके हैं। सन् 1911 में बिने ने बुद्धि को बोध पर आधारित तथा उद्देश्यपूर्णता व सही निर्णय से निर्धारित खोज परकता के रूप में स्पष्ट किया। इसके पश्चात् स्टर्न ने बुद्धि को परिभाषित किया। **स्टर्न के मतानुसार**- ''बुद्धि एक व्यक्ति की सामान्य क्षमता है जिस से वह चेतनापूर्वक अपने विचारों को नवीन आवश्यकता से समायोजित करता है, वह नई समस्याओं तथा जीवन की परिस्थिति के प्रति सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता है।

आगे आप बुद्धि की विशेषताओं, सिद्धान्त तथा बुद्धि का मापन किस-किस प्रकार किया गया है अध्ययन करेंगे।

बुद्धि की विशेषताएं अथवा लक्षण

i. बुद्धि को जन्मजात योग्यता माना गया है।
ii. लिंग भेद का बुद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
iii. वंशानुक्रम का बुद्धि पर बहुत प्रभाव होता है।
iv. बुद्धि का विकास किशोरावस्था की मध्यअवधि तथा पूरा हो जाता है।
v. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में बुद्धि भिन्न-भिन्न होती है।
vi. बुद्धि मनुष्य को जटिल समस्याओं और परिस्थितियों को हल करने में सहायता करती है।
vii. बुद्धि व्यक्तियों को वातावरण के अनुसार स्वयं को समायोजित करने में सहायता करती है।

बुद्धि का मापन

सर्वप्रथम बिने ने बुद्धि को एक अविभाज्य इकाई माना था इसके पश्चात स्पीयरमैन महोदय ने 1904 में कहा कि बुद्धि दो कारकों- g कारक तथा s कारक से मिलकर बनी है। सामान्य योग्यताकारक) जन्मजात है जो उपलब्धि व स्तर का निर्धारिक है जबकि विशिष्ट योग्यता कारक विभिन्न मानसिक कार्यों हेतु विशिष्ट योग्यताओं का एक समूह होता है। किन्तु सन् 1909 में थार्नडाइक ने स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त का खंडन करते हुए कहा कि बुद्धि असंख्य स्वतंत्र कारकों से बनी है। इन स्वतंत्र कारकों में से प्रत्येक कारक किसी विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का आंशिक प्रतिनिधित्व करता है। इसके कुछ समय बाद सन् 1936 में थर्सटन ने कहा कि बुद्धि न तो मुख्य रूप से सामान्य कारक से

निर्धारित होती है तथा न ही असंख्य सूक्ष्म व विशिष्ट तत्वों से मिलकर बनी होती है। वरन् कुछ प्राथमिक कारको से मिलकर बनी होती है। ये कारक हैं-

आंकिक कारक- (numerical factor) शाब्दिक कारक (verbal factor), स्थानिक कारक (spatial factor), वाकपटुता कारक (word fluency), तार्किक कारक (reasoning factor) तथा स्मृति कारक (memory factor) है।

विशिष्ट बुद्धि परीक्षण

बुद्धि परीक्षण को प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षण दो रूपों में बांटा जा सकता है तथा प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से शाब्दिक बुद्धि परीक्षण तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में बाँटा जा सकता है। सामूहिक बुद्धि परीक्षण सामान्यतया शाब्दिक अथवा पेपर पेंसिल परीक्षण होते हैं तथा अशाब्दिक परीक्षण दो प्रकारों- निष्पत्ति परीक्षण तथा पेपर पेंसिल परीक्षण होते हैं। निर्देशन व परामर्श में उपयोग में आने वाले कुछ बहुप्रचलित विदेशी व भारतीय परीक्षणों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्टैनफोर्ड-बिने निष्पत्ति बुद्धि परीक्षण

इसका निर्माण अलफ्रेड बिने ने सन् 1905 में किया। यह 1911 में साइमन से संशोधित किया इसे बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण के नाम से जाना जाता है। सन् 1937 में इसे स्टेनफोर्ड विश्वस्कूल में टरमैन तथा मेरिल से पुनः संशोधित किया गया। अन्ततः इसको सन् 1962 में इंग्लैण्ड में संशोधित किया गया। भारत में इसे मनोविज्ञान ब्यूरो से स्वीकृत किया गया तथा हिन्दी मं इसका रूपान्तरण भी किया गया। यह एक व्यक्तिगत निष्पत्ति परीक्षण हैं जो 2 वर्ष से लेकर युवावस्था के व्यक्तियों की बुद्धि को बुद्धिलब्धि के रूप में मापता है।

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु (M A)} \times 100}{\text{वास्तविक आयु (C A)}}$$

यह बुद्धिलब्धि सापेक्षिक रूप से स्थिर होती है।

90 -100 IQ औसत बुद्धि प्राप्तांको को इंगित करती है।

वैशलर-बैलवन बुद्धि मापनी

इस मापनी के दो भाग- शाब्दिक मापनी व निष्पत्ति मापनी होते हैं। प्रत्येक भाग में 5 उपपरीक्षण हैं। यह परीक्षण प्राप्तांकों को बुद्धिलब्धि के रूप में प्रदर्शित करता है। इस परीक्षण के मानक 10 वर्ष के आयु से अधिक के व्यक्तियों पर निर्मित किए गये है। लेकिन इस मापनी का मुख्यतः अनुप्रयोग 20-60 वर्ष के

लोगों के लिए है। जबकि इसे और भी आयु के लोगों पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। किन्तु 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के प्राप्तांक अधिक विश्वसनीय नहीं होते है। यह मूल मापनी सन् 1955 में संशोधित एवं पुनः प्रमापीकृत की गयी और इसको वैशलर वयस्क बुद्धिमापनी नाम से प्रकाशित किया गया। इसके पश्चात् इस परीक्षण का एक और संशोधन बच्चों हेतु किया गया इस वैशलर बुद्धि मापनी में 10 उप-परीक्षण है। इसका निर्माण मूल मापनी की तुलना में और अधिक अच्छी प्रकार से किया गया है। इससे 5-15 वर्ष की आयु वाले बच्चों की बुद्धि का मापन किया जाता है। इससे प्राप्त प्राप्तांको को विचलन 'बुद्धिलब्धि प्राप्तांक' के नाम से जाना जाता है। जिसका मध्यमान 100 तथा मानक विचलन 15 है।

भाटिया बैट्री बुद्धि परीक्षण

इस व्यक्तिगत, निष्पत्ति बुद्धि परीक्षण का निर्माण डा0 सी.एम. भाटिया से किया गया। यह परीक्षण 12 वर्ष एवं इससे अधिक आयु के बच्चों की बुद्धि का मापन करता है। इस परीक्षण में 5 उप-परीक्षण होते हैं।

1. कोह ब्लाक डिजाइन परीक्षण
2. पासएलांग परीक्षण
3. पैटर्न-ड्राइंग परीक्षण
4. स्मृति परीक्षण।
5. पिक्चर काम्पलिशन परीक्षण

प्रत्येक उप-परीक्षण में सात एकांश हैं। उनमें से प्रत्येक एक अलग योग्यता को मापता है। किन्तु सम्पूर्ण बैट्री सामान्य बुद्धि का मापन करती है। इससे प्राप्त प्राप्तांक बुद्धिलब्धि प्राप्तांक कहे जाते हैं। यह अत्यधिक प्रसिद्ध व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण है जिसका उपयोग भारत में सर्वत्र परामर्श एवं निर्देशन हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त भारत एवं विदेशों में कई समूह बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया है।

विदेशी परीक्षण जैसे-

i. ओटीस स्वयं प्रशासित मानसिक योग्यता परीक्षण (हाईस्कूल बालकों हेतु)
ii. कैटल कल्चर फेयर बुद्धि परीक्षण
iii. रेवन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस बुद्धि परीक्षण

भारतीय परीक्षण जैसे

i. जलोटा सामान्य मानसिक योग्यता सामूहिक परीक्षण (13-16 वर्ष आयु के बच्चे हेतु)
ii. प्रयाग मेहता सामान्य बुद्धि परीक्षण।
iii. एम0सी0 जोशी बुद्धि परीक्षण।

व्यक्तित्व परीक्षण - परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व परीक्षणों का प्रयोग शुरूआत से हो रहा है।

व्यक्तित्व का अर्थ एवं प्रकृति

मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व को परिभाषित किया है। जैसे- गेस्टाल्ट ने इसे समग्र रूप में देखा उनके अनुसार व्यक्तित्व एक समग्र इकाई है। जो कि जटिल और विशलेषण न करने योग्य है।

मनोवैज्ञानिको के एक समूह ने इसे दूसरे शब्दों में परिभाषित किया- ''व्यक्तित्व किसी व्यक्ति की दूसरों के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रियाएं हैं।''

तीसरे समूह ने व्यक्तित्व को शीलगुणों के रूप में परिभाषित किया। यह दृष्टिकोण व्यक्तित्व को विशलेषण के योग्य तथा मापने योग्य बनाता है।

परामर्श तथा निर्देशन में रूचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त को अपने लिए अत्यधिक सहायक पाया वास्तव में अधिकांश व्यक्तित्व सिद्धान्त (कारक सिद्धान्तों तथा गतिशील सिद्धान्तों के अलावा) एक दुसरे से अलग नहीं है।

कारक सिद्धान्त अथवा शीलगुण सिद्धान्त व्यक्तित्व को कुछ निश्चित विमाओं एवं कारको का एकीकरण के रूप में परिभाषित करते हैं।

यह दृष्टिकोण व्यक्तित्व की शीलगुणों अथवा कारकों के रूप में मापने योग्य बनाता है। इस कारण व्यक्तित्व के इस उपागम ने निर्देशन के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

कैटल का विश्वास था कि व्यक्तित्व को कुछ विशिष्ट गुणों प्रकारों अथवा शीलगुणों के रूप में परिभाषित किया जाए जो मापने योग्य है। इस प्रकार एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ तरीके से किया जा सकता है।

आइसेन्क एवं कैटल ने व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मात्रात्मक प्रविधियों का इस्तेमाल किया।

निर्देशनकर्त्ताओं का सर्वाधिक ध्यान व्यक्तित्व के गत्यात्मक सिद्धान्तों की ओर आकर्षित हुआ। व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त तथा स्वयं सिद्धान्त ने परामर्श एवं निर्देशन को प्रभावित किया जो कि महत्वपूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त है। रोजर के सिद्धान्त के आत्मन ने परामर्श एवं निर्देशन को मजबूत आधार प्रदान किया। फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त में आनुवांशिक संवेगों अथवा मूल प्रवृत्तियों के महत्व, व्यक्ति का मनोलैंगिक विकास व्यक्तित्व के विकास में उसके प्रारंभिक अनुभवों, जागरूकता के स्तरों (चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन) और इदं, अहं व अत्यहं घटकों पर जोर दिया। अचेतन तथा रक्षात्मक युक्तियों के संप्रत्यय मनोविश्लेषणात्मक थिरैपी हेतु महत्वपूर्ण है।

व्यक्तित्व का मापन

परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व को नैदानिक बनाने का कारण समस्याओं को छांटना और बेहतर समायोजन करना है। फिशन्ट एवं हन्ना (1931) और कार्नर (1946) ने कुसमायोजन के कई उदाहरणों को प्रतिपादित किया जो प्रथम दृष्टतया शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं। कमजोर रूप से समाकलित व्यक्ति को शैक्षिक और व्यावसायिक स्थितियों में समायोजित करने में परेशानी होती है इसलिए उन्हें या तो छाँटकर निकाला जाता है या उन्हें अधिक प्रभावी समायोजन बनाने में मदद की जाती है। इस कारण परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व का मापन महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षण और मापनी का निर्माण किया गया। व्यक्तित्व परीक्षणों को निम्नलिखित दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

प्रक्षेपीय परीक्षण

इस प्रकार के दो परीक्षण अतिलोकप्रिय है।

i. **रोशा स्याही धब्बा परीक्षण**

इस परीक्षण का निर्माण हरमन रोशा ने किया था। इस परीक्षण का निर्माण मनोचिकित्सकीय डिसआर्डर का निदान करने के लिए किया जाता है। लेकिन वर्तमान में इसका उपयोग सामान्य व्यस्कों, किशोरों एवं बच्चों के लिए भी किया जाता है। इस परीक्षण में कुल 10 कार्ड होते हैं। जिसमें से प्रत्येक पर एक सममित मसि लक्ष्य बना होता है। प्रत्येक कार्ड व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किया जाता है। ये कार्ड एक-एक करके एक निश्चित क्रम में व्यक्ति के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं तथा पूछा जाता है कि मसि लक्ष्य में उसे क्या दिखाई दे रहा है या मसि लक्ष्य किस आकृति जैसा लग रहा है। व्यक्ति के दिये गये उत्तरों के आधार पर उसके व्यक्तित्व के संबंध में निष्कर्ष ज्ञात किये जाते हैं। प्रतिक्रियाओं को स्थिति (W, D, d, or dd i.e. **समग्र**, अंश, लघु अंश अथवा मिनट विवरण), रूप एवं गति/चलन के रूप में रिकार्ड किया जाता है। यह परीक्षण व्यक्ति के बौद्धिक क्रियाविधि, सांवेगिक नियंत्रण, समायोजन, रूचियों, चिन्ता इत्यादि के बारे में सूचना प्रदान करता है।

ii. **प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण**

प्रक्षेपीय ढंग से व्यक्तित्व मापने के इस लोकप्रिय परीक्षण का निर्माण सन् 1935 में सी0डी0 मार्गन तथा एच0ए0 मुरे ने किया था। इस परीक्षण की आधारभूत मान्यता यह है कि जब व्यक्ति के सम्मुख कोई अस्पष्ट सामाजिक परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उससे उस परिस्थिति के अनुरूप कोई काल्पनिक कहानी बनाने के लिए कहा जाता है तो उस कहानी के विभिन्न पात्रों से वह व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त कर देता है।

कहानी के कथानक से उस व्यक्ति की आवश्यकताओं, चिंताओं, इच्छाओं, विचार प्रतिक्रियाओं, परिपक्कता स्तर, आत्म प्रतिमा, सामाजिक समायोजन, दृष्टिकोण आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस परीक्षण में कुल 38 कार्ड होते हैं। एक-एक करके प्रत्येक कार्ड को दिखा व्यक्ति से कहानी बनाने को कहा जाता है इसके पश्चात् प्रयोज्यों से बनायी गयी कहानियों का अंकन व विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व का आंकलन करने का प्रयास किया जाता है। यह परीक्षण भारत में परामर्शदाताओं व निर्देशनकर्त्ताओं के बीच काफी लोकप्रिय है।

रोशा परीक्षण तथा प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण में मुख्य अन्तर इस बात का है कि रोशा परीक्षण की सहायता से व्यक्तित्व की संरचना तथा संगठन की जानकारी करने का प्रयास किया जाता है। जबकि प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण से व्यक्तित्व के गुणों को ज्ञात करने की कोशिश की जाती है।

अप्रक्षेपीय परीक्षण

- **एडवर्ड्स व्यक्तिगत पसंद अनुसूची**

  इसका निर्माण सन् 1954 में मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन के तत्वाधान में किया गया इसका भारतीय रूपान्तरण सन् 1966 में डॉ0 आर0पी0 भटनागर से शोध हेतु किया गया था। यह मुरे (1938) के बताए गये 15 व्यक्तित्व माँगों को मापता है। यह परीक्षण हाईस्कूल एवं 12 वर्ष की आयु से अधिक के व्यक्तियों पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यह परीक्षण की परामर्श एवं निर्देशन में प्रमुख रूप से इस्तेमाल किया जाता है।

- **बेल समायोजन मापनी**

  स्टेनफोर्ड कालेज प्रेस से इस मापनी का निर्माण व्यक्तिगत समायोजन को चार क्षेत्रों (i) गृह (ii) स्वास्थ्य (iii) सामाजिक सम्बन्ध एवं (iv) सांवेगिक व्यवहार में जानने हेतु किया गया। यह छात्रों हेतु भी किया गया है। व्यस्कों के लिए भी इसका एक प्रारूप व्यवसायिक परामर्श हेतु किया जाता है।

- **थर्सटन टेम्परामेंट मापनी**

  यह मापनी हाईस्कूल छात्रों के व्यक्तित्व के मापन हेतु प्रयोग की जाती है। इसमें कुल 140 एकांशों का सेट होता है। जो सांवेगिक अभिव्यक्ति के 7 विविध पक्षों को मापता है। यह सात पक्ष हैं - (1) सक्रियता (2) विगोरस (3) इम्पलसिव (4) प्रभावी (5) स्थायी (6) सामाजिक (7) प्रतिवर्ती

कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण।

-एसीडेंस-सबमिशन प्रतिक्रिया अध्ययन

-व्यक्तित्व प्रश्नावली (बच्चों हेतु)

-हाईस्कूल व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली

रूचि परीक्षण

रूचि का अर्थ- गिलफोर्ड के शब्दों में "रूचि किसी क्रिया वस्तु या व्यक्ति पर ध्यान देने, उस से आकर्षित होने, उसे पसन्द करने तथा उससे सन्तुष्टि पाने की प्रवृत्ति हैं"

रूचियों का मापन

रूचियों को ज्ञात करने या मापन करने की विधियों के आधार पर रूचियों को चार भागों में बांटा जा सकता है। सुपर के अनुसार रूचियों के चार प्रकार हैं -

i. अभिव्यक्त रूचियाँ
ii. प्रदर्शित रूचियाँ
iii. आंकलित रूचियाँ
iv. सूचित रूचियाँ

इनमें से प्रथम तीन प्रकार की रूचियों की जानकारी, अवलोकन साक्षात्कार व्यक्ति के से लिखित बातों, चेकलिस्ट, प्रश्नावली या सम्प्राप्ति परीक्षणें जैसे मापन उपकरणें जो किन्हीं अन्य उद्देश्यों के लिए बनाये गये होते हैं, इनके प्रयोग से प्राप्त परिणामों की व्याख्या करके अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है जबकि चतुर्थ प्रकार की रूचियों का मापन विशेष रूप से तैयार किये गये प्रमापीकृत रूचि सूचियों के से किया जाता है।

व्यक्ति की रूचि का मापन करने हेतु कई रूचि मापनी का निर्माण किया गया जो कि विश्वसनीय है।

व्यवसायिक रूचियों का मापन करने के लिए-स्ट्रांग वोकेशनल रूचि बैंक तथा कुडर पसन्द रिकार्ड दो महत्वपूर्ण मापनियाँ विश्व में सभी जगह इस्तेमाल की जाती हैं।

स्ट्रांग वेकेशनल रूचि बैंक

इस रूचि मापनी का निर्माण व संशोधित प्रकाशन 1959 में स्टेनफोर्ड कालेज प्रेस से प्रकाशित किया गया। तत्पश्चात् इसमे समय-समय पर संशोधन किए गये। वर्तमान में सन् 1966 में किया गया संशोधन ही

सर्वत्र प्रयोग में लाया जा रहा है। यह स्कूली छात्रों एवं रोजगारपरक युवाओं की रूचि मापने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से 50 से अधिक व्यवसायों को मापा जाता है।

कुडर पसन्द रिकार्ड

(साइंस रिसर्च एसोसिएट्स 1939, व्यवसायिक रूप 1948, लघु औद्योगिक रूप 1957)

यह हाईस्कूल छात्रों के लिए तैयार किया गया प्रसिद्ध रूचि मापनी है। इसका प्रयोग व्यस्कों एवं कक्षा 8 के बालकों हेतु भी किया जा सकता है। इसमें 168 एकांश व्यवसायों के आधार पर पसन्द के रूप में व्यवस्थित होते हैं। यह दस प्रकार की रूचियों का मापन करता है। यह बाध्य-चयन प्रकार की मापनी है। इसका व्यावसायिक रूप रूचियों के निम्नलिखित दस क्षेत्रों का मापन करता है।

(1) आउटडोर (2) यांत्रिक (3) संगणकीय (4) वैज्ञानिक (5) परसयुएसीव (6) आर्टिस्टिक (7) साहित्यिक (8) संगीतमय (9) समाज सेवा (10) क्लैरिकल

चटर्जी अभाषीय पसन्द रिकार्ड

यह एक भारतीय अभाषीय परीक्षण हैं जिसमें 150 एकांश हैं प्रत्येक एकांश में तीन स्टिक चित्रों (तीन व्यवसायों की क्रियाविधि को प्रदर्शित करते हुए) में से व्यक्ति को एक चुनना होता है। यह 10 प्रकार की रूचियों का मापन करता है।

(1) आर्टिस्टिक (2) साहित्यिक (3) वैज्ञानिक (4) चिकित्सकीय (5) कृषि

(6) तकनीकी (7) हस्तकला (8) आडटडोर (9) खेलकूद (10) घरेलू

उपर्युक्त परीक्षणें के अन्तर्गत भारत में कुछ रूचि परीक्षण उपलब्ध है। उनमें से आर0पी0 सिंह, एस0पी0 कुलश्रेष्ठ, टी0एस0 सोढ़ी, एस0 भटनाकर, एम0एन0 पलसाने तथा साधना शर्मा से निर्मित कुछ परीक्षणों का उपयोग भी परामर्श एवं निर्देशन में होता है। व्यक्ति के रूचियों के विषय में प्राप्त जानकारी उसके आत्मप्रत्यय को समझने में सहायक है। जिससे उस व्यक्ति की शैक्षिक व्यवसायिक और व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान परामर्श एवं निर्देशन से किया जाता है।

अभिक्षमता परीक्षण

सुपर के अनुसार 'अभिक्षमता' शब्द दो प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है-

i. अभिक्षमता शीलगुण एवं क्षमताओं का संयोग है जो कि किसी भी व्यक्ति के लिए किसी भी क्षेत्र अथवा नौकरी में सफलता अर्जित करने के लिए अनिवार्य है।

ii. दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अभिक्षमता अलग प्रकार की एकाकी विशेषता है जो कि विभिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों तथा व्यक्ति के पेशे के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अभिक्षमता का मापन

मनोवैज्ञानिको ने बहुत सारे विशेष मानसिक क्षमताओं की संख्या का निर्धारण किया। इस क्षेत्र में टी0एल0 केली, इ0एल0 थर्सटन, वर्नन गिलफोर्ड तथा फ्रेंच का मुख्य योगदान रहा है। परन्तु थर्सटन का प्राथमिक मानसिक क्षमताएं का विशेष योगदान व्यक्ति विशेष की अभिक्षमताओं का मापन करने में रहा तथा इसे सर्वत्र स्वीकृति भी मिली। बहुत से परीक्षणों का निर्माण किया गया थर्सटन से ज्ञात विशेष अभिक्षमताओं के मापने में जो सहयोग प्रदान कर सके।

प्राथमिक मानसिक अभिक्षमता का शिकागो परीक्षण छः अभिक्षमताओं का मापन करता है जो विश्व में सर्वत्र प्रयोग में लाया जाता है जो इस प्रकार निम्नलिखित है- शाब्दिक अर्थ स्पेस, शब्द प्रवाह, तर्क, स्मृति, संख्या

इन परीक्षणों में से कुछ प्रमाणीकृत अभिक्षमता परीक्षण इस प्रकार है।

प्रोफीसीएन्सी परीक्षण (Profeciency Test)

यह एक प्रकार का सम्प्राप्ति परीक्षण है। इसका प्रयोग अभिक्षमता परीक्षण की तरह किसी भी संबंधित क्रियाकलाप के लिए किया जाता है। इस प्रकार से अभिक्षमता का अर्थ है किसी भी व्यक्ति की कार्य कौशल को देखते हुए तथा उससे संबंधित और कार्यों में उसकी सफलता का मापन करके हम उस व्यक्ति के सफलता अर्जित करने की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

प्रकार के कुछ प्रमापीकृत परीक्षण निम्नलिखित हैं-

i. द कोओपेटीव अचीवमेन्ट परीक्षण
ii. द इवा टेस्टस ऑफ एजुकेशनल डेवलपमेन्ट।
iii. द ब्लैकस्टोन स्टीनोग्रैफी टेस्ट।
iv. द एस.आर.ए. टाइपिंग स्किल्स टेस्टस।
v. द परडयु वोकेशनल टेस्टस।

अभी भारत में इस प्रकार के परीक्षण उपलब्ध नहीं है।

क्लिरीकल अभिक्षमता परीक्षण

सुपर ने इस परीक्षण की प्रकृति के विषय में व्याख्या की है। वह यह मानते हैं कि अभिक्षमता, बुद्धि, आंकिक तथा शाब्दिक क्षमताएँ, गति तथा एक्युरिसी (परिशुद्धता), कौशल, मनोशारीरिक कौशल या हस्त कौशल का सम्मिश्रण है। नौकरी में सफलता हेतु भाषा तथा अंकगणित में व्यवसायिक दक्षता अति आवश्यक है। बुद्धि के सन्दर्भ में उन्होंने यह कहा वास्तव में यह नौकरी की सफलता के लिए आवश्यक कारक- ''न्यूनतम वांछनीय बुद्धिलब्धि 95 से 100'' है। कुछ अभिक्षमता परीक्षण निम्नलिखित है-

मिनेसोटा कार्पोरेशन कलर्केरियल परीक्षण

सन् 1959 में मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन से प्रकाशित परीक्षण का उपयोग 17 वर्ष आयु की लड़कियों एवं 19 वर्ष आयु के लड़कों के लिए किया जाता है। यह इससे अधिक आयु के बच्चों हेतु भी उपयोग में लाने योग्य है। यह अंक और नाम जांचने के माध्यम से आंकिक और शाब्दिक योग्यतायें मापता है। यह बहुतायत में इस्तेमाल होने वाला परीक्षण है।

हस्तकौशल परीक्षण- यह परीक्षण हस्त कौशल का मापन करता है।

यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण - यांत्रिक अभिक्षमता मापने का सार्थक प्रयास सन् 1928 में कॉक्स ने इंग्लैंड में किया था और इसके पश्चात 1930 में पैटरसन व उसके सहयोगियों ने मिनेसोटा कालेज में इसका निर्माण किया। मैक क्वैरी यांत्रिक योग्यता परीक्षण और स्टैनक्विस्ट असैम्बली परीक्षण प्राचीन यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षणों में से एक है। यह प्रथम विश्वयुद्ध के समय बनाया गया था। यांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित चित्र और प्रश्नों को समाहित किये हुए बैनेट यांत्रिक अवबोध परीक्षण निर्मित किया गया जो पूरे विश्व में प्रचलित है।

व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षण - इसके अन्तर्गत इंजीनियरिंग, मेडिकल, कानून एवं शिक्षण परीक्षण आते हैं, इनका निर्माण उपर्युक्त व्यवसायों में बालक को शिक्षा हेतु चयनित करने हेतु किया गया। शैक्षिक परीक्षण ब्यूरों का पूर्व इंजीनियरिंग मापनी और इंजीनियरिंग तथा भौतिक विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण (मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन, 1943) का प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में इंजीनियरिंग में छात्रों के चयन हेतु बहुत उपयोग होता है। कैलीफोर्निया, कोलम्बिया, मिनेसोटा, आइवा इत्यादि कालेज में भी कानून की शिक्षा हेतु बालकों को चयनित करने हेतु परीक्षणों का निर्माण किया गया। शैक्षिक परीक्षण ब्यूरो ने भी कानून अभिक्षमता का निर्माण किया। इनमें से स्टैनफोर्ड कानून अभिक्षमता परीक्षण उच्च कोटि का परीक्षण है।

मेडिकल कालेज में बालकों के प्रवेश हेतु सन् 1944 में जार्ज वाशिंगटन कालेज से, मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन से निर्मित नर्सिंग प्रवेश परीक्षा कार्यक्रम तथा 1930 में अमेरिकन मेडिकल कालेज संगठन से निर्मित मॉस मेडिकल अभिक्षमता परीक्षण निर्मित किया गया। सन् 1930 में कॉक्स-आरलियन्स शिक्षण योग्यता नैदानिक परीक्षण निर्मित किया गया।

इसमें 5 उपपरीक्षण हैं- सामान्य सूचना, शिक्षण विधियों का ज्ञान, व्यावसायिक पाठ्य वस्तु को सीखने की योग्यता, शैक्षिक पठनयोग्य सामग्री और शैक्षिक समस्याओं के हल का अवबोध। उपर्युक्त परीक्षण भारत में भी निर्मित किये गये हैं।

परामर्श एवं निर्देशन में DAT, GATB, CZAS, MAT, FACT इत्यादि परीक्षण का उपयोग होता है इनमें से GATB तथा DAT विशेष रूप से लाभदायक है।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रमापीकृत विधियों में कितने प्रकार के परीक्षण आते हैं तथा उनका नाम बताइए?
2. बुद्धि के कितने सिद्धान्त है तथा किन्ही दो बुद्धि परीक्षण के नाम बताइए?
3. व्यक्तित्व मापन हेतु कितने प्रकार के परीक्षण हैं किन्ही दो परीक्षण के नाम बताइए?
4. रूचि कितने प्रकार की होती है। इनके नाम बताइए?
5. अभिक्षमता के मापन हेतु किन-किन परीक्षणों का उपयोग करते हैं।

11. 3.2 अप्रमापीकृत विधियाँ

प्रश्नावली- प्रश्नावली प्रश्नों की वह लम्बी सूची होती है जो व्यक्ति से सूचनाएँ एकत्रित करने के लिये तैयार की जाती है तथा यह विधि अनुसंधान कार्य में भी प्रयुक्त होती है।

''सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से अर्थ है वह साधन या प्रविधि है जो किसी व्यक्ति से एक प्रश्नों का फार्म प्रयोग करके उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त होती है।''

प्रश्नावली के प्रकार

पी0वी0 यंग ने प्रश्नावली को दो वर्गों में बाँटा है।

i. रचित प्रश्नावली
ii. अरचित प्रश्नावली

जॉन बेस्ट ने प्रश्नावली को दो वर्गों में बाँटा है।

i. बन्द फार्म
ii. मुक्त फार्म

जे0एस0 वालिया ने अपनी पुस्तक शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन में प्रश्नावली के तीन वर्ग बताये हैं।

i. प्रश्न-सूचक रूप
ii. सूची रूप
iii. चेक-लिस्ट फर्म

उत्तम प्रश्नावली की विशेषताएँ

ये बहुत व्यापक होती है ताकि संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की जा सकें।

- प्रश्नावली में वस्तुनिष्ठ प्रश्न शामिल होने चाहिए।
- प्रश्नावली में प्रश्नों का क्रम उचित हो। यह क्रम सामान्य से विशिष्ट तथा सरल से जटिल की ओर होना चाहिए।
- प्रश्नों की व्यवस्था वर्गों के रूप में हो ताकि सही और आसान अनुक्रियाओं को प्राप्त किया जा सकें।
- प्रश्नावली में निर्देश स्पष्ट और पूर्ण दी जानी चाहिए।
- प्रश्नावली के अंकों का सारिणीकरण सरल होना चाहिए।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख किसी अध्यापक से अवलोकन किया गया किसी बालक के व्यवहार और व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ वर्णन है। यह रिकार्ड नियमित अवलोकन का परिणाम है जो कि बिना तैयारी के किया जाता है। इस प्रकार इसे अनौपचारिक अवलोकन भी कहते हैं।

आकस्मिक निरीक्षण के प्रकार

i. **पहला प्रकार-** इस प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के अन्तर्गत बालक में व्यवहार का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है और इसमें किसी भी तरह के विचारों का समावेश नहीं किया जाता।
ii. **दूसरा प्रकार-** इस प्रकार में बालक के व्यवहार के वर्णन में साथ-साथ संक्षिप्त सी टीका-टिप्पणी भी लिखी होती है।

iii. **तीसरा प्रकार-** इस प्रकार में बालक के व्यवहार का विवरण एवं टीका-टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का वर्णन भी होता है।

iv. **चौथी प्रकार-** इस प्रकार में व्यवहार का वर्णन उसमे गुणों व दोषों के साथ होता है तथा भावी जीवन में उपचार हेतु सुझावों का भी उल्लेख होता है।

अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के गुण

i. **वस्तुनिष्ठता-** एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में वस्तुनिष्ठता का होना अनिवार्य है। एक आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख को अध्यापन की रूचियों, अरूचियों, विद्वेष तथा पक्षपात से मुक्त होना चाहिए।

ii. **पूर्ण चित्र-** एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह किसी व्यक्ति के बारे में या घटना के बारे में पूर्ण चित्र प्रस्तुत करें।

iii. **पृष्ठभूमि की जानकारी-** इसकी यह विशेषता होनी चाहिए कि वह व्यक्ति या बालक के बारे में पूर्ण पृष्ठभूमि की जानकारी प्रस्तुत करें।

iv. **घटनाओं का विवरण तथा क्रम-** इसमें दर्ज घटनाएं क्रमानुसार होनी चाहिए तथा उनका विवरण भी क्रम में हो।

v. **प्रमुख सूचनाएं-** एक अच्छे अभिलेख की यह भी विशेषता होती है कि उसमें केवल प्रमुख सूचनाएं ही रिकार्ड की जानी चाहिए उचित निदान तभी संभव है यदि केवल संबंधित तथा अर्थपूर्ण घटनाओं का ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में उल्लेख किया गया हो।

आत्मकथा

आत्मकथा में व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों, उपलब्धियों, रूचियों, इच्छाओं, घटनाओं प्रतिक्रियाओं आदि का वर्णन वास्तविकता के पुट के साथ करता है, इस विधि में व्यक्ति को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वह अपने अनुभवों तथा जीवन की घटनाओं को जिस प्रकार चाहे लिख सकता है। इस प्रकार यह एक आत्मनिष्ठ विधि है।

आत्मकथा के प्रकार

i. निर्देशित आत्मकथा।

ii. अनिर्देशित आत्मकथा।

iii. मिश्रित आत्मकथा

आत्मकथा के निम्नलिखित दो प्रकार भी बताये गये हैं-

i. व्यक्तिगत इतिहास।
ii. निर्देशित आत्मकथा।

निर्धारण मापदंड

निर्देशन कार्यक्रम में निर्धारण मापदंड का प्रयोग बहुत अधिक लोकप्रिय हो रहा है। इस विधि से हम किसी विशेष लक्षण के बारे में मत की अभिव्यक्ति को प्रणालीबद्ध करते हैं।

निर्धारण, निर्देशित अवलोकन है- रूथ स्ट्रैंग इस विधि से व्यक्तित्व तथा निष्पत्ति का मापन होता है। यह भी एक आत्मनिष्ठ विधि है। यह विधि कम विश्वसनीय एवं वैध है। आजकल इस विधि का प्रयोग औद्योगिक संस्थानों में कार्य कर रहे व्यक्तियों के वेतन में वृद्धि तथा पदोन्नति भरने के लिये किया जा रहा है।

निर्धारण मापदंड के प्रकार

- संख्यात्मक मापदंड
- वर्णनात्मक मापदंड
- पदक्रम मापदंड
- रेखांकित मापदंड
- समूह-प्रतिशत मापदंड
- युगल-तुलना मापदंड
- बलात-चयन मापदंड
- संचयी-अंक मापदंड

व्यक्ति अध्ययन

निर्देशन प्रक्रिया में व्यक्ति का इतिहास भी परामर्शदाता की बहुत सहायता करता है। व्यक्ति इतिहास में किसी व्यक्ति के बहुत से महत्वपूर्ण पक्षों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण होता है।

व्यक्ति अध्ययनों के प्रकार

व्यक्ति अध्ययन निम्न प्रकार के होते हैं-

i. औपचारिक अध्ययन
ii. अनौपचारिक अध्ययन

व्यक्ति अध्ययन की रूपरेखा

किसी भी व्यक्ति अध्ययन को करते समय उसकी रूपरेखा से ही तय कर लेनी चाहिये। इसकी रूपरेखा में निम्नलिखित सूचनाओं को शामिल किया जाना आवश्यक है-

i. उद्देश्य
ii. सामान्य सूचनाएँ
iii. पारिवारिक इतिहास
iv. व्यक्तित्व संबंधी सूचनाएं
v. शैक्षिक इतिहास
vi.स्कूल इतिहास
vii.व्यावसायिक इतिहास
viii.सामाजिक इतिहास

समाजमिति

समाजमिति से व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक संबंधी का पता लगाया जाता है। समाजमिति एक समूह के सदस्यों के बीच आपसी संबंधी को मापना है अर्थात् इस विधि से यह ज्ञात होता है कि कौन सा बालक या व्यक्ति अपने समूह में अपना स्थान नहीं बन पाया। ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्ति या बालक की सामाजिकता की भावना को विकसित किया जा सकता है।

समाजमिति विधियों के प्रकार

राईटस्टोन, डस्टमैन और राबिन्सन ने सामाजमिति की निम्नलिखित तीन विधियों का उल्लेख किया है-

i. किसी एक व्यक्ति से यह पूछा जा सकता है कि वह अपने समूह में से कितने व्यक्तियों के साथ एक दिये हुए मापदंड के आधार पर रहना पसंद करेगा।
ii. किसी एक व्यक्ति से अपने वर्ग के सभी सदस्यों का एक पूर्व-निर्धारित मान के अनुसार क्रम निर्धारण करने के लिये कहा जायेगा।
iii. किसी एक व्यक्ति से अपने समूह के ऐसे सदस्यों को चुनने के लिये कहा जाये जिनमे कुछ विशेषताएँ दिखाई देती हों।

अवलोकन

अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है- इस विधि से व्यक्ति की प्रतिदिन की क्रियाओं एवं व्यवहारों का निश्चित समय पर एवं समय-समय पर विवरण इकट्ठा किया जाता है। अवलोकन विधि बहुत ही पुरानी विधि है।

अवलोकन के प्रकार

1. जर्सिल्ड और मीग्स का वर्गीकरण
    i. स्वतंत्र अवलोकन
    ii. नियंत्रित अवलोकन

iii. अर्ध-नियंत्रित अवलोकन

2. बोनी और हैम्पिलमैन का वर्गीकरण
   i. आकस्मिक अवलोकन
   ii. नियंत्रित अवलोकन
3. स्थिति के अनुसार वर्गीकरण
   i. प्रत्यक्ष अवलोकन
   ii. अप्रत्यक्ष अवलोकन
4. प्रमापीकृत तथा स्वाभाविक अवलोकन
5. बाहरी तथा आन्तरिक अवलोकन
6. निर्देशित या उपपत्ति अवलोकन
7. प्रमापीकृत और स्वाभाविक अवलोकन

अवलोकन के सिद्धान्त

1. एक समय में एक ही बालक का अवलोकन
2. लम्बे समय तक अवलोकन
3. पूर्ण परिस्थिति का अवलोकन

संचित अभिलेख

बालकों को परामर्श और निर्देशन प्रदान करने के लिये बालक से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को इकट्ठा किया जाता है। उसे इकट्ठा करके जिस रूप में रखा जाता है उसे हम संचित अभिलेख कहते हैं।

''संचित अभिलेख- सूचनाओं का वह अभिलेख है जिनका संबंध बालक के मूल्यांकन से होता है और जिसे एक कार्ड पर लिखकर एक ही स्थान पर रखा जाता है।''-**ऐलन**

संचित अभिलेख पत्र की विशेषताएँ

इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(1) सरलता (2) रख-रखाव (3) वस्तुनिष्ठता (4) शब्दों और संकेतों का अर्थ पूर्ण प्रयोग (5) पूर्ण सूचनाएँ (6) सत्य सूचनाएँ (7) गोपनीयता (8) सामूहिक मूल्यांकन पर आधारित (9) समय-समय पर मूल्यांकन (10) निरंतरता (11) लचीलापन

संचित अभिलेख के उद्देश्य

1. दोहरे प्रयासों को रोकना
2. लाभकारी सूचनाएँ प्रदान करने के लिये
3. समस्या क्षेत्रों को चिन्हित करने के लिए
4. वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के लिये
5. बालक के लिये संचित अभिलेख

साक्षात्कार

अन्य विधियों की तरह साक्षात्कार भी निर्देशन और परामर्श में प्रयोग की जाने वाली सूचनाओं को इकट्ठा करने की एक मुख्य तथा महत्वपूर्ण विधि है।

साक्षात्कार को परामर्श का एक साधन भी कहा जाता है। वास्तव में साक्षात्कार विधि निर्देशन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। परामर्श में भी साक्षात्कार विधि को सबसे अधिक मूलभूत और निर्भर रहने योग्य विधि माना जाता है।

साक्षात्कार के स्वरूप

एक वर्गीकरण के अनुसार साक्षात्कार को उसके स्वरूप के आधार पर निम्नलिखित चार प्रकार का बताया गया है-

1. संरचित साक्षात्कार
2. आरचित साक्षात्कार
3. केन्द्रित साक्षात्कार
4. पुनरावृत्ति साक्षात्कार

साक्षात्कार के उद्देश्य

- किसी भी प्रकार के साक्षात्कार के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं-
- परामर्श प्राप्त कर्त्ताओं के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिये जान-पहचान करना।
- व्यक्ति की शैक्षिक, व्यावसायिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्या हल करने तथा समायोजन प्राप्त करने में सहायता देना।
- साक्षात्कार विधि से भावनाओं, अभिवृत्तियों तथा विचारों की जानकारी प्राप्त करना।
- मनोविश्लेषण-साक्षात्कारों से व्यक्तियों का उपचार करना।
- साक्षात्कार से व्यक्तियों की विभिन्न समस्याओं के संभावित कारणों का निदान करना।

अभ्यास प्रश्न

6. अप्रमापीकृत विधियाँ कितने प्रकार की होती है नाम बताइए?
7. निर्धारण मापदंड कितने प्रकार का होता है नाम बताइए?
8. समाजमिति से किस चीज का पता लगाया जाता है?
9. अवलोकन से क्या तात्पर्य है?
10. संचित अभिलेख की विशेषता बताइए?
11. साक्षात्कार के कितने प्रकार होते हैं?

11. 4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि बालकों के परामर्श एवं निर्देशन में किन-किन उपकरणों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरण एवं प्रविधियों के कितने प्रकार हैं तथा इन अप्रमापीकृत तथा प्रमापीकृत प्रविधियों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों की सहायता से हम प्रत्येक बालक के बुद्धि, व्यक्तित्व, रूचि, अभिरूचि, उपलब्धि तथा अन्य प्रकार की व्यक्तिगत एवं सामाजिक सूचनाओं को एकत्रित कर सकते हैं। इन सूचनाओं की सहायता से परामर्शदाता प्रत्येक बालक को उसकी योग्यता तथा अभिरूचि के आधार पर सही पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय चयन करने में सहायता करता है।

11. 5 शब्दावली

1. **प्रमापीकृत उपकरण** -ऐसा उपकरण जिसका निर्माण उपकरण हेतु निर्धारित चरणों के अनुसार किया जाता है साथ ही साथ उसकी वैधता, विश्वसनियता एवं मानक स्थापित किये जाते हैं, प्रमापीकृत उपकरण कहलाता है।
2. **समाजमिति -** समाजमिति, एक समूह के सदस्यों के बीच आपसी संबंध को मापता है।
3. **प्रश्नावली -** प्रश्नावली प्रश्नों की वह लम्बी सूची होती है जो व्यक्ति से सूचनाएं एकत्रित करने के लिये तैयार की जाती है।
4. **अवलोकन-** अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है।
5. **साक्षात्कार-** साक्षात्कार मूलभूत रूप से निश्चित उद्देश्य के साथ वार्तालाप।
6. **बुद्धि परीक्षण-** ऐसा परीक्षण जिस से व्यक्ति के सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता का पता

7. चलता है।
8. **रूचि परीक्षण-** ऐसा परीक्षण जिसके से किसी व्यक्ति की पसंद, नापसंद, किसी पर ध्यान देने, आकर्षित होने तथा सन्तुष्ट होने की प्रवृत्ति को ज्ञात करते हैं।

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रमापीकृत प्रविधियों में पांच प्रकार के परीक्षण है। बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, रूचि परीक्षण, अभियोग्यता परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण।
2. बुद्धि के 6 सिद्धान्त है। बुद्धि परीक्षण के दो नाम इस प्रकार है-
    a. वैशलर-बैलवन बुद्धि मापनी।
    b. भाटिया बैट्री बुद्धि परीक्षण।
3. व्यक्तित्व मापने के लिए मुख्य दो प्रकार के परीक्षण हैं। रोशा स्याही धब्बा परीक्षण तथा प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण।
4. सुपर के अनुसार रूचि चार प्रकार की होती है। अभिव्यक्त रूचियां, प्रदर्शित रूचियां, आकलित रूचियां, सूचित रूचियां
5. अभिक्षमता मापने हेतु प्रोफीसीएन्सी, क्लिरीकल मिनेसोता कार्पोरेशन क्लर्केरियल, हस्तकौशल, यांत्रिक व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।
6. अप्रमापीकृत प्रविधियां नौ प्रकार की होती है।
    a. प्रश्नावली, आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख, निर्धारण मापदण्ड, आत्मकथा, वयक्तिवृत्त अध्ययन, समाजमिति, अवलोकन, संचित पत्र तथा साक्षात्कार।
7. निर्धारण मापदंड 8 प्रकार होते हैं संख्यात्मक, वर्णनात्मक, पदक्रम, रेखांकित, समूह-प्रतिशत, युगल-तुलना, बलात-चयन, संचयी अंक मापदंड है।
8. समाजमिति से समाज के लोगों के आपसी संबंधों के विषय में पता लगाया जाता है।
9. अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है।
10. संचित अभिलेख सरल, सत्य सूचना तथा सामूहिक मूल्यांकन पर आधारित होता है।
11. साक्षात्कार चार प्रकार के होते हैं।

11.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,

2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999). Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Sharma, N.R. (2012). Educational and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. परामर्श तथा निर्देशन में प्रयोग होने वाले उपकरण एवं प्रविधियों के विषय में वर्गीकरण करके व्याख्या किजिए?
2. बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षणों की व्याख्या किजिए तथा इनमें अन्तर स्पष्ट किजिए?
3. प्रमापीकृत तथा अप्रमापीकृत प्रविधियों में अन्तर बताइए तथा अप्रमापीकृत प्रविधि की व्याख्या किजिए?

इकाई 12- निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluation of Guidance Programme)

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

12.3.1 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ

12.3.2 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

12.3.3 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व

12.3.4 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

12.3.5 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के चरण

12.3.6 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त

12.3.7 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो के स्रोत व विधियाँ

12.3.8 निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की नवीन धारणायें

12.4. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ

12.5 निर्देशन कार्यक्रम में परामर्शदाता का स्वमूल्यांकन

12.7 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.10 संदर्भ सूची

12.1 प्रस्तावना (Introduction)-

आज व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक व व्यवसायिक जीवन से सम्बन्धित हो सकती है, जन्म के बाद व्यक्ति जैसे-जैसे समाज के संपर्क में आता है, वह अपने को इन समस्याओं से घिरा हुआ पाता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए, उसे किसी न किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। निर्देशन कार्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है क्योंकि निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है कि व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाये कि वह स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो सके। इसके लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम में यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि किस सीमा तक उद्देश्यों की पूर्ति हुई है।

12.2 उद्देश्य (Goals)-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप-

1. निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन को परिभाषित कर सकेंगे।
2. निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
3. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की चरणबद्ध योजना तैयार कर सकेंगे।
4. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन को संपन्न करने की विभिन्न विधियों को समझ सकेंगे।
5. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ों को प्राप्त करने के स्रोतों को समझ सकेंगे।

12.3 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluation of Guidance Program)-

12.3.1 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का अर्थ

निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन का अर्थ दो रूपों में समझ सकते है।

1. निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन से अर्थ किसी संस्था में सक्रिय कार्यक्रम में दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता के मूल्यांकन से है इस प्रकार के मूल्यांकन को तुलनात्मक मूल्यांकन भी कहते है। क्योंकि इसमें दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता व स्वरुप के द्वारा अनेक कार्यक्रमों की तुलना करके यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किस कार्यक्रम की विशेषताए अधिक उपयुक्त है।

2. निर्देशन कार्यक्रम का प्रार्थी पर पड़ने वाले प्रभाव, लाभ तथा जीवन में लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्यक्रम की भूमिका का मूल्यांकन किया जाता है। ऐसे मूल्यांकन को विशेष मूल्यांकन कहा जाता है।

12.3.2 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य

निर्देशन कार्यक्रम को निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्पन्न किया जाता है।

1- निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली एवं उपयोगी बनाना।
2- व्यक्ति को अपनी समस्यायों का समाधान के लिए अभिप्रेरित करने हेतु पुरुस्कार प्रदान करना।
3- व्यक्ति को यह जानकारी प्रदान करना की उसके द्वारा आयोजित निर्देशन कार्यक्रम से समस्यायों का समाधान करने में कितनी सफलता प्राप्त हुई है।
4- व्यक्ति का विभिन्न व्यवसायों तथा उनके विषय में जानकारी देने वाले स्रोतों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
5- व्यक्ति को भविष्य की उपलब्धियों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
6- समाज व समुदाय को निर्देशन कार्यक्रम की उपयोगिता तथा महत्व के बारे में बताना।

12.3.3 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन का महत्व निम्न प्रकार है-

1- निर्देशन कार्यक्रम को अधिक प्रभावी व्यवहारिक व उपयोगी बनाने के लिए मूल्याकंन आवश्यक है।
2- मूल्यांकन से व्यक्ति की सफलता प्रगति आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।
3- मूल्यांकन के द्वारा यह भी पता चलता है कि निर्देशन कार्यक्रम अपने उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रहा है या नही।
4- मूल्याकंन से निर्देशन कार्यक्रम की नयी पद्धतियों की खोज के बारे में जानकारी होती है।
5- मूल्यांकन हमें निर्देशन सेवाओं की प्रभावशीलता की भी जानकारी प्रदान करता है।

12.3.4 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता निम्न प्रकार है-

1- व्यक्ति के व्यवहार पर निर्देशन कार्यक्रम के विभिन्न प्रकारों का प्रभाव देखने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।

2- व्यक्ति को दी जाने वाली निर्देशन सेवाओ की गुणवत्ता की जानकारी प्राप्त करने के लिए मूल्याकंन आवश्यक है।

3- व्यक्ति को दी जाने वाली निर्देशन सेवा की व्यावहारिकता व पर्याप्तता जानने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।

4- निर्देशन कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अन्य क्रिया-कलापों तथा तकनीको को उपयोग में लाने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।

12.3.5 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के चरण (Steps)

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन प्रक्रिया के निम्न चरण हैं।

1- **निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन-** मूल्यांकन के प्रथम चरण में निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों की सूची बना लेनी चाहिए। निर्देशन कार्यकर्ताओं द्वारा इन उद्देश्यों को समझ लेना चाहिए जिससे लक्ष्य प्राप्त हो सके। उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए जिससे कि वे मापन योग्य हो सके।

2- **जाँच के बिन्दु**- निर्देशन कार्यक्रम में उद्देश्यों को निश्चित करने के बाद उसकी जाँच के बिन्दु निश्चित करना चाहिए। जो भी जाँच के बिन्दु तय किए जाए उसी के आधार पर अपेक्षित आकडों को एकत्रित करने के लिए उपयुक्त विधियों और तकनीकों का निर्धारण किया जाता है।

3- **योजना का क्रियान्वन**- निर्देशन कार्यक्रम के योजना की रुपरेखा तैयार करने के बाद उसके क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है। उसके क्रियान्वयन से पहले दूसरे निर्देशन विशेषज्ञों की सहमति और सुझाव भी मांगे जा सकते हैं। निर्देशन कार्यक्रम में होने वाले कार्यो को व्यवस्थित रूप से क्रियान्वित किया जा सकता है।

4- **प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या**- इस बात की सबसे अधिक सावधानी रखनी चाहिए की निर्देशन कार्यक्रम से जो आकड़े एकत्रित किये गए हैं, वे विश्वसनीय हैं। सबसे पहले प्राप्त आकड़ो को एकत्रित कर उन्हें व्यवस्थित करना चाहिए, उसके बाद उनकी व्याख्या करनी चाहिए, निष्कर्षो को संक्षेप रूप में प्राप्त कर उन्हें निर्देशन विशेषज्ञों से प्राप्त आकड़ों से जाँच करनी चाहिए।

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में उपयोग किये जाने वाले चरणों को निम्न रूप से दर्शाया गया है-

मूल्यांकन के चरण

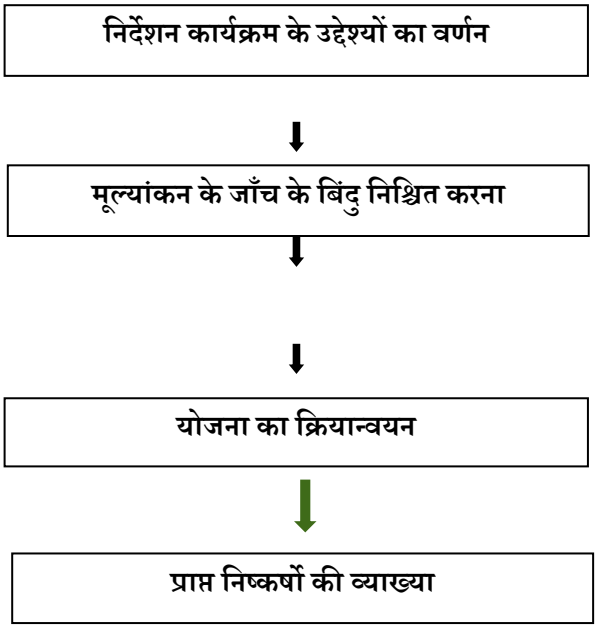

12.3.6 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सिद्धान्त (Theories of Evaluation of Guidance Program)–

निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि इनके बिना मूल्यांकन कार्यक्रम संभव नहीं है।

1- उचित मूल्यांकन के लिए सामान्य व व्यापक उद्देश्यों के साथ-साथ विशेष उद्देश्यों का निर्धारण भी करना चाहिए, निर्देशनकर्ताओं को यह स्पष्ट होना चाहिए की वह मूल्यांकन क्यों कर रहा है।

2- व्यक्ति के व्यवहार को अनेक कारक प्रभावित करते है जैसे परिवार, समाज, दोस्त आदि। मूल्यांकन निष्कर्ष केवल उन्ही तथ्यों के आधार पर करना चाहिए जिनका हम मापन कर सकते हैं।

3- विशिष्ट प्रत्ययो को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने से मूल्यांकन प्रभावशाली हो जाता है साथ ही विभिन्न व्यक्तियों द्वारा इसका प्रयोग करने पर त्रुटियाँ भी नहीं होती हैं।

4- मूल्यांकन गहन और व्यापक होना चाहिए। निर्देशनकर्ता के पास व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसकी बौद्धिक क्षमताओं, रूचि, अभिरुचि, प्रेरणा आदि की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि मूल्यांकन के समय इनका उपयोग आवश्यक है। व्यक्ति का व्यवहार इन सभी से प्रभावित होता है। अतः मूल्यांकन के समय इनका मापन अलग-अलग न करके सम्पूर्ण रूप में करना चाहिए।

5- मूल्यांकन के परिणाम सुव्यवस्थित, स्पष्ट, अर्थपूर्ण व् व्यवस्थित होने चाहिए। जिससे कि जनसाधारण के समझ में आ जाए।

6- मूल्यांकन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, इसे इस प्रकार आयोजित करना चाहिए कि एक चरण पूर्ण होने पर दूसरा चरण स्वतः ही शुरू हो जाए।

12.3.7 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन आकड़ो के स्रोत व विधियाँ

निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन कार्य के लिए आकड़े निर्देशन प्रार्थी से प्राप्त होता है, साथ ही कुछ सूचनाये माता-पिता, अध्यापको, मित्रो, निर्देशन कर्ताओं एवं निर्देशन अभिलेखों आदि से प्राप्त किए जाते है। निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए उचित सूचनाये एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। अनुवर्ती सेवा में प्रश्नावली विधि का प्रयोग अधिक होता है।

अनुवर्ती अध्यनों में प्रश्नावली विधि का प्रयोग करने में अनेक समस्याऐ भी आती है।

1- कुछ निर्देशन प्राथी पहले लिखे पते पर नही मिलते क्योंकि वह पता बदल चुके होते हैं।

2- कुछ व्यक्ति प्रश्नावली वापस नही करते हैं।

3- प्रश्नावली के प्रश्नो का सही उत्तर नही देते हैं।

4- प्रश्नावली बनाने, भेजने व विश्लेषण के कार्य में समय श्रम व धन अधिक व्यय होता है।

रोएबर एरिक्सन व स्मिथ मूल्यांकन आकडों के संकलन में साक्षात्कार विधि को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। कार्लसन और वेनडाइवर ने टी0 ए0 टी0, म्यूएन्श ने रोर्शा, ड्रसेल एंव मट्टेसन ने आत्मबोध परीक्षण का उपयोग किया है। पेपिन्सकी एवं सहयोगियों ने समाजमितिक विधि का प्रयोग किया है।

12.3.8 निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की नवीन धारणायें

निर्देशन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्देशन कार्यक्रम किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुआ है। निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन को अधिक सफल बनाने के लिए निम्न लिखित उपायों को अपनाया जा सकता है।

1- **निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट करना** – निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के सम्बन्ध में सबसे पहले यह जाना जाता है कि निर्देशन कार्यक्रम के लक्ष्य किस सीमा तक वैध, परामर्शदाता द्वारा समझा जाने योग्य तथा प्रार्थी द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। इन सब प्रश्नों के स्पष्ट होने पर ही निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य स्पष्ट हो सकेंगे।

2- **निर्देशन कर्मचारियों का सर्वेक्षण-** निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि निर्देशन कार्य में लगे कर्मचारियो की रूचि निर्देशन कार्य में है या नही, वे प्रशिक्षित है या नही। छात्रों की संख्या के अनुपात में उनकी संख्या क्या है। इन सबका सर्वेक्षण करना चाहिए जिससे कि कर्मचारियों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है। अगर छात्रों की तुलना में निर्देशन कर्मचारियों की संख्या कम है तो उसे और अधिक करना चाहिए जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया जा सके।

3- **निर्देशन कार्यक्रम में सुविधाओं का विश्लेषण-** निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में वर्तमान समय में निर्देशन कार्यक्रम के लिए उपलब्ध सुविधाओं को ध्यान में रखकर मूल्यांकन किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम के लिए कितना समय पर्याप्त है व निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए न्युनतम व आवश्यक सुविधाओं के क्षेत्र में शोध कार्य हो रहा है। इन सबका विशलेषण करना चाहिए जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम में सुविधाओं का विश्लेषण होता है।

4- **रिकॉर्ड की पूर्णता-** निर्देशन मूल्यांकन में रिकाडों की स्थिति क्या है, उपलब्ध रिकार्ड पर्याप्त व पूर्ण है, संकलित है या नही निर्देशनकर्ताओ के पास उपलब्ध है या नही इन सब बातों पर ध्यान दिया जाता है। जिससे कि निर्देशन कार्यक्रम का उचित रूप पर मूल्यांकन हो सकेगा।

5- **आकडों की संग्रह**– व्यक्ति के सम्बन्ध में आकडे एकत्रीकरण पर अधिक बल दिया जा रहा है मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अतिरिक्त परिवार मित्र व समाज से एकत्रित सूचनाओं को भी निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की प्रकिया में महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। क्योंकि व्यक्ति के विषय में सम्पूर्ण जानकारी केवल मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से प्राप्त नहीं होगी, इसके लिए उसके परिवार, मित्र का मिलना आवश्यक है जिससे निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन उचित हो सकेगा।

6- **सहयोग की सीमा-** निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशनकर्ता, कर्मचारियों का सहयोग कितना रहा है, इसका निर्देशन मूल्यांकन के क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। क्योंकि निर्देशनकर्ताओं व कर्मचारियों के सहयोग के बिना निर्देशन कार्यक्रम अपने उद्देश्यों को पूर्ण नहीं कर सकता है।

7- **उद्देश्यों को प्राप्त करने का निर्णय-** मूल्यांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि निर्देशन कार्यक्रम द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कहाँ तक हुई है। वर्तमान समय जिन मानकों पर जोर दिया जा रहा है वे हैं, छात्र के विषय में अनुशासनात्मक कार्यवाही की कमी, परीक्षा में असफलता की कमी, विद्यालय में सफलता, वेतन स्तर, कार्यसंतोष आदि इन सब प्रश्नों पर नियंत्रण करके ही निर्देशन कार्यक्रम का उचित मूल्यांकन हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न-क

प्रश्न (1) निर्देशन कार्यक्रम की प्रभाविता का मापन बिना मूल्यांकन के भी सम्भव है – सत्य / असत्य

प्रश्न (2) निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ हैं -

(क) प्रयोगात्मक
(ख) सर्वेक्षण
(ग) व्यक्ति अध्ययन
(घ) उपयुक्त तीनो

प्रश्न (3) निर्देशन कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए वांछित सूचनाओ के संकलन हेतु सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली विधि है-

(क) साक्षात्कार
(ख) प्रश्नावली
(ग) प्रयोग
(घ) व्यक्ति इतिहास

प्रश्न (4) विस्लो की सर्वेक्षण तकनीक की प्रणाली है-

(क) अर्द्धसंरचित साक्षात्कार
(ख) असंचरित साक्षात्कार
(ग) संचरित साक्षात्कार
(घ) नैदानिक साक्षात्कार

12.4 निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधियाँ (Techniques of Evaluation Program in Guidance)-

निर्देशन कार्यक्रम और परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में तीन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

1. प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method)-

प्रयोगात्मक विधि के द्वारा मूल्याकंन करने के लिए निर्देशन कार्यक्रम के प्रारम्भ में ही योजना बनानी होती है, सामान्य रूप से प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग दो समूहों पर किया जाता है। एक समूह नियंत्रित समूह व दूसरा समूह प्रयोगात्मक समूह होता है। जैसे वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर एक समूह को निर्देशन दिया जाता है व दूसरे समूह को कोई निर्देशन नही दिया जाता है। जिसे निर्देशन नही दिया गया वह नियंत्रित समूह है। निर्देशन देने के बाद उसके प्रभाव की जांच के लिए दोनों समूहों की तुलना की जाती है। इसके द्वारा यह पता चलता है कि क्या निर्देशन कार्यक्रम का प्रयोगात्मक समूह पर कोई प्रभाव पडता है, यदि प्रभाव पडता है तो किस मात्रा तक पडता है। इस विधि के मूलभूत आधार है-

a) उद्देश्यों का निर्धारण करना या उपकल्पनाओं का निर्माण करना।
b) प्रयोग के लिए उपयुक्त विधि का चयन करना।
c) दो या दो से अधिक समूहों का चयन करना।
d) निर्देशन की तकनीकों का प्रयोग जिससे परिणामों की निष्पक्ष जाँच हो सके।
e) परामर्श प्रार्थी से प्राप्त आंकडों का विश्लेषण व निष्कर्षो की व्याख्या।

इसका सबसे महत्वपूर्ण चरण समान समूहों का चयन करना है। शैक्षिक व परामर्श के मूल्यांकन में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा परामर्श प्रार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में बनाई गई उपकल्पना की जांच के लिए आकड़े व प्रमाण एकत्रित किये जाते है। प्रयोगात्मक पद्धति अत्यधिक जटिल पद्धति, अधिक खर्चीली, व अधिक समय लेने वाली पद्धति है। क्योंकि इसमें परामर्श प्रार्थी के परामर्श कार्यक्रम से पहले व परामर्श कार्यक्रम के बाद दोनो व्यवहारो का अध्ययन किया जाता है, इस पद्धति का प्रयोग विद्यालयों के मूल्यांकन में कम किया जाता है।

2. सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली सामान्य विधि है। इस विधि के द्वारा मूल्यांकन करने के लिए व्यक्तियों के व्यवहार और समायोजन पर निर्देशन कार्यक्रम के प्रभाव के सम्बन्ध में मतों, अभिवृतियों, सूचनाओं और अन्य आकडों का संकलन प्रश्नावली के द्वारा या साक्षात्कार प्रणाली द्वारा किया जाता है। साथ ही इसकी व्याख्या भी की जाती है। इस प्रकार सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा एक समय में सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा समूह की दशा का अध्ययन करके पुन: दूसरे समय में सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा अध्ययन करके समूह की दशा में परिर्वतन का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार निर्देशन के प्रभाव का मूल्याकंन होता है। परामर्श कार्यक्रम में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते समय निश्चित किये गए उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए चयन किये गए प्रतिदर्श से आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं, इस विधि में जनसंख्या को पहचानना,

उद्देश्य पूर्ण करने वाले प्रतिदर्श का चयन, जानकारी एकत्रित करना, मूल्यांकन में उपयोग की जाने वाले कार्य की सूची, अंत में निष्कर्ष निकलते हैं व व्याख्या करते हैं। इस विधि की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसमें कम समय में अधिक संख्या में आंकड़े एकत्रित हो जाते हैं जिससे वैध परिणाम प्राप्त होते हैं। जबकि इसमें दोष यह है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित व्यक्तियों से अविश्वसनीय उत्तरों की प्राप्ति, सामाजिक रूप से वांछित उत्तर अधिक होते हैं। प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग अधिक होता है, और प्रतिचयन त्रुटि की सम्भावना बढ जाती है, जिससे दोषपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते है। परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस पद्धति में प्रयोगात्मक पद्धति की तरह परामर्श प्रार्थी के परामर्श कार्यक्रम से पहले के व्यवहार व् परामर्श कार्यक्रम के बाद के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन न करके वर्तमान व्यवहार का अध्ययन किया जाता है, और अगर कोई सुधर करना है तो सुधार किया जाता है। सर्वेक्षण विधि के द्वारा हम निर्देशन की समस्त सेवाओं- सूचना सेवा, अनुवर्ती सेवा, परामर्श सेवा व स्थानन सेवा आदि का मूल्यांकन कर सकते हैं।

a) **सूचना सेवा (Information Service)-** निर्देशन कार्यक्रम की सफलता प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता, वैधता व विश्वसनीयता पर निर्भर करती है। सूचना सेवा के मूल्यांकन से हमें यह जानकारी प्राप्त होगी कि सूचना सेवायें विभिन्न छात्रों को उनकी क्षमता व आवश्यकता के अनुसार शिक्षा व व्यवसाय से सम्बंधित सूचनाएं देने में कितनी सफल हुई हैं। इन सर्वेक्षणों के द्वारा सूचना सेवा की प्रभावशीलता व उपयोगिता से सम्बंधित राष्ट्रीय व स्थानीय मानक तैयार किये जा सकते हैं।
b) **अनुवर्ती सेवा (Follow up Service)-** अनुवर्ती सेवा में हमें व्यक्ति के कार्य क्षेत्र में समायोजन व प्रगति के बारे में पता चलता है, इसे एक उदहारण द्वारा समझ सकते हैं, जैसे एक विद्यालय यह ज्ञात करता है कि एक छात्र किसी क्षेत्र में चला जाता है चाहे वह अध्ययन क्षेत्र है या नियुक्ति क्षेत्र में किस सीमा तक छात्र अपने आपको समायोजित कर पाया है या उस क्षेत्र में उसने कितनी प्रगति प्राप्त की है। इस प्रकार अनुवर्ती सेवा विद्यालय के समस्त निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता व असफलता को बताता है। यदि छात्र ने संतोषजनक प्रगति की है और क्षेत्र विषय में संतुलित रूप से समायोजन कर लिया है तो इसका अर्थ है कि विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम सफल है। इस प्रकार अनुवर्ती सेवा समस्त निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करती है और उसके बाद कार्यक्रमों में सुधार की योजना बनाती है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि अनुवर्ती सेवा का भी मूल्यांकन हो।
c) **परामर्श सेवा (Counselling Service)-** परामर्श सेवा का मूल्यांकन परामर्शदाता परामर्श के समय प्रयोग में लाये जाने वाले अभिलेखों के सर्वेक्षण के द्वारा करता है।

उदहारण यदि विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करना है तो विद्यालय में प्रत्येक परामर्शदाता अपने प्रतिदिन के कार्यों, परामर्श के लिए आये छात्रों, उनकी समस्या के समाधान के लिए किया प्रयास, उसमे सफलता, असफलता व कठिनाई आदि का लेखा-जोखा एक विवरण पुस्तिका में रखना चाहिए, यह विवरण पुस्तिका परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में सहायक हो सकती है। इस विवरण पुस्तिका के विश्लेषण से निर्देशन कार्यक्रम की वैधता व विश्वसनीयता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

d) **स्थानन सेवा (Placement Service)-** सूचना सेवा, अनुवर्ती सेवा तथा परामर्श सेवा की तरह स्थानन सेवा का भी मूल्यांकन किया जा सकता है। व्यक्ति के स्थानन सेवा तभी दक्षतापूर्ण कार्य कर सकती है, जबकि उनके पास उन क्षेत्रों की पूर्ण जानकारी हो, जहाँ विद्यालयी शिक्षा समाप्त करने के बाद नियुक्ति प्राप्त की हो। इसके लिए स्थानन सेवा को समय-समय पर अपने शहर तथा पड़ोसी शहरों में सर्वेक्षण करने की आवश्यकता होती है। इनसे आधुनिक आँकड़े तथ्यों तथा क्षेत्रों के ज्ञान के साथ-साथ व्यवसाय में वर्तमान समय में कहाँ-कहाँ वर्तमान में नियुक्ति होनी है, और कहाँ-कहाँ भविष्य में रिक्त पद होने की संभावना है और किन-किन शैक्षिक योग्यता वाले छात्रों की आवश्यकता है। स्थानन सेवा छात्रों को सेवा में नियुक्ति करने व हटाने वाले अधिकारियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का अध्ययन कर सकती है। स्थानन सेवा का मूल्यांकन करते समय हमें यह देखना चाहिए कि स्थानान सेवा के द्वारा कितने छात्रों को नियुक्ति मिली है? नियुक्तियां दिलाने का प्रतिशत अन्य संस्थाओं की उपेक्षा कितना है। यदि प्रश्नों के उत्तर स्थानन सेवा के द्वारा नियुक्तियां नहीं दिला पाते तो इसकी दक्षता बढाने पर विचार करना चाहिए।

2. **व्यक्ति इतिहास विधि (Case Study Method)**

इस विधि का प्रयोग व्यक्ति के निरन्तर दीर्घकालीन व विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के लिए एक निश्चित समय तक किया जाता है। इसमें निर्देशन प्रार्थी से लगातार सम्पर्क बना कर उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण सूचनाये एकत्रित की जाता है उसका एक व्यक्तिगत अभिलेख तैयार किया जाता है इसके द्वारा यह पता चलता है कि व्यक्ति पर निर्देशन कार्यक्रम का क्या प्रभाव पड़ता है। परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के व्यक्तिगत बातो की ओर अधिक ध्यान देता है, सभी बातों का गहनता से अध्ययन करता है, जिससे परामर्शदाता द्वारा दिए गए निर्देशन के प्रभाव का पता चलता है, इसके बाद परामर्श प्रार्थी के व्यक्तिगत मूल्यों के द्वारा पुनः मूल्यांकन किया जाता है, उदहारण- परामर्श प्रार्थी परामर्श कार्यक्रम के प्रति क्या सोचता है, या अपने हित को ध्यान में रखते हुए परामर्श के प्रति

उसके विचार कैसे हैं। इस विधि का प्रमुख लाभ व्यक्तिगत मामलों में दिए जाने वाले हित में है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें समय अधिक लगता है, क्योंकि परामर्श प्रार्थी के व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक पहलू का मूल्यांकन करना होता है इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अलग होता है। ऐसे में उसके आंकडों पर कठोर राय देना उचित नहीं होगा।इसके विपरीत अगर हम अलग-अलग परामर्श प्रार्थी से सम्बन्धित आकड़ों को अनदेखा करते हैं तो व्यक्तिगत विधि के विशिष्ट लक्षणों को भी अनदेखा करना ही होगा।

12.5 निर्देशन कार्यक्रम में परामर्शदाता का स्वमूल्यांकन (Self-Assessment of Counsellor)

परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता के स्वमूल्यांकन के लिए आत्मप्रबंधन दक्षताओं की आवश्यकता होती है। जिनके द्वारा परामर्शदाता स्वयं का मूल्यांकन कर सकता है। ये दक्षतायें निम्न प्रकार हैं-

1. आत्म स्वीकृति का विकास व स्वयं के अन्दर न्यायपूर्ण ढंग से देखना-
2. अपने सीखने, सावेगिक, शारीरिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पहचानना और उन्हें पूरा करने के लिए संसाधनों का उपयोग करना व स्वयं का मूल्यांकन करना।
3. स्वयं के मूल्यों, विश्वासों के सिद्धांतो को पहचानना और उनकी जाँच करना।
4. स्वयं के प्रतिबिम्ब, अभिलेख को प्रस्तुत करना और पर्यवेक्षण का उपयोग करके परामर्शदाता स्वयं का मूल्यांकन कर सकता है।
5. प्रार्थी के साथ मिलकर पुनः स्वयं का मूल्यांकन।
6. प्रार्थी से फीडबैक की मांग करना जिससे कि स्वयं की कमियां भी पता चलती है।

12.6 सारांश (Summary)-

निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन में यह ज्ञात किया जाता है कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है। निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन का अर्थ है कि किसी संस्था द्वारा निर्देशन कार्यक्रम में दी जाने वाली सेवाओ की गुणवत्ता के मूल्यांकन से है।मूल्यांकन की मुख्य आवश्यकता व्यक्ति के व्यवहार में निर्देशन का प्रभाव, उसकी गुणवत्ता, उसकी व्यवहारिकता व कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीको के अध्यन में है। निर्देशन कार्यक्रम में उद्देश्यों का निर्धारण, जाँच का मापन, योजना बना व निष्कर्षो की व्याख्या करना मुख्य चरण है। निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

सर्वेक्षण, प्रयोग व व्यक्ति इतिहास विधि द्वारा किया जा सकता है। निर्देशन मूल्यांकन की प्रक्रिया के क्षेत्र में सबसे अधिक ध्यान नवीन प्रवृत्तियो पर दिया जा रहा है इसके अंतर्गत कार्यक्रम लक्ष्यो के स्पष्टीकरण, कार्यकर्ता सर्वेक्षण सुविधाओं के विचार, रिकार्डो की पूर्णता, आकड़ें, सहयोग का प्रसार उद्देश्यों की प्राप्ति आदि के विषय में नवीन योजनाएँ प्रस्तुत की गयी है। मूल्यांकन का अर्थ निर्धारित मानको के अन्तर्गत कार्यक्रम के प्रभाव की जांच करना है,

12.7 शब्दावली

निर्देशन कार्यक्रम- निर्देशन कार्यक्रम वह है की जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विकास के विभिन्न चरणों में आयी हुई शिक्षा सम्बन्धी, व्यसाय सम्बन्धी, वैयक्तिक अथवा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होता है.

अनुवर्ती सेवा– अनुवर्ती सेवा के द्वारा व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसकी जिस क्षेत्र में नियुवित्त नही है उसमे वह कितना समायोजित हुआ है और उस क्षेत्र में उसकी प्रगति क्या है।

परामर्शदाता – परामर्शदाता वह व्यक्ति है जो किसी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता रखता है जो दूसरो को समस्या का समाधान करने योग्य बनाता है।

प्रार्थी - प्रार्थी वह है, जो किसी समस्या का समाधान के लिए परामर्शदाता के पास आता है, और परामर्शदाता उसे समस्या का समाधान करने योग्य बनाता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न-क

(1) असत्य

(2) (घ) उपयुक्त तीनो

(3) (ख) प्रश्नावली

(4) (क) अर्द्धसंरचित साक्षात्कार

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

(1) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन क्यों आवश्यक है

(2) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के चरणों का वर्णन किजिए

(3) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन की विभिन्न विधियों का वर्णन किजिए

(4) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किजिए

(5) निर्देशन कार्यक्रम में मूल्यांकन के स्रोतों और तकनीको का वर्णन किजिए

12.10 संदर्भ सूची (References)-

1. निर्देशन एवं परामर्श राय अमरनाथ,अस्थाना मधु, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन
2. शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका- उपाध्याय राधाबल्लभ, जायसवाल सीताराम, अग्रवाल पब्लिकेशन
3. वोकेशनल गाइडेंस एवं कैरियर काउन्सिलिंग में पी० जी० डिप्लोमा – उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, शान्तिपुरम (सेक्टर-एफ) फाफामऊ इलाहाबाद।
4. निर्देशन तथा उपबोधन –ES363, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

इकाई 13 निर्देशन में नैतिकता (Ethics in guidance)

इकाई संरचना:

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 निर्देशन की अवधारणा

13.4 निर्देशन में नैतिकता

13.5 निर्देशन में नैतिकता का महत्त्व

13.6 नैतिक सिद्धांत

13.7 निर्देशन परामर्शदाता के लिए सुझाव

13.8 सारांश

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना:

मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी से निर्देशन प्राप्त करता ही रहता है। बाल्यकाल में ही माँ द्वारा बच्चे को उसका हाथ पकड़कर चलना सिखाना, बड़े होने पर उसे नैतिक कहानियाँ सुनाना तथा उसी के द्वारा अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने के लिए प्रेरित करना भी तो एक प्रकार का निर्देशन ही है।

एक सहायतापरक पेशे और चिकित्सीय संबंध के रूप में निर्देशन एवं परामर्श अब लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है और बड़े पैमाने पर समाज और दुनिया में सक्रिय भाग ले रहा है। दुनिया के अधिकांश हिस्सों में पेशेवर परामर्शदाताओं के लिए आयु सीमा नहीं है, हालाँकि अनुभवों पर सीमाएँ हैं। पेशेवर परामर्शदाताओं को पेशेवर आचार संहिता और नीतियों द्वारा निर्देशित किया जाता है। ये आचार संहिता

स्कूल परामर्शदाता और सामाजिक कार्यकर्ताओं के क्षेत्रों को स्पष्ट करने में मदद करती है लेकिन कुछ समानताएं भी हैं क्योंकि दोनों निर्धारित दिशानिर्देशों का उपयोग कर रहे हैं।

मार्गदर्शन आम तौर पर किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत ,शैक्षिक, कैरियर या मनोवैज्ञानिक समस्याओं को हल करने के लिए पेशेवर सहायता प्रदान करने का एक क्षेत्र है। परामर्श एक पेशा है और प्रकृति तथा चरित्र में मानवतावादी है। मार्गदर्शन और परामर्श में कठोर और पेशेवर प्रशिक्षण व्यक्ति को बच्चे के समग्र विकास को सुनिश्चित करने में मदद करता है। परामर्श प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य बच्चे को जीवन में अच्छी तरह से समायोजित करने में मदद करना है। इसलिए यह आवश्यक है कि परामर्शदाता के पास कुछ गुण, विशेषताएँ और नैतिक/नैतिकता हो ताकि उसे इस विशाल कार्य को पूरा करने के लिए सशक्त बनाया जा सके।

स्कूल परामर्शदाताओं को सामाजिक मानदंडों समाज के मूल्य और संरचना के संबंध में छात्रों के व्यवहार को संशोधित करने, मदद करने करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है| किसी पेशेवर परामर्शदाता की आचार संहिता और परामर्श की नीतियों का उनके पेशेवर क्षेत्र या कार्यस्थल में उत्पन्न होने वाली समस्याएं के निष्पादन पर प्रभाव पड़ना चाहिए|

13.2 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- निर्देशन में नैतिकता के महत्त्व को समझ पायेंगे|
- परामर्शदाताओं के नैतिक सिद्दांतों से परिचित हो पायेंगे|

13.3 निर्देशन की अवधारणा

निर्देशन एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपने आप को समझ पाने अपनी योग्यताओं तथा सीमाओं के अन्तर्निहित समार्थ्य को समझने एवं उसी स्तर के कार्य-कलापों को करने मे सक्षम बनाता है। निर्देशन प्रत्येक अवस्था की समस्याओ के समाधान में सहायक सिद्ध होने के अतिरिक्त आगामी समस्याओं की पूर्व तैयारी में भी विशेष सहायक होता है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु या अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवन पर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोर, प्रौढों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्वपूर्ण होता है। निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषता को तथा शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र से सम्बन्धित

जानकारी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। कुछ विद्वान् निर्देशन और शिक्षा दोनों को ही एक दूसरे के पूरक मानते हैं।

निर्देशन का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। शिक्षा, व्यक्तिगत समस्याएँ, व्यावसायिक, स्वास्थ्य, विकास की प्रक्रिया एवं चिकित्सा के ये विभिन्न क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में निर्देशन की विशेष आवश्यकता होती है।

13.4 निर्देशन में नैतिकता

निर्देशन में नैतिकता को समझाने से पूर्व आवश्यक है कि नैतिकता के बारे में अवगत हों|

नैतिकता: नैतिकता मानव समाज का एक अभिन्न अंग है। हमारे द्वारा किए गए किसी भी निर्णय में नैतिक आधार होता है। मानव समाज में नैतिकता की भूमिका वांछित या अवांछित क्या है यह निर्धारित करने में निहित है। इस प्रकार, नैतिकता एक दार्शनिक अवधारणा है जिसमें सही और गलत की अवधारणाओं को व्यवस्थित करना, बचाव करना और अनुशंसा करना शामिल है। यह जरूरी है कि मनुष्यों के नैतिक व्यवहार को शामिल किया जाए। नैतिकता अच्छे और बुरे, सही और गलत की चिंताओं से संबंधित है।

हालाँकि, "नैतिकता" शब्द के कई अर्थ हैं। आमतौर पर, नैतिकता कुछ निश्चित, आकांक्षी नैतिक मूल्यों और सिद्धांतों के एक समूह को संदर्भित करती है जिनका उद्देश्य नैतिक आचरण का मार्गदर्शन करना है। एक "नैतिकता संहिता" नैतिक "सिद्धांतों" और "मूल्यों" के अनुप्रयोग का प्रतिनिधित्व करती है, जो नैतिक कार्रवाई के लिए ठोस, लागू करने योग्य "मानक" व्यवहार में निर्धारित हैं। नैतिकता अच्छे जीवन की ओर एक चिंता से प्रेरित होती है। अगर कुछ मानव जाति के अच्छे होने की दिशा में ड्राइव के विपरीत है, जिसे नैतिक रूप में नहीं देखा जा सकता है। यही कारण है कि, कई दार्शनिकों ने अच्छे जीवन की अवधारणा के लिए महान मूल्य का श्रेय दिया है। नैतिकता को नैतिक सिद्धांतों के रूप में परिभाषित किया गया है जो अच्छे और बुरे और सही और गलत के मानदंडों का वर्णन करता है। फ्रांसीसी लेखक, अल्बर्ट कैमस के अनुसार, "नैतिकता के बिना एक व्यक्ति इस दुनिया पर जंगली जानवर है"।

नैतिकता को लागू करना हमारे दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यहां कुछ कदम दिए गए हैं जो आपको अपने जीवन में नैतिकता लागू करने में मदद कर सकते हैं: अपनी नैतिकता को पहचानें, अन्य लोगों के प्रति नैतिक आचरण करें, सामान्य अनैतिक आचरण से बचें, अपने करियर में नैतिकता लागू करें प्रगति से जुड़ें|

निर्देशन कार्यक्रम में पेशेवर परामर्शदाता की यह एकमात्र जिम्मेदारी है कि उन्हें परामर्शदाताओं के अनैतिक व्यवहार से बचाया जाए. क्यूंकि अधिकांश सेवार्थी असुरक्षित महसूस करते हैं, इसलिए प्रमाणित परामर्शदाताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए परामर्श नैतिकता के बारे में जागरूक होना महत्वपूर्ण है। यह लाभार्थी के आत्म-जागरूकता और आत्म-प्रकटीकरण में मदद करता है प्रत्येक पेशेवर परामर्शदाता की बहुत सारी जिम्मेदारियाँ होती हैं जनता के विश्वास को बनाए रखें इसलिए परामर्श पद्धतियों का नैतिक अनुप्रयोग, उच्च स्तर का प्रशिक्षण हासिल करना चाहिए. पेशे की प्रकृति के अनुसार, परामर्शदाताओं से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है सेवार्थी की रुचि के अनुसार सर्वोत्तम तरीके से उसके लक्ष्यों को बढ़ावा दें, सेवार्थी के अधिकारों की रक्षा करें और किसी को नुकसान या हानि न पहुँचाएँ, सेवा प्रदान करते समय पेशेवर सीमा बनाए रखना|

निर्देशन परामर्शदाता और सेवार्थी के रिश्ते में आमतौर पर अंतरंगता का एक भाव शामिल होता है जो आमतौर पर अन्य पेशेवर रिश्तों में मौजूद नहीं होता है। भारत में आचार संहिता एवं नैतिकता का उपयोग और दुरुपयोग दुनिया के अन्य देशों से भिन्न हो सकता है क्योंकि हम रंग, जाति,धर्म और संस्कृति में भिन्न हैं। जब हम आचार संहिता को ध्यान में रखते हैं, तो सेवार्थी के हित को सबसे पहले सबसे ऊपर रखा जाना चाहिए।

नैतिक व्यवहार को समझाने से पूर्व अनैतिक व्यवहार को समझना आवश्यक है |

Levenson (1986), Pops & Vetter (1992) तथा Swanson (1983) के अनुसार अनैतिक व्यवहार निम्न प्रकार से हो सकते है-

- गोपनीयता का अतिक्रमण।
- अपनी संव्यवसायिक दक्षता से आगे बढ़ना।
- उपेक्षित प्रैक्टिस।
- विशेषता न होने पर भी उसका दावा करना।
- किसी सेवार्थी पर अपने मूल्यों को अधिरोपित करना।
- किसी सेवार्थी में निर्भरता उत्पन्न करना।
- किसी सेवार्थी के साथ लैंगिक क्रियाकलाप।
- परस्पर विरोधी हित, जैसे दोहरे सम्बन्ध।
- विवादास्पद वित्तीय प्रबन्ध, जैसे अधिक शुल्क लेना।

- अनुचित विज्ञापन।

13.5 निर्देशन में नैतिकता का महत्त्व

नैतिकता का तात्पर्य मनुष्य द्वारा व्यक्तिगत अंतर्मन के बोध के अनुसार आचरण करने से है। यह नीतिशास्त्र का एक अंग है। नैतिकता के मानक व्यक्तिगत होते हैं केवल व्यक्ति की अंतरात्मा द्वारा स्वीकृत होते हैं। ये मानक अधिक व्यवहारिक होते हैं जिनके आधार पर व्यक्ति, व्यक्तिगत निर्णय लेता है। नैतिकता का पालन मानसिक संतुष्टि के लिए अंतरात्मा के कहने पर करता है।

परामर्श अपने स्वभाव से एक मनोवैज्ञानिक समस्या वाले व्यक्ति और एक ऐसे व्यक्ति के बीच का संबंध है जो प्रशिक्षित, योग्य और जानकार है और आवश्यक समाधान प्रदान करने में विशेषज्ञता रखता है। परामर्शदाता और सेवार्थी के बीच संबंधों की अंतर्निहित शक्ति दोनों की अपेक्षाओं को व्यापक बनाती है।

सिद्धांत, नैतिकता और नैतिक संहिताएं यह सुनिश्चित करती हैं परामर्शदाता सेवार्थी की भलाई के लिए काम करता है, न कि खुद के लिए।

13.6 नैतिक सिद्धांत या नीति संहिता

संहिता में चार समग्र नैतिक सिद्धांत शामिल हैं जिनमें कई विशिष्ट नैतिक मानक हैं।

1. **सेवार्थी के अधिकारों और गरिमा का सम्मान** पहला है जो कहता है, मार्गदर्शन परामर्शदाताओं को सभी सेवार्थियों के मौलिक अधिकार, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य, गरिमा और मूल्य का सम्मान और प्रचार करना चाहिए। परामर्शदाताओं को कानून के अनुरूप सेवार्थियों की निजता, गोपनीयता, आत्मनिर्णय और स्वायत्तता के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए। जहां तक संभव हो, वे यह सुनिश्चित करना कि सेवार्थी उनके द्वारा प्रस्तावित किसी भी पेशेवर कार्रवाई को समझें और उस पर सहमति दें। इसका मतलब है कि वे सेवार्थियों के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आदर सम्मान रखते हैं और लिंग, यौन अभिविन्यास, विकलांगता, धर्म, जाति, नस्ल, उम्र, राष्ट्रीय मूल, राजनीति और सामाजिक वर्ग जैसे कारकों के कारण अपनी सेवाओं को कम नहीं होने देते हैं। .परीक्षण और मूल्यांकन की प्रकृति, उद्देश्य और परिणाम की भाषा में पूर्ण व्याख्या प्राप्त करने के क्लाइंट के अधिकारों का हमेशा सम्मान करें | उन निर्णयों में दूसरों से यथासंभव पूर्ण और सक्रिय भागीदारी की मांग करें जो उन्हें

प्रभावित करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि सेवार्थियों के साथ परामर्श उचित वैयक्तिक और गोपनीयता की स्थिति में किया जाता है।

2. **योग्यता-**

- मार्गदर्शन परामर्शदाता अपने पेशेवर कौशल को अद्यतन बनाए रखते हैं |
- उन्हें अपनी विशेषज्ञता की सीमाओं को पहचानना चाहिए और स्वयं की देखभाल में संलग्न होना चाहिए और अपने काम के मानक को बनाए रखने के लिए समर्थन और पर्यवेक्षण लेना चाहिए।
- मार्गदर्शन परामर्शदाताओं को केवल वही सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए जिनके लिए वे शिक्षित हैं, जिसमें उनका प्रशिक्षण और अनुभव हैं।
- मार्गदर्शन परामर्शदाता प्रशिक्षण और अनुभव की सीमाओं को पहचानें और ध्यान रखें कि उससे अधिक न हो।
- जहां एक परामर्शदाता सक्षम महसूस नहीं करता है, वहां पर क्लाइंट को पेशे के भीतर या बाहर दूसरों को उचित तरीके से रेफर कर दें।
- मार्गदर्शन परामर्शदाता अपने कर्तव्यों के निर्वाहन कारण तनावग्रस्त या असुरक्षित महसूस होने पर सहकर्मियों से समर्थन या पर्यवेक्षण लें।
- मार्गदर्शन पेशेवरों को अपनी शिक्षा, प्रशिक्षण, लाइसेंस, प्रमाणन, प्राप्त परामर्श, पर्यवेक्षित अनुभव, या अन्य प्रासंगिक पेशेवर अनुभव के सीमाओं के भीतर ही सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए और प्रतिनिधित्व करना चाहिए जिनमें वे स्वयं को सक्षम मानते हैं

3. उत्तरदायित्व-

- मार्गदर्शन परामर्शदाताओं को सेवार्थियों, सहकर्मियों और जिस समुदाय में वे काम करते हैं और रहते हैं, उसके प्रति भरोसेमंद, प्रतिष्ठित और जवाबदेह तरीके से कार्य करने की अपनी पेशेवर जिम्मेदारी के बारे में पता होना चाहिए।
- उन्हें नुकसान करने से बचना चाहिए और अपने पेशेवर कार्यों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए और नैतिक दुविधाओं को हल करने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- पेशेवर गतिविधियों में इस तरह व्यवहार करें कि सेवार्थियों के हितों को नुकसान न पहुंचे या पेशे में जनता का विश्वास कम न हो।

- ऐसी किसी भी गतिविधि को समाप्त करें जो स्पष्ट रूप से सेवार्थी के लिए फायदेमंद होने की बजाय हानिकारक हो।
- नैतिक मुद्दों की जांच और नैतिक दुविधाओं को हल करने के लिए एक व्यवस्थित प्रक्रिया का उपयोग करने का प्रयास करें।

4. सत्यनिष्ठा

- सत्यनिष्ठा का दृढ़ पालन करना और उसे बढ़ावा देना चाहिए | वे खुद का सटीक रूप से प्रस्तुत करना चाहिए अन्य ईमानदारी, स्पष्टता और निष्पक्षता के साथ पेश अना चाहिए| वे हितों के टकराव से सक्रिय रूप से निपटते हैं, दूसरों का शोषण करने से बचते हैं और सहकर्मी के साथ अनुचित व्यवहार के प्रति सचेत रहते हैं।
- परामर्शदाता को अनुबंध के तहत अग्रिम रूप से सहमत शुल्क या महत्वपूर्ण उपहारों से अधिक शुल्क या लाभ की मांग को स्वीकार नहीं करना चाहिए, इस प्रकार की स्वीकृति निष्पक्षता को कमजोर कर देती है|
- सेवार्थियों का भावनात्मक, यौन, आर्थिक या किसी अन्य तरीके से शोषण न करें और जब कोई सहकर्मी अनैतिक कार्य करता हुआ दिखाई दे तो कार्रवाई करें, परामर्श में आचार संहिता का प्रभावी उपयोग करें।

पेशेवरों को निम्नलिखित के प्रति सचेत रहना चाहिए या होना चाहिए:

- केस का सामना करते समय विश्वसनीयता, सेवा वितरण में ईमानदारी, व्यावसायिकता बनाए रखना, सहानुभूति, पारदर्शिता, सक्षमता मामलों को संभालना, सेवा वितरण में सेवार्थी के आत्मनिर्णय या सहमति का सम्मान करना, मामले के प्रबंधन में उनकी पेशेवर स्थिति और सीमा सीमा के बारे में जागरूकता और सेवार्थियों की गरिमा और मूल्य का सम्मान करना चाहिए परामर्शदाता के व्यक्तिगत नैतिक गुण सेवार्थियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।
- महत्वपूर्ण माने जाने वाले कई व्यक्तिगत गुणों में सेवाओं का प्रावधान एक नैतिक या नैतिक घटक होता है और इसलिए उन्हें गुण या अच्छे व्यक्तिगत गुण माना जाता है। व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से विकसित होते हैं|
- यह उचित नहीं है कि सभी पेशेवर परामर्शदाताओं में ये गुण हों, क्योंकि यह आधारभूत बात है कि ये व्यक्तिगत गुण संबंधित व्यक्ति में गहराई से निहित हैं।

- ये शायद किसी बाहरी प्राधिकारी की आवश्यकता के बजाय व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से विकसित हुए हैं।
- परामर्शदाताओं को जिन व्यक्तित्व गुणों की आकांक्षा करने के लिए दृढ़ता से प्रोत्साहित करना चाहिए, वे हैं - दूसरे की भावनाओं, अनुभव या अनुभव की समझ को संप्रेषित करने की क्षमता जैसा कि व्यक्ति उस क्षण महसूस करता है जब आप उसके साथ होते हैं - यही सहानुभूति है।
- ईमानदारी बीच में निरंतरता के प्रति एक व्यक्तिगत प्रतिबद्धता है
  क्या दावा किया जाता है और क्या किया जाता है।
  Stadler (1986) ने परामर्श की गतिविधियों तथा परामर्शदाताओं द्वारा लिए जाने वाले नैतिक निर्णयों से सम्बन्धित चार नैतिक सिद्धान्त दिये हैं-
- परोपकार-इसका तात्पर्य है, दूसरों की भलाई के लिए कार्य करना तथा उसे हानि से बचाना।
- अपकार न करना-इसका तात्पर्य है दूसरों को कष्ट या दुःख न पहुँचाना।
- स्वायत्तता-इसका तात्पर्य है चयन की स्वतंत्रता तथा आत्मनिर्धारण का सम्मान करना।
- न्याय-निष्पक्षता।
- अतः उपर्युक्त सिद्धान्तों में सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया के दौरान परामर्शदाता को सतर्कता के साथ निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात् यह ज्ञात किया जाता है कि परामर्शदाता ने नैतिक रूप से जिम्मेदारी के साथ कार्य किया है या नहीं।

13.7 निर्देशन परामर्शदाता के लिए सुझाव

- सेवार्थियों को उन सभी चर्चाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें जो उन्हें प्रभावित करती हैं।
- सेवार्थियों को सेवा वितरण में आत्मनिर्णय के लिए प्रोत्साहित करें|
- सेवार्थी मामले या सेवार्थी मामले से संबंधित किसी भी सामग्री या दस्तावेज़ से निपटने में गोपनीयता बनाए रखें
- सेवार्थियों के व्यवहार को देखें और पहचानें, उन पर ध्यान दें और उन्हें स्वीकार करें।
- सेवार्थियों की भावनाओं और कथनों को स्पष्ट और सारांशित करें|
- सेवार्थियों के साथ व्यवहार करते समय हमेशा खुले और बंद प्रश्नों का उपयोग करें/पूछें।

- जहां आवश्यक हो, सेवार्थी को जानकारी प्रदान करें और एक रोल मॉडल बनें।
- सेवार्थियों के साथ सहानुभूति रखें और नकारात्मक व्यवहार का सामना करें।
- सेवार्थियों को जो कुछ उन्होंने सीखा है उसे एकीकृत करने और लागू करने में मदद करें और अनुभव को अर्थ दें।
- समूह अभ्यास के नैतिक और व्यावसायिक मानकों का प्रदर्शन करें|
- सेवार्थियों को काम पर रखें और उन्हें पूरा करने में मदद करें और उनके लक्ष्य साझा करें।
- पेशेवरों को सेवार्थियों को सेवा वितरण के दौरान और उसके बाद पेशेवर मूल्यांकन का पालन करना चाहिए।
- पेशेवरों को सेवार्थियों को अपनी सेवा प्रदान करने में वित्त की मांग करनी चाहिए या किसी कदाचार या धोखाधड़ी वाले तरीकों में शामिल नहीं होना चाहिए या नहीं करना चाहिए|

13.8 सारांश

निर्देशन कार्यक्रम में पेशेवर परामर्शदाता की यह एकमात्र जिम्मेदारी है की उन्हें परामर्शदाताओं के अनैतिक व्यवहार से बचाया जाए. क्यूंकि अधिकांश सेवार्थी असुरक्षित महसूस करते हैं, इसलिए इसलिए प्रमाणित परामर्शदाताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए परामर्श नैतिकता के बारे में जागरूक होना महत्वपूर्ण है। यह लाभार्थी के आत्म-जागरूकता और आत्म-प्रकटीकरण में मदद करता है प्रत्येक पेशेवर परामर्शदाता की बहुत सारी जिम्मेदारियाँ होती हैं जनता के विश्वास को बनाए रखें इसलिए परामर्श पद्धतियों का नैतिक अनुप्रयोग, उच्च स्तर का प्रशिक्षण हासिल करना चाहिए. पेशे की प्रकृति के अनुसार, परामर्शदाताओं से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है सेवार्थी की रुचि के अनुसार सर्वोत्तम तरीके से उसके लक्ष्यों को बढ़ावा दें, सेवार्थी के अधिकारों की रक्षा करें और किसी को नुकसान या हानि न पहुँचाएँ, सेवा प्रदान करते समय पेशेवर सीमा बनाए रखना| संहिता में चार समग्र नैतिक सिद्धांत शामिल हैं जिनमें कई विशिष्ट नैतिक मानक हैं। सेवार्थी के अधिकारों और गरिमा का सम्मान पहला है जो कहता है, मार्गदर्शन परामर्शदाताओं को सभी सेवार्थियों के मौलिक अधिकार, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य, गरिमा और मूल्य का सम्मान और प्रचार करना चाहिए। परामर्शदाताओं को कानून के अनुरूप सेवार्थियों की निजता, गोपनीयता, आत्मनिर्णय और स्वायत्तता के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए। जहां तक संभव हो, वे यह सुनिश्चित करना कि सेवार्थी उनके द्वारा प्रस्तावित किसी भी पेशेवर कार्रवाई को समझें और उस पर सहमति दें। इसका मतलब है कि वे सेवार्थियों के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आदर सम्मान रखते हैं और लिंग, यौन अभिविन्यास, विकलांगता, धर्म, जाति, नस्ल, उम्र, राष्ट्रीय मूल, राजनीति और सामाजिक वर्ग जैसे कारकों के कारण

अपनी सेवाओं को कम नहीं होने देते हैं। .परीक्षण और मूल्यांकन की प्रकृति, उद्देश्य और परिणाम की भाषा में पूर्ण व्याख्या प्राप्त करने के क्लाइंट के अधिकारों का हमेशा सम्मान करें | उन निर्णयों में दूसरों से यथासंभव पूर्ण और सक्रिय भागीदारी की मांग करें जो उन्हें प्रभावित करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि सेवार्थियों के साथ परामर्श उचित वैयक्तिक और गोपनीयता की स्थिति में किया जाता है।

निर्देशन परामर्शदाता को सेवार्थियों को उन सभी चर्चाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें जो उन्हें प्रभावित करती हैं। सेवार्थियों को सेवा वितरण में आत्मनिर्णय के लिए प्रोत्साहित करें| सेवार्थी मामले या सेवार्थी मामले से संबंधित किसी भी सामग्री या दस्तावेज़ से निपटने में गोपनीयता बनाए रखें| सेवार्थियों के व्यवहार को देखें और पहचानें, उन पर ध्यान दें और उन्हें स्वीकार करें। सेवार्थियों की भावनाओं और कथनों को स्पष्ट और सारांशित करें| सेवार्थियों के साथ व्यवहार करते समय हमेशा खुले और बंद प्रश्नों का उपयोग करें/पूछें। सेवार्थियों के साथ सहानुभूति रखें और नकारात्मक व्यवहार का सामना करें। सेवार्थियों को जो कुछ उन्होंने सीखा है उसे एकीकृत करने और लागू करने में मदद करें और अनुभव को अर्थ दें।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)
2. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
3. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
4. Albert Camus (Stanford Encyclopedia of Philosophy)
5. International Journal of Scientific Engineering and Science Volume 4, Issue 8, pp. 14-18, 2020. ISSN (Online): 2456-7361
6. Literature and Ethics: History, memory, and cultural identity in albert camus's le premier homme on jstor
7. Martha Fanta Mansaray, Eric Komba Foyoh Mani Eastern Polytechnic, Private Mail Bag, Kenema, The Importance of Ethical Codes in Guidance and Counseling Profession. *International Journal of Scientific Engineering and Science* Volume 4, Issue 8, pp. 14-18, 2020. ISSN (Online): 2456-7361

8. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
9. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
10. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
11. https://doi.org/10.1002/j.1556-6676.1986.tb01124.x

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. "नैतिकता" शब्द का क्या अर्थ है?
2. हम नैतिकता को कैसे लागू कर सकते हैं ?
3. निर्देशन में नैतिकता का महत्त्व बताइए|

इकाई 14. स्थानन एवं अनुवर्तन सेवाएं(Placement Service and follow up Service)

इकाई संरचना:

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 स्थानन सेवा
14.4 स्थानन सेवा की आवश्यकता
14.5 स्थानन या स्थानापन सेवा का संगठन
14.6 स्थानन सेवा के कार्य
14.7 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्थानन सेवा
14.8 अनुवर्ती सेवा या अनुवर्तन सेवा
14.9 अनवुर्ती सेवा की कार्यविधियाँ
14.10 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अनुवर्ती सेवाएँ
14.11 अभ्यास प्रश्न
14.12 सारांश
14.13 शब्दावली
14.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.16 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

स्थानन सेवा का लक्ष्य छात्रों को उद्योग में काम करके मूल्यवान अनुभव हासिल करने के लिए अपनी क्षमता का उपयोग करने के लिए एक मंच प्रदान करना है; यह विभिन्न विषयों में प्रतिभाशाली स्नातकोत्तरों की तलाश करने वाली विभिन्न कंपनियों के बीच इंटरफेस के रूप में भी कार्य करता है। प्लेसमेंट प्रक्रिया के दौरान कंपनियों को प्लेसमेंट प्रक्रिया के लिए परिसर में आने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें प्री-प्लेसमेंट टॉक और साक्षात्कार शामिल हैं।

स्थानन सेवा के आयोजन में स्थानन अधिकारी की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। गाइडेंस में स्थानन सेवा उन्हें उन जगहों पर भेजने में मदद करती है जिनका उन्होंने फैसला किया है। प्रदान सेवा का

उद्देश्य छात्रों को उन चीजों को करने में मदद करना है जो उन्होंने सोचा है कि उनके लिए ठीक है।अनुवर्ती सेवा से निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के बारे में जानकारी मिलती है। इस से बालकों को व्यवसाय में समायोजित होने संबंधी समस्याओं हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

छात्रों की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुसार एक व्यावसायिक चयन या व्यवसाय चुनना करना कभी भी पर्याप्त नहीं होगा यदि व्यक्ति उस नौकरी में काम करने के बाद भी संतुष्ट नहीं होगा। देखा गया है कि एक उचित नौकरी प्राप्त करने के बाद भी, वह नए पर्यावरण में समायोजन करने में भी असमर्थ हो सकता है। कभी-कभी एक नौकरी या व्यवसाय व्यक्ति को पूर्ण संतुष्टि नहीं दे सकता है और वह नई नौकरियों में प्रवेश करने में मदद की आवश्यकता हो सकती है।

कभी-कभी एक व्यक्ति को कुछ अतिरिक्त जानकारी की आवश्यकता होती है। ऐसा हो सकता है कि व्यक्ति नौकरी में प्रवेश करने के बाद अपने लक्ष्यों को हासिल करने में सामान्य प्रगति नहीं कर पा रहा हो। इस सभी तरह के मामलों में, कुछ विशेषज्ञ मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और ऐसी मार्गदर्शन सेवाएं अनुवर्ती सेवाएं कहलाती हैं।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- स्थानन सेवा की अवधारणा स्पष्ट कर पायेंगे |
- निर्देशन में स्थानन सेवा का महत्त्व समझ पायेंगे|
- स्थानन सेवा के प्रकार बता पायेंगे|
- अनवुर्ती सेवा एवं उसकी कार्य विधि समझ पायेंगे

14.3 स्थानन सेवा (Placement Service)

स्थानन सेवा के माध्यम से बालक को किसी व्यवसाय में स्थापित करने में मदद मिलती है। इस सेवा से किसी व्यक्ति को प्रशिक्षण में किसी व्यावसायिक पारिस्थिति में या किसी अलग पाठ्यक्रम को चुनने में सहायता प्राप्त होती है।

स्थानन सेवा से बालक को निम्नलिखित क्रियाएं करवाई जाती हैं-

- बालक को व्यक्तिगत रुप से जानकारी देना। बालकों को उनके इच्छानुसार व्यवसाय में प्रवेश करने या नये पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की विधियों की जानकारी देना चाहिए।

- नौकरियों के लिए रिक्तियों, छात्रवृतियो के लिए फार्म एवं प्रतियोगिताओं, कालेज में रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया आदि के बारे में सूचनाएं अर्जित करना, उन्हें संचित करना तथा ठीक ढ़ंग से रखना।

14.4 स्थानन सेवा की आवश्यकता

एक स्कूल में एक पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद, एक छात्र को किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में कुछ ऐच्छिक विषयों के साथ एक पाठ्यक्रम का अध्ययन करना पसंद हो सकता है। लेकिन उच्च शिक्षा के संस्थानों के बारे में ज्ञान की कमी के कारण अधिकांश छात्रों को अपने जीवन में निराशा और बेकारी का अनुभव होता है। कभी-कभी छात्रों को यह नहीं पता होता है कि उन्हें कब संपर्क करना है, किससे संपर्क करना है और अपनी पसंद के संस्थान में प्रवेश के लिए कैसे तैयार होना है। वे देर से पहुंचते हैं, सही व्यक्ति से संपर्क नहीं कर पाते हैं और अपर्याप्त तैयारी के कारण घृणा और निराशा महसूस करते हैं। एक स्कूल या माध्यमिक स्कूल में स्थानन सेवा की आवश्यकता है ताकि छात्रों को उनकी उचित शैक्षिक स्थान पर रखने में मदद मिल सके।

शिक्षा पूरी करने या स्कूल छोड़ने के बाद, एक छात्र को एक सही प्रकार की नौकरी की तलाश हो सकती है। 3. स्थानन सेवा की आवश्यकता है ताकि छात्रों को उनकी व्यावसायिक स्थान में मदद मिल सके। 4. एक छात्र को एक संगठित में एक अच्छी रोजगार पाने या स्वयं के लिए रोजगार के लिए एक व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान में व्यावसायिक प्रशिक्षण जारी रखना पसंद कर सकता है। 5. हर स्कूल या माध्यमिक स्कूल में एक आयोजित स्थानन सेवा की आवश्यकता है ताकि छात्रों को एक व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान में उनकी स्थान में मदद मिल सके।

14.5 स्थानन या स्थानापन सेवा का संगठन

स्थानन सेवा तीन प्रकार की होती है।
व्यक्तिगत, शैक्षिक और व्यावसायिक।

I. **व्यक्तिगत स्थानन सेवा**
II. शैक्षिक स्थानन सेवा
III. व्यावसायिक स्थानन सेवा

व्यक्तिगत स्थानन सेवा

व्यक्तिगत मार्गदर्शन में स्थानन सेवा: इस प्रकार के मार्गदर्शन में स्थानन सेवा छात्रों को घर, स्कूल और समाज के समूह में उचित रूप से स्थान पाने में मदद करती है। उनके पास ऐसे दोस्तों का सही प्रकार का साथ है जिन्हें वे सबसे ज्यादा पसंद करते हैं जो उनकी पसंद के शौक क्लब के सदस्य हैं। उनके चारों ओर एक दोस्ताना वातावरण है। उनके पास अपने साथी समूहों में एक जगह है। उन्हें माता-पिता पसंद करते हैं। वे अपने भाई-बहनों के साथ बहुत अच्छे से बनते हैं। वे परिवार में अच्छी तरह से बसे हुए हैं। उन्हें अपने शिक्षकों से पहचान मिलती है। वे एक सही प्रकार के स्कूल में खुद को पाते हैं। बेशक, छात्र उन जगहों पर खुद को पाते हैं जहां से वे अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकते हैं।

शैक्षिक स्थानन सेवा

इस मार्गदर्शन में, स्थानन सेवा उन्हें मदद या सहायता प्रदान करती है जो स्कूलों में प्रवेश पाने के लिए सबसे उपयुक्त हैं। उनके पास अध्ययन करने के लिए सही प्रकार के पाठ्यक्रम हैं। उनके पास वे सह-पाठ्यक्रमीय गतिविधियां हैं जिनमें वे भाग लेना पसंद करते हैं। उनके पास वे खेल हैं जिन्हें वे खेलना पसंद करते हैं। वे उन स्कूलों में खुद को पाते हैं जहां वे अपने सभी गोलार्ध विकास और विकास कर सकते हैं।

शैक्षिक स्थानन सेवा व्यक्ति के एक शैक्षिक अनुभव में सन्ताषेजनक विकास करने के लिए सहायता करने के कार्यक्रम को कहते हैं।

व्यावसायिक स्थानन सेवा

किसी व्यक्ति को व्यवसाय के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने में सहायता करने की प्रक्रिया को व्यवसायिक की स्थानन सेवा कहते हैं।यह सेवा उन व्यक्तियों के लिए है जो नौकरी ज्वाइन करते हैं। छात्रों को अभी तक उस चरण तक पहुंचना है। वे केवल उसके लिए तैयार हो रहे हैं। बेशक, सेवा उन व्यक्तियों को सही प्रकार की नौकरी ढूंढने में मदद करती है जो उनके लिए अच्छी होनी चाहिए। यह उन छात्रों को मदद कर सकती है जो काम करते हैं, कमाते हैं और सीखते हैं। यह उन्हें ऐसे पार्ट टाइम जॉब तक ले जाता है जो उन्हें करना चाहिए जो उनके पास जितना भी समय हो उसे ले नहीं लेता है। काम करना उनके लिए एक साधन है और सीखना वह लक्ष्य है जिसे वे हासिल करना चाहते हैं।

व्यवसायिक एवं शैक्षिक स्थानन सेवा में बालकों की रुचियों, योग्यताओं, अभिरुचियों और अभिक्षमताओं का विशेष रुप से ध्यान रखा जाता हैं।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में कहा जा सकता है कि स्कूलों में तीन प्रकार के मार्गदर्शन में स्थानन सेवा छात्रों को उनके लिए सबसे अच्छे होने में मदद करती है। घर पर, वे अपने माता-पिता के प्यारे बच्चे हैं

जिन्हें वे उनका उचित सम्मान देते हैं। स्कूलों में वे अध्ययन में अच्छा करते हैं। वे अपने दोस्तों और शिक्षकों के साथ उनका सबसे अच्छा समायोजन करते हैं। समाज में वे उन सभी प्रकार की गतिविधियों में अच्छी तरह से स्थान पाते हैं जो दिन-प्रतिदिन चलती रहती हैं। इसलिए स्थानन सेवा उनके जीवन के समूह में यदि वे इसे उचित रूप से प्राप्त करते हैं तो उनका सबसे अच्छा समायोजन लाती है।

शैक्षिक स्थानन सेवा का संगठन

शैक्षिक स्थानन का संबंध बालकों को उनके शैक्षिक अनुभवों के लिए विवेकपूर्ण चयन में सहायता करने से है। शैक्षिक स्थानन की प्रक्रिया निम्नलिखित क्रियाओं से करके इस सेवा का संगठन किया जाता हैः-

- निर्देशन/मार्गदर्शन प्रदान करने वाले व्यक्ति को पाठ्यक्रमों तथा कोर्स की नवीनतम सूचनाएं रखना अनिवार्य होता है ताकि नवीनतम सूचनाऐं बालकों को शीघ्रता से उपलब्ध कराई जा सकें।
- स्कूल में सभी स्टाफ सदस्यों के साथ अच्छे संबंध स्थापित किये जाने चाहिए तथा इन अच्छे संबंधों का उपयोग स्थानन की सभी अवस्थाओं में करने से सफलता मिलती है।
- बालक के बारे में जानने के लिए उसकी रुचियों तथा आवश्यकताओं को समझने के लिए निजी साक्षात्कार आयोजित किया जाता है। इससे निर्देशन अधिकारी के लिए उस बालक की किसी कोर्स या पाठ्यक्रम के प्रति भावनाओं का अनुमान लगाना आसान हो जाता है।
- सभी बालकों की एक फाइल तैयार की जाती है।
- बालकों के लिए परामर्श सत्र को आयोजित किया जाता है जिससे बालकों को विभिन्न अवसरों का ज्ञान होता है तथा इनके आधार पर ही भावी योजनाएँ बनाना संभव होता है।

व्यावसायिक स्थानन सेवा का संगठन

व्यावसायिक स्थानन सेवा का संबंध व्यक्ति के लिए अंशकालिक या पूर्ण कालिक नौकरी प्राप्तत करने से होता है। व्यावसायिक स्थानन सेवा के संगठन हेतु निम्नलिखित क्रियाओं का आयोजन किया जाता है-

- उपलब्ध नौकरियों का वर्गीकरण किया जाता है और उनके लिए फाइलिंग प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

- स्थानन अधिकारी नियोक्ताओं के साथ सहकारी संबंध स्थापित करता है इस हेतु वह पत्र व्यवहार करता है, टेलीफोन पर वार्तालाप करता है, उनके पास जाकर वार्तालाप करता है। नियोक्ता को व्यक्तिगत रुप से जानने से स्थानन कर्मचारी ठीक ढंग से कार्य कर पाता है।
- स्थानन अधिकारी नियोक्ताओं से नौकरियों के विज्ञापन प्राप्त करते हैं तथा उसे बालकों हेतु उपलब्ध करवाता है।
- नौकरी के इच्छुक बालकों से साक्षात्कार कर उनकी रुचियों, शैक्षिक योग्यताओं का पता लगाकर उनका नाम, जन्मतिथि, जन्मस्थान दर्ज किया जाता है।
- बालक का नाम रजिस्टर करने हेतु फाइलिंग प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए इस प्रणाली में एक रजिस्ट्रेशन कार्य का फोल्डर होना चाहिए। इस फोल्डर में उम्मीदवार की सूचनाएँ दर्ज होनी चाहिए।
- उम्मीदवार से संबंधित निश्चित विवरण स्पष्ट एवं साफ-साफ लिखे होने चाहिए।
- प्रत्येक व्यक्ति से संबंधित सारी सूचनाओं को एकत्रित करने के उपरान्त उसकी जाँच अवश्यक कर लेनी चाहिए।
- नियुक्तिचर्चा की ओर से विज्ञाप्ति की गई नौकरियों के लिये रजिस्टर किये गये व्यक्तियों में से नौकरी दिलाने वाले कर्मचारी केवल उसी उम्मीदवार की सिफारिश करे जिसका चयन किया हो स्थानन कर्मचारी सभी उम्मीदवारों की छानबीन भली-भाँति करने के उपरान्त उपयुक्त उम्मीदवार की सिफारिश करें।

14.6 स्थानन सेवा के कार्य

स्थानन सेवा के कार्य: स्थानन सेवा के मार्गदर्शन कार्यक्रम में निम्नलिखित कार्य हैं: (1) यह सही व्यक्ति को सही नौकरी में फिट करता है और इस प्रकार "वर्गाकार खूंटों को वर्गाकार छिद्रों में और गोल खूंटों को गोल छिद्रों में" की समस्याओं को हल करने में योगदान देता है। (2) यह छात्रों को उचित प्रकार के शैक्षिक संस्थान या पाठ्यक्रम में रखकर स्कूल में छूटने वालों के प्रतिशत को कम करने में मदद करता है। (3) यह मानव संसाधनों के उचित उपयोग में मदद करता है और इस प्रकार उत्पादकता और व्यावसायिक कुशलता में बेहतरी लाता है। (4) यह रोजगार विनिमय और नियोक्ता के बोझ को कम करता है और विभिन्न नौकरियों के लिए सही प्रकार के कर्मचारियों को पाने में मदद करता है। (5) यह छात्रों को उनके हित और क्षमताओं

के अनुसार संस्थान या विषयों का चयन करने में मदद करता है और शैक्षिक निराशा और बेकारी की समस्या को हल करता है।

14.7 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्थानन सेवा

स्थानन सेवा का आयोजन मख्य रुप से माध्यमिक स्तर, उच्च माध्यमिक स्तर तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में किया जाना आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं स्तर के बालकों को उपयुक्त शैक्षिक अनुभवों, उपयुक्त व्यवसायों के चयन में समस्या का अनुभव होता है। इस सेवा के आयोजन से बालक अपने योग्यता एवं रुचि के अनुरुप पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय का चयन सरलता से कर सकता है।

स्कूलों में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों का बोयाडाटा तैयार कराना आवेदन पत्र लिखना तथा साक्षात्कार की तैयारी, प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कराना, आदि सिखाया जाता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में इस सेवा के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों के नियोक्ता से कैम्पस साक्षात्कार का आयोजन करके बालकों को व्यवसाय या प्रशिक्षण में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया जाता है।

18.8 अनुवर्ती सेवा या अनुवर्तन सेवा (Follow-up Service)

अनुवर्तन सेवा से अभिप्राय निर्देशन के अर्न्तगत किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम या व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात् उस पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्ति के समायोजन की सीमा या समायोजन की गति का अनुमान सुव्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ तरिकों से प्राप्त करने की प्रक्रिया से हैं। अनुवर्ती सेवा मार्गदर्शन करने वाले को उसके कार्य की प्रभावशीलता के संबंध में पृष्ठपोषण प्रदान करती है। अनुवर्ती सेवा के अन्तर्गत विविध मूल्यांकन तकनीकों जैसे- प्रश्नावली का प्रयोग टेलीफोनिक साक्षात्कार तथा व्यक्तिगत सम्पर्क आदि का प्रयोग किया जाता है। तकनीकों का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि बालक पृष्ठपोषण देने हेतु किस रुप में उपलब्ध है- टेलीफोन पर या व्यक्तिगत रुप से साक्षात्कार हेतु या प्रश्नावली के माध्यम से। इन विभिन्न तकनीकों के माध्यम से सूचना एकत्रित करने के बाद मार्गदर्शन करने वाले का स्वयं की प्रभावशीलता, कार्यक्रम के प्रशासन संबंधी, छात्र प्रतिक्रियाओं आदि का मूल्यांकन समग्र निर्देशन कार्यक्रम में सुधार की भावना से करता है।

14.9 अनवुर्ती सेवा की कार्यविधियाँ

अनुवर्ती सेवा का स्वरुप मुख्यतः निदानात्मक तथा मूल्यांकन युक्त माना जाता है। इस सेवा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति की किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी आवश्यकताओं का निदान, उस व्यक्ति की

सफलता एवं प्रभावशीलता की जानकारी तथा बालक को दिए गए निर्देशन का मूल्यांकन करना होता है।

अनुवर्ती सेवा के लिए कुछ मुख्य कार्यविधियाँ निम्नलिखित हैं-

- स्कूल जा रहे बालक का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए एवं उनका शैक्षिक स्तर देखा जाना चाहिए। सर्वेक्षण में ये भी देखा जाना चाहिए की बालक के लिए कौन-कौन से कोर्स सहायक हो सकते है।
- किसी कारणवश स्कूल छोड़ने वाले बालकों का साक्षात्कार करा के ये पता लगाना चाहिए कि उन्होंने स्कूल क्यों छोड़ा तथा इनकी क्या मदद की जा सकती है।
- शिक्षा पूरी करके स्कूल छोड़ने वाले बालक का भी सर्वेक्षण कर यह पता लगाना चाहिए की स्कूल छोड़ने के उपरान्त वे क्या कर रहे हैं तथा उन्हें समायोजन संबंधी किस प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।
- बालकों हेतु समूह सम्मेलनों का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इसमें बालकों को भविष्य की योजना बनाने में सहायता प्रदान की जानी चाहिए। अध्यापकों, कर्मचारियों तथा सलाहकारों के लिए विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की कार्यशालाओं में विचारों तथा सुझावों के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं।
- जिस संस्थान में किसी व्यक्ति की नियुक्ति की गई है। उस संस्थान में जा कर एक समूह अथवा व्यक्ति से किए गए अवलोकन के आधार पर नवनियुक्त किए गए व्यक्ति के विषय में समायोजन संबंधी आवश्यक जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए।

14.10 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अनुवर्ती सेवाएँ

यह सेवा मुख्यतः उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालकों, उच्च शिक्षा पूरी कर चुके बालकों के किसी व्यवसाय में समायोजन सं संबंधित होती है। इस सेवा से किसी व्यवसाय में व्यक्ति की सफलता एवं प्रभावशीलता की जानकारी प्राप्त की जाती है। यह सेवा प्राथमिक स्तर के ऐसे बालकों हेतु भी सहायक हो सकती है जिन्होंने किसी कारणवश स्कूल छोड़ दिया है। उनके स्कूल छोड़ने के कारण को पता लगाकर उचित सहायता का प्रबंध अनवर्ती सेवा से किया जा सकता है। अब आप समझ गये होंगे की अनुवर्ती सेवा से अप्रत्यक्ष रुप से मार्गदर्शनकर्त्ता के कार्य का मूल्यांकन हो जाता है।

14.11 अभ्यास प्रश्न

1. स्थानन सेवा का क्या महत्व है?
2. स्थानन सेवा मुख्यतः कितने प्रकार की होती है?
3. उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों को इस सेवा से किस प्रकार की सेवा प्रदान की जा सकती है?
4. उच्च शिक्षा स्तर के बालकों का स्थानन सेवा से क्या मदद मिलता है?
5. अनुवर्ती सेवा का मार्गदर्शन में क्या महत्व है?
6. अनुवर्ती सेवा हेतु सूचना एकत्रित करने के कौन-कौन से साधन हैं?
7. अनुवर्ती सेवा का मुख्य लक्ष्य क्या है?

14.12 सारांश

स्थानन सेवा के आयोजन में स्थानन अधिकारी की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। गाइडेंस में स्थानन सेवा उन्हें उन जगहों पर भेजने में मदद करती है जिनका उन्होंने फैसला किया है। प्रदान सेवा का उद्देश्य छात्रों को उन चीजों को करने में मदद करना है जो उन्होंने सोचा है कि उनके लिए ठीक है।अनुवर्ती सेवा से निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के बारे में जानकारी मिलती है। इस से बालकों को व्यवसाय में समायोजित होने संबंधी समस्याओं हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

- बालक को व्यक्तिगत रुप से जानकारी देना। बालकों को उनके इच्छानुसार व्यवसाय में प्रवेश करने या नये पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की विधियों की जानकारी देना चाहिए।
- नौकरियों के लिए रिक्तियों, छात्रवृतियो के लिए फार्म एवं प्रतियोगिताओं, कालेज में रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया आदि के बारे में सूचनाएं अर्जित करना, उन्हें संचित करना तथा ठीक ढ़ंग से रखना।

अनुवर्तन सेवा से अभिप्राय निर्देशन के अर्न्तगत किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम या व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात् उस पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्ति के समायोजन की सीमा या समायोजन की गति का अनुमान सुव्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ तरिकों से प्राप्त करने की प्रक्रिया से हैं। अनुवर्ती सेवा मार्गदर्शन करने वाले को उसके कार्य की प्रभावशीलता के संबंध में पृष्ठपोषण प्रदान करती है। अनुवर्ती सेवा के अन्तर्गत विविध मूल्यांकन तकनीकों जैसे- प्रश्नावली का प्रयोग टेलीफोनिक साक्षात्कार तथा व्यक्तिगत सम्पर्क आदि का प्रयोग किया जाता है। तकनीकों का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि बालक पृष्ठपोषण देने हेतु किस रुप में उपलब्ध है|

14.13 शब्दावली

1. **स्थानन (Placement)-** स्थानन से तात्पर्य बालकों को किसी अच्छे पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त होने या किसी व्यवसाय में चयनित होने से है।
2. **अनुवर्ती सेवा (Follow-up Service)**-किसी व्यवसाय या शैक्षिक पाठ्यक्रम में बालकों के समायोजन व सफलता से संबंधित सूचनाऐं एकत्रित करना।

14.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्थानन सेवा से किसी बालक को किसी व्यवसाय में या किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम में स्थापित किया जाता है।
2. स्थानन सेवा मुख्यतः तीन प्रकार की होती है-

i. व्यक्तिगत स्थानन सेवा
ii. शैक्षिक स्थानन सेवा
iii. व्यवसायिक स्थानन सेवा

3. उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों को स्थानन सेवा से किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम में संतोषजनक विकास करने में तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उचित स्थान प्राप्त होने में सहायता प्राप्त होती है।
4. उच्च शिक्षा स्तर के बालकों को इस सेवा से व्यवसाय में उचित स्थान प्राप्त होने में सहायता प्राप्त होती है।
5. अनवुर्ती सेवा से बालकों को किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम या व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात् उस पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्ति के समायोजन की सीमा व समायोजन की गति का अनुमान वस्तुनिष्ठ तरीके से प्राप्त करके उनकी सहायता की जाती है इससे मार्गदर्शनकर्त्ता को उसके कार्य के बारे में पृष्टपोषण भी मिल जाता हैं।
6. अनुवर्ती सेवा के अन्तर्गत प्रश्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार या टेलीफोन साक्षात्कार के माध्यम से सूचनायें एकत्रित की जाती है।
7. अनवुर्ती सेवा का मुख्य लक्ष्य बालक की किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी आवश्यकताओं का निदान तथा बालक को दिये गए मार्गदर्शन का मूल्यांकन होता हैं।

14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.
7. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.
8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- www.lotsofessays.com

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थानन सेवा का क्या महत्व है? उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों को इस सेवा से किस प्रकार की सेवा प्रदान की जा सकती है?
2. अनुवर्ती सेवा का मार्गदर्शन में क्या महत्व है? अनुवर्ती सेवा हेतु सूचना एकत्रित करने के कौन-कौन से साधन हैं?